समकालीन कविता में पारिस्थितिक विमर्श : एक अध्ययन

SAMAKALEEN KAVITHA MEIN PAARISTHITIK VIMARSH : EK ADHYAYAN

Thesis submitted to

Cochin University of Science and Technology

for the award of the degree of

Doctor of Philosophy
in
Hindi

By

REMYA P.R.

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi-682 022

December - 2011

SAMAKALEEN KAVITHA MEIN PAARISTHITIK VIMARSH : EK ADHYAYAN

Ph.D thesis (Hindi) in the field of Poetry

Author

Remya P.R.
Research Scholar, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology, Kochi-22

Research Advisor

Dr. K. Ajitha
Professor, Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology, Kochi-22

Type setting

Udayan Kalamassery

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi-22

December 2011

Declaration

I hereby declare that the thesis entitled **"Samakaleen Kavitha Mein Paaristhitik Vimarsh : Ek Adhyayan"** is the outcome of the original work done by me, and that the work did not form part of any dissertation submitted for the award of any degree, diploma, associateship, or any other title or recognition from any University / Institutiton.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22.

Remya P.R.
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

Certificate

This is to certify that, to the best of my knowledge the thesis entitled ***"Samakaleen Kavitha Mein Paaristhitik Vimarsh : Ek Adhyayan"*** is a bonafide record of research carried out by **REMYA P.R.** under my supervision.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22.

Dr. K. AJITHA
Supervising Teacher

पुरोवाक्

प्रकृति अपने आप में एक परिपूर्ण, स्वतंत्र तथा विविधता से भरी सत्ता है। मनुष्य उस प्रकृति का अंग मात्र है। किन्तु अपनी बुद्धि, चेतना और सामूहिक श्रमशक्ति की विलक्षणता के बलबूते पर वह प्रकृति से भिन्न अस्तित्व रखता है। इसी कारण, प्रकृति के समान्तर अपनी दुनिया का निर्माण वह करता चला आया है। सभ्यता, जिसके विकासानुसार प्रकृति की सत्ता को मानव अपने से पृथक मानने लगा। इस विकास यात्रा में कभी वह प्रकृति की शक्ति से आतंकित होता है और कभी उसके सौंदर्य से मुग्ध। शनैः शनैः प्रकृति को पराभूत करने की मनोभावना उसमें पनपने लगी। यह भावना विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने उसमें जगायी थी। आगे चलकर उसकी मनोदशा अर्थ केन्द्रित होकर प्रकृति की लुटाई और शोषण में परिणत हो गया। मनुष्य की लाभ और लोभ की कामना ने प्रकृति के शोषण में कोई कदर नहीं छोडा। परिणाम स्वरूप प्रकृति तथा पारिस्थितिकी का कायापलट हो गया। इसका नतीजा यह हुआ है कि अनगिनत पारिस्थितिक संकट, जो वर्तमान समय की सबसे ख़तरनाक समस्या बन गयी है। अफ़सोस की बात यह भी है कि इन भीषण परिस्थितियों से हम पूरी तरह अवगत नहीं हो पाये हैं।

पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी समाज एवं साहित्य के क्षेत्र में अब तक उपांतीकृत ही रहे हैं। लेकिन आजकल साहित्य के अध्ययन की दृष्टियों में पारिस्थितिक विमर्श मुख्यधारा दृष्टियों के बीच स्थान पाने लगा है। साहित्यिक विमर्श में पारिस्थितिक चिंतन एक नवीन विचारधारा है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इस विषय को भारतीय संदर्भ में देखने-परखने का प्रयास शोधार्थी की ओर से हुआ है। समकालीन

हिन्दी कविता लोगों में पारिस्थितिकबोध जगाने की जद्दोजहद में लगी हुई है। पारिस्थितिक बोध दरअसल एक ऐसी चेतना है जो प्रकृति और मनुष्य के बीच के सह-अस्तित्व और सह-जीवन पर ज़ोर देती है।

वर्तमान समाज बहुत सारी समस्याओं से मुठभेड़ कर रहा है। पारिस्थितिकी की समस्या उसमें सबसे प्रमुख और ज्वलंत है। प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के साथ तालमेल स्थापित करते हुए बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति, हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती की बात होगी। दूसरी समस्या विकास संबंधी है। विकास बनाम पर्यावरण के युद्ध में अन्ततः पारिस्थितिकी का ही ध्वंस होता है जिससे मानव समाज पर व्यापक और गहरा असर पड़ता है। विकल्प के तौर पर सुस्थिर विकास की संकल्पना पर बहसें चल रही हैं।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस विषय को लेकर गंभीर विचार-विमर्श, जन आन्दोलन तथा सम्मेलन आयोजित किए जा रहे हैं। इसके सामाजिक, साँस्कृतिक तथा राजनीतिक प्रभावों पर भी चर्चाएँ ज़ारी हैं। समकालीन हिन्दी कविता इस विषय का साक्षात्कार कैसे करती है और उसकी अभिव्यक्ति की दक्षता और सफलता को मापना प्रस्तुत शोध-कार्य का उद्देश्य रहा है। विख्यात फ्रेंच चिंतक एवं लेखक मैर्क ब्लोश ने कहा है कि कतिपय संदर्भों में समस्याओं के समाधान खड़ा करने के बजाय ज़्यादा महत्वपूर्ण होता है उन समस्याओं को प्रस्तुत करना। इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में पारिस्थितिक समस्याओं पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। शोध प्रबन्ध का शीर्षक है "समकालीन कविता में पारिस्थितिक विमर्श : एक अध्ययन।"

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को छह अध्यायों में विभक्त किया गया है। पहला अध्याय है 'पारिस्थितिक विमर्श एक विवेचन।' इस अध्याय में वैश्विक तथा भारतीय संदर्भ में पारिस्थितिक चिंतन के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को खोजने का प्रयास हुआ है। एक दर्शन के रूप में पारिस्थितिक चिंतन का विकास, इसकी अलग-अलग शाखाओं का विश्लेषण आदि पर प्रकाश ड़ाला गया है। पारिस्थितिक चिंतन का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष को यह अध्याय लक्ष्य करता है।

दूसरे अध्याय 'पूर्ववर्ती काव्य में प्रकृति और पर्यावरण' में प्रकृति और मनुष्य के आपसी संबंध का चित्रण अतीत से ढूँढ़कर प्रस्तुत करने का कार्य किया है। आधुनिक काव्य तक इस रिश्ते की पवित्रता, रागात्मकता तथा सुन्दरता काव्य में परिलक्षित हैं तो आधुनिक काव्य में यह प्रवृत्ति पर्यावरण की चेतना की ओर अग्रसर होती नज़र आती है। इसकी अभिव्यक्ति देने के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध में हुए भीषण नर संहार, युद्ध जन्य पारिस्थितिक संकट आदि को दर्शानेवाली कविताओं को प्रस्तुत किया गया है।

तीसरा अध्याय है 'समकालीन कविता में पारिस्थितिकी और मनुष्य का आपसी सरोकार।' इस अध्याय में समकालीन कविता में चित्रित प्रकृति और मनुष्य के बीच के अन्यान्य संबंधों को दर्शाया गया है। पारिस्थितिक संकटों पर विचार करते हुए प्रदूषण की समस्या को, प्रकृति, पारिस्थितिकी और मनुष्य पर उसके दूरगामी प्रभावों और उसकी त्रासदियों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है।

चौथे अध्याय का शीर्षक रखा है 'समकालीन कविता में पारिस्थितिक शोषण के विभिन्न आयाम।' प्रस्तुत अध्याय में भूमंडलीकरण, उपभोगवाद तथा बाज़ारवाद के तहत होने वाले प्रकृति शोषण की प्रक्रिया को दर्शाया गया है। विकास

जनित पारिस्थितिक संकट और उसकी विभीषिकाओं को प्रस्तुत करने की जोखिम भी उठायी गयी है।

पाँचवाँ अध्याय है 'समकालीन कविता में पारिस्थितिक चिंतन एवं प्रतिरोध के विभिन्न रूप।' भारतीय समाज में व्याप्त नवीन जीवनरीति, तद्जनित साँस्कृतिक संकट जैसे मुद्दों को पारिस्थितिकी के साथ जोड़कर देखने-परखने का कार्य इस अध्याय में हुआ है। पारिस्थितिक संकट को एक साँस्कृतिक संकट का दर्जा देते हुए उसकी सामाजिक, साँस्कृतिक पहलुओं पर भी विचार किया गया है।

छठे अध्याय में पारिस्थितिक कविताओं की भाषागत विशेषताओं पर विचार किया गया है। इसका शीर्षक रखा गया है 'पारिस्थितिक कविताओं की भाषिक संवेदना।' इसमें पर्यावरण की भाषा पर नज़र ड़ालते हुए प्रकृति तथा परिस्थितिकी की सुरक्षा के लिए मानवीय तथा नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की बात उठायी गयी है।

अंत में उपसंहार है जिसमें सभी अध्यायों के निष्कर्षों का निचोड़ प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य, कोच्चिन विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की सहयोगी आचार्या डॉ. के. अजिता जी के मार्गनिर्देशन में संपन्न हुआ है। अपने शोध कार्य को बिना कोई विलंब के आगे बढ़ाने का सहयोग और प्रेरणा हमेशा उनसे प्राप्त हुए हैं। अपने शोध को एक अनुभव बनाने के लिए, तथा उनके प्यार और ममता के लिए मैं सदैव उनके प्रति आभारी हूँ।

प्रो. डॉ. एम. षण्मुखनजी मेरे शोध कार्य का विशेषज्ञ रहे हैं। विषय से जुड़े हुए उनके निर्देशों और सुझावों को मैं ने सहर्ष स्वीकारा है। मेरे शोध को सही दिशा देने में उनके प्रोत्साहन के लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

विभागाध्यक्ष प्रो. डॉ. आर. शशिधरन जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ। विभाग के अन्य सभी गुरुजनों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। उनके प्यार और प्रोत्साहन के लिए मैं हमेशा उनकी ऋणी हूँ।

मेरे शोध कार्य की पूर्ति में यहाँ के पुस्तकालय का योगदान सर्वधा महत्वपूर्ण रहा है। इस पुस्तकालय और यहाँ के कर्मचारियों के प्रति मैं सदैव आभार रहूँगी। विभाग के कर्मचारियों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

हिन्दी विभाग के सभी शोध छात्र-छात्राओं के साथ मेरा प्यार का रिश्ता रहा है। उनके सहयोग, प्रेरणा और प्रोत्साहन मैं कभी नहीं भूल सकती। उन स्नेहिल आत्म-मित्रों के बारे में क्या कहूँ? जिन्होंने हर मुश्किल में, हर सुख-दुःख में मेरा साथ दिया है उनके लिए, ज़िन्दगी भर इस रिश्ते को निभाने का वादा मात्र।

इस संदर्भ में श्रीशंकरा कॉलेज के सभी गुरुजनों का मैं प्रणाम करती हूँ जिन्होंने इस मुकाम पर पहूँचने के लिए मेरा पथ-प्रदर्शन किया है।

मेरे परिवार के सभी सदस्यों के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने हमेशा मेरा साथ दिया है और उस ऊर्जस्थली के प्रति भी जिसने पूरी शोधयात्रा में बिना कुछ कहें लेकिन सब कुछ करके मेरा साथ दिया है।

बचपन से लेकर अब तक हिन्दी भाषा और साहित्य से मेरा नाता जोड़नेवाले सभी अध्यापक बन्धुओं का स्मरण करते हुए इस शोध प्रबन्ध को उसकी खामियों और खूबियों के साथ आपके सम्मुख सविनम्र प्रस्तुत कर रही हूँ।

रम्या पी.आर.

विषय सूची

पहला अध्याय 1-67

पारिस्थितिक विमर्श एक विवेचन

1.1 द्वितीय विश्वयुद्ध और पारिस्थितिक बोध का उदय

1.2 पारिस्थितिक दर्शन की विभिन्न शाखाएँ

1.2.1 गहन पारिस्थितिकवाद

1.2.2 सामाजिक पारिस्थितिक वाद

1.2.3 पारिस्थितिक साम्यवाद

1.2.4 पारिस्थितिक स्त्रीवाद

1.2.5 हरित मनोविज्ञान

1.2.6 हरित आध्यात्मिकता

1.2.7 इको टूरिज़म

1.3 विभिन्न चिन्तकों के पारिस्थितिकी संबन्धी विचार

1.3.1 हेनरी डेविड तोरो

1.3.2 जॉन मयूर

1.3.3 अलर्दा लियापोलड

1.3.4 लूयी मंफोड

1.3.5 रेश्वल कार्सन

1.3.6 मसनोबु फुकुवोका

1.3.7 गाँधीजी

1.3.8 सुन्दरलाल बहुगुणा

1.3.9 वन्दना शिवा

1.3.10 सुगतकुमारी

1.4 भारत में पारिस्थितिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि

1.5 विभिन्न पारिस्थितिक समस्यायें

1.5.1 प्रदूषण शब्द की परिभाषा

1.5.2 प्रदूषण के प्रमुख कारण

1.5.2.1 बढ़ती आबादी
1.5.2.2 औद्योगिकीकरण और शहरीकरण
1.5.2.3 विज्ञान और तकनीकी
1.5.2.4 संसाधनों का अनुचित दोहन
1.6 प्रदूषण के विभिन्न प्रकार
1.6.1 जल प्रदूषण
1.6.2 वायु प्रदूषण
1.6.2.1 विश्व-तापन
1.6.2.2 ओज़ोन परत का छेदीकरण
1.6.2.3 अम्लवर्षा या तेजाबी वर्षा
1.6.3 मिट्टी प्रदूषण
1.6.4 ध्वनि प्रदूषण
1.6.5 परमाण्विक प्रदूषण
1.6.6 रासायनिक प्रदूषण
1.7 वंशलुप्ति
1.8 जैव प्रौद्योगिकी और खेतीबाड़ी
1.9 प्राकृतिक आपदाएँ
1.9.1 बाढ़
1.9.2 सूखेपन
1.10 भारत के प्रमुख पारिस्थितिक आन्दोलन
1.10.1 चिपको आन्दोलन
1.10.2 मूकघाटी आन्दोलन
1.10.3 नर्मदा बचाओ आन्दोलन
1.10.4 प्लाच्चिमडा आन्दोलन
1.11 साहित्य में पारिस्थितिक चिन्तन का उद्भव एवं विकास
1.11.1 पारिस्थितिकवाद
1.11.2 पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र
1.11.3 पारिस्थितिक कला
1.11.4 पारिस्थितिक विमर्श
1.12 निष्कर्ष

दूसरा अध्याय 68-112

पूर्ववर्ती काव्य में प्रकृति और पर्यावरण

2.1 प्रकृति और मानव का आपसी संबंध

2.1.1 कविता और प्रकृति

2.1.2 भारतीय काव्य में प्रकृति

2.1.3 हिन्दी काव्य में प्रकृति

2.2 प्रकृति चित्रण के विविध रूप

2.2.1 द्विवेदीयुगीन काव्य : प्रकृति का मनोरम चित्र

2.2.2 छायावादी काव्य : प्रकृति का काल्पनिक एवं प्रेमपूर्ण चित्र

2.2.2.1. पंत के काव्य में प्रकृति

2.2.2.2 जयशंकर प्रसाद का प्रकृति चित्रण

2.2.2.3 प्रकृति में रहस्यमय प्रियतम का आरोपण : महादेवी के काव्य के संदर्भ में

2.2.2.4 शक्ति के प्रतीक प्रकृति : निराला के काव्य में

2.2.3 छायावादोत्तर काव्य में प्रकृति चित्रण

2.2.4 प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति के भिन्न रूप

2.2.5 प्रयोगवादी काव्य : प्रकृति से पारिस्थितिकी सजगता की ओर

2.3 प्रकृति पर मनुष्य का निर्मम हमला

2.4 निष्कर्ष

तीसरा अध्याय 113-168

समकालीन कविता में पारिस्थितिकी और मनुष्य का आपसी सरोकार

3.1 समकालीन परिवेश में प्रकृति

3.2 समकालीन कविता और प्रकृति

3.2.1 नॉस्टोल्जिया में प्रकृति की उपस्थिति

3.2.2 समकालीन कविता का पारिस्थितिक बोध

3.3 समकालीन कविता में प्रदूषण की अभिव्यक्ति

3.3.1 समकालीन कविता में नदी प्रदूषण की समस्या

3.3.2 वायु प्रदूषण तथा तद्जनित पारिस्थितिक समस्यायें

3.3.3 मिट्टी प्रदूषण की समस्या

3.3.4 परमाण्विक प्रदूषण की समस्या

3.3.5 भोपाल गैस त्रासदी और समकालीन कविता
3.3.6 समकालीन कविता में बाढ़ और सूखेपन का चित्रण
3.4 निष्कर्ष
चौथा अध्याय 169-234
समकालीन कविता में पारिस्थितिक शोषण के विभिन्न आयाम
4.1 भूमंडलीकरण, उपभोगवाद तथा बाज़ारवाद की मिलीभगत
4.2 विकास परियोजनाएं और प्रकृति शोषण
4.2.1 यातायात
4.2.2 खुदाई की समस्या
4.2.3 बाँध परियोजनाएँ
4.2.4 पारिस्थितिक विस्थापन
4.3 तकनीकी विकास एवं परिस्थितिकी
4.3.1 जैव प्रौद्योगिकी और पारिस्थितिक समस्यायें
4.4 खेतीबाड़ी से जुड़ी हुई पारिस्थितिक समस्यायें
4.5 प्रकृति पर मनुष्य की दखलंदाज़ी
4.6 पर्यावरण पर्यटन और पारिस्थितिकी का ध्वंस
4.7 वंशलुप्ति की समस्या
4.8 निष्कर्ष
पाँचवाँ अध्याय 235-311
समकालीन कविता में पारिस्थितिक चिंतन एवं प्रतिरोध के विभिन्न रूप
5.1 नवीन जीवन रीति के प्रति सजगता
5.2 हरित राजनीति और विकसित देशों की साज़िश
5.3 हरित राजनीति का सामाजिक तथा साँस्कृतिक प्रतिरोध
5.4 रोदन प्रतिरोध तथा उम्मीद की कविताएँ
5.5 समकालीन कवियों का पारिस्थितिक चिंतन
5.6 निष्कर्ष
छठा अध्याय 312-337
पारिस्थितिक कविताओं की भाषिक संवेदना
6.1 पारिस्थितिक कविता का कथ्य पक्ष
6.2 समकालीन कविता और भाषा

6.3 पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र और काव्य भाषा
    6.3.1 प्रकृति और भाषा
    6.3.2 भाषा और पर्यावरण
    6.3.3 पूँजीवादी तकनीकी सभ्यता और भाषा
6.4 बिंब प्रतीक तथा मिथकों का प्रयोग
6.5 अलंकार, छंद और शब्दों का प्रयोग
6.6 विभिन्न शैलियों का प्रयोग
6.7 निष्कर्ष

उपसंहार 338-344

संदर्भ ग्रन्थ सूची 345-364

❖❖❖

पहला अध्याय

पारिस्थितिक विमर्श एक विवेचन

पहला अध्याय
पारिस्थितिक विमर्श एक विवेचन

आज साहित्य में पारिस्थितिकी संबन्धी चर्चाएँ ज़ोरों पर चल रही हैं। वर्तमान संदर्भ में पारिस्थितिकी शब्द का प्रयोग बहुत सारे सूचकों को ध्वनित तथा एकीकृत करने के अर्थ में हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहे तो उत्तर आधुनिक साहित्य की जितनी भी संवेदनाएँ हैं उनको एक साथ प्रस्तुत करने की कुवत इस शब्द में है। समकालीन परिवेश और पारिस्थितियाँ इतनी जटिल हो गये हैं कि समाज तथा जीवन की नयी-नयी समस्याओं की चर्चा पारिस्थितिकी के साथ जोडके बिना पूर्ण नहीं हो पायेगी। ऐसे में साहित्य में पारिस्थितिक दर्शन नाम से एक अलग दर्शन का आविर्भाव भी हुआ है। साहित्य के संदर्भ में यह एक नवीन विचारधारा है। इस विचारधारा के अनेक शाखाएं होती हैं जो पारिस्थितिकवाद, पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र, पारिस्थितिक कला, पारिस्थितिक विमर्श जैसे अलग अलग नामों से अभिव्यक्त होते हैं।

पारिस्थितिकी पर्यावरण का आधुनिक पर्यायवाची शब्द है। पर्यावरण शब्द परि + आवरण सन्धि से मिलकर बना है। 'परि' का अर्थ है = 'चारों ओर' तथा 'आवरण' का अर्थ है 'घेरा'। अर्थात् हमें चारों ओर से घेरनेवाला ही पर्यावरण है। पर्यावरण को अंग्रेज़ी भाषा में इनवायरमेंट (environment) कहा गया है। यह फ्रांसीसी शब्द 'environir' शब्द से उत्पन्न हुआ है। 'घेरना' इसका अर्थ होता है। अंग्रेज़ी भाषा में पर्यावरण के लिए एक शब्द Habitat का भी प्रयोग किया जाता है

जो लैटिन के 'Habitare' शब्द से बना है। इसकी व्याख्या यह है कि एक सुनिश्चित स्थान जिसमें जीव उस स्थान की जैविक एवं भौतिक दशाओं में समायोजन स्थापित कर रहते हैं।

पारिस्थितिकी, पर्यावरण विज्ञान की एक शाखा है। इसके अंतर्गत विभिन्न जीवों के संबंध में, उनके पर्यावरण के विषय में अध्ययन किया जाता है। पारिस्थितिकी शब्द का अर्थ काफ़ी गहरा और विस्तृत है। पहले इसका अध्ययन विज्ञान के अन्य शाखाओं के अंतर्गत किया जाता था। किंतु हाल के वर्षों में पर्यावरण-प्रदूषण और विकास की चर्चा का विषय हो गया है। इसलिए अध्ययन के लिए अलग शाखा का विकास हो रहा है।

वर्तमान में प्रचलित पारिस्थितिकी का आंगलेय अनुवादित शब्दार्थ है इकोलॉजी (Ecology)। इसका उद्गम ग्रीक भाषा के दो शब्दों ओइकस (Ecos) और लोगस (Logus) से हुआ है। ओइकस का अर्थ है घर तथा लोगस का अर्थ है अध्ययन। यहाँ घर का अभिप्राय पादपों व जन्तुओं के आवास स्थल अथवा पर्यावरण से है। पारिस्थितिकी विज्ञान की वह शाखा है जिसमें जीव और उसके वातावरण के मध्य होनेवाले संबंधों का अध्ययन किया जाता है। सन् 1809 में जर्मन वैज्ञानिक 'अरनेस्ट हैकिल' ने इस शब्द की पूर्ण व्याख्या करते हुए 'इकोलॉजी' को निम्न प्रकार परिभाषित किया है - "अकार्बनिक व कार्बनिक वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों को पर्यावरण कहते हैं।"[1] पर्यावरण को दो आनुवंशिक घटकों में विभाजित किया गया है। वे इसप्रकार है :

---

1. बी.एल. गर्ग - पर्यावरण, प्रकृति और मानव - पृ. 18

अ) "प्राकृतिक पर्यावरण, यथा कार्य की, जलवायु, मृदा, जलाशय, वन्य प्राणी तथा खनिज।

आ) मानव पर्यावरण, तथा सभी तत्व जिन्होंने मानव को छुआ है और जिसके अंतरगत मानवीय प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं।"[1] साहित्य के अंतर्गत जब पारिस्थितिकी पर चर्चा होती है तब इन दोनों तत्वों का अध्ययन अवश्य करना है।

कालान्तर में इस शब्द को और अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है। इकोलॉजी के लिए 'बीसवीं शताब्दी के चेम्बर्स' शब्द कोश में दी गई परिभाषा को पर्याप्त व सर्वमान्य मान सकते हैं। इसके अनुसार "जन्तुओं अथवा पादपों या जीवसंख्याओं या समुदायों और उनके वातावरण के परस्पर सम्बन्धों के अध्ययन को ही पारिस्थितिकी कहते हैं।"[2] अर्थात् इसमें जीवधारियों तथा उनके पर्यावरण जिसमें सभी भौतिक एवं जैविक वातावरणीय कारक सम्मिलित है; उनके आदान-प्रदान की प्रक्रिया तथा विभिन्न जातियों के अन्तर व अन्तः जातीय सम्बन्धों का निरीक्षण करते हैं।

वैसे तो साहित्य के संदर्भ में पारिस्थितिकी शब्द का प्रयोग किस अर्थ में होना है इसके संबन्ध में ऊपर कह चुका है। अब सवाल उठाया जा सकता है कि इसप्रकार पारिस्थितिकी को केन्द्र में लाने का, साहित्य का उद्देश्य क्या हो सकता है? इसको अवश्य स्पष्ट करना है। पारिस्थितिकी के वैज्ञानिक धरातल को प्रस्तुत

---

1. बी.एल. गर्ग - पर्यावरण, प्रकृति और मानव - पृ. 19
2. वही - पृ. 18

करना साहित्य का लक्ष्य नहीं है। हाँ इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि 'पारिस्थितिकी' का विषय वैज्ञानिक तो है ही। लेकिन जब साहित्य या कला की बात आती है तो इसमें मुख्यतः पारिस्थितिक संकट से उत्पन्न सामाजिक, राजनीतिक और साँस्कृतिक समस्यायें तथा इन समस्याओं का असर मानव समाज पर किसप्रकार पडता है वे ही विषय हो सकते हैं। वैसे तो "पारिस्थितिक संकट अंततः एक साँस्कृतिक स्वत्व संबन्धी समस्या है"[1] जो प्रकृति और मानव के बीच के आपसी संबन्ध के टूटन से उत्पन्न हुई है। इस टूटन के अनेक कारण रहे हैं जिन पर आगे विचार करेंगे।

1.1 द्वितीय विश्वयुद्ध और पारिस्थितिक बोध का उदय

विश्व भर में पारिस्थितिकीय बोध जगाने का एक कारण द्वितीयविश्वयुद्ध था। विरजीनिया वूल्फ ने एक बार इसप्रकार कहा था कि "दुनिया का आचरण एक रात में ही पलट गया था। वास्तव में यह सन् 1914 के बाद या सन् 1939 के बाद नहीं था। दुनिया की साँस्कृतिक धुरी का पलटन हुआ था सन् 1945 अगस्त के बाद।"[2] सन् 1945 अगस्त 6 को था जब जापान के हिरोशिमा में पहली बार अणु बम का प्रयोग हुआ था। इतिहास की सबसे दर्दनाक इस दुर्घटना में औद्योगिक आँकड़ों के अनुसार लगभग बीस लाख लोग मारे गये। तीन दिन बाद नागसाकी में भी अणुबम का प्रयोग हुआ था। इसमें भी बहुत सारे लोग मारे गये और लाखों लोग घायल हो गए। इसके संबन्ध में 'विकास मुखर्जी' ने 'द्वितीय विश्वयुद्ध : मानव सभ्यता के इतिहास का निर्णायक मोड' शीर्षक ग्रन्थ में इसप्रकार अपना मत जताया

---

1. जी. मधुसूदनन - भावुकत्वम् इरुपत्तोन्नाम् नूटाण्डिल - पृ. 159
2. आशा मेनन - पयस्विनी - पृ. 85

है "दोनों विस्फोटों के बाद कैन्सर तथा अन्य बीमारियों से कितने लोग मरे, अपंग हुए या नाकाम, उसका सही लेखा-जोखा उपलब्ध नहीं है। पहाड और जंगलों से भरे हिरोशिमा में मरनेवालों की तादाद कम रही। उस विस्फोट से बना तेज एवं सक्रिय राख कई मीलों तक आकाश में उठा था, जो गिरते हुए धीरे-धीरे दूर तक फैल गया और इस इलाके के पेड-पौधे, कीडे-मकोडे, इन्सान तथा जानवरों को भी मौत की नींद सुला दिया।"[1] इसी संदर्भ में लेखक ने, एटम बम के निर्माता 'एलबर्ट आइन्स्टीन' ने इस विस्फोट पर अपनी प्रतिक्रिया किसप्रकार व्यक्त किया है, उसको भी जोड दिया है : "आधुनिक विज्ञान ने मानव सभ्यता के साथ बेईमानी की है और आज का दिवस इतिहास का काला दिवस माना जायेगा।"[2] दरअसल विज्ञान ने मनुष्य के साथ धोखा नहीं किया है। वैज्ञानिक आविष्कार हमेशा मानव समाज की भौतिक उन्नति तथा उसकी भलाई लक्ष्य करता है। मनुष्य ही अपने स्वार्थ हितों की पूर्ति के लिए इसका गलत इस्तेमाल करता आया है। द्विवेदीय महा विश्वयुद्ध और उसमें अणुबम का प्रयोग मनुष्य के राजनीतिक स्वार्थों का कुपरिणाम था।

निसंदेह वह इतिहास का काला दिन था। इस दुर्घटना के 64 साल बीत चुके हैं। अब तक जापान का घाव नहीं भरा है। हमें खुद से पूछना चाहिए कि क्या इस राक्षसीय विपत्ति से दुनिया ने कुछ सबक सीखी है? जवाब में 6 अगस्त 2009 के दि हिन्दु दैनिक समाचार पत्र के एक लेखन की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहती हूँ। लेख का शीर्षक है 'लेजेन्स फ्रम एन आटमिक काटस्ट्रोपी' (Lessons from an Atomic catastrophe) - "लगता है कि हिरोशिमा और नागासाकी की त्रासदी से

---

1. विकास मुखर्जी - द्वितीय विश्वयुद्ध : मानव सभ्यता के इतिहास का निर्णायक मोड - पृ. 274
2. वही - पृ. 274

दुनिया की राजनीतिक तथा सैनिक शक्तियाँ अब तक कोई सबक नहीं सीखी है।"[1] हिरोशिमा और नागसाकी में हुई भयानक विपत्ति के कारण पचास और साठ के दशकों में परमाणु शक्ति केन्द्रों का प्रवर्तन गुप्त रूप से चल रहे थे। बाद में अमरीका व रूस ने बेतहाशा परमाणु विस्फोट किये उनमें पर्यावरण की धज्जियाँ ही उड़ गयीं। बहुत सालों बाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अणु विस्फोट पर रोक लगायी गयी। किन्तु परीक्षणों हेतु विस्फोटों का क्रम आज भी ज़ारी है। सच्चाई तो यह है कि परमाणु शक्ति केन्द्रों को लगभग सभी विकास देशों ने कडी नियमों से तो सही अपने काबू में रखना चाहते हैं।

युद्ध और पारिस्थितिकी ध्वंस का आपसी संबंध है। द्वितीय महायुद्ध के बाद कीटनाशी गुणों वाले संश्लेषित रसायनों के उत्पादन हेतु उद्योगों की स्थापना हुई। यह इसलिए है कि रासायनिक युद्ध के लिए प्रयोगशाला में आयुध तैयार करने के दौरान कुछ रसायन कीटों के लिए प्राणघाती साबित हुए। इसलिए खेती के क्षेत्र में कीटों पर इनका प्रयोग करने के लिए व्यावसायिक स्तर पर इनका निर्माण होने लगा। डी.डी.टी ऐसा ही एक कीटनाशक था। इसका प्रयोग दूसरे महायुद्ध के दौरान हज़ारों सिपाहियों, शरणार्थियों और कैदियों पर जू मारने के लिए किया गया था। बाद में खेती के क्षेत्र में इसका व्यापक प्रयोग हुआ।

शीतयुद्ध के दौरान अमरीका ने लगातार पच्चीस साल वियतनाम पर आक्रमण किया था जिससे वियत्तनाम का पारिस्थितिक तंत्र पूरी तरह बिगड गया।

---

1. The Hindu, N.S. Sysodhiya - The horrors of Hiroshima and Nagasaki do not seem to have taught the world's political and military elite any lessons - P. 18

ऐजेन्ड ऑरेन्ज (Agent Orange) कीटनाशक के प्रयोग से वियतनाम के लगभग 20% जंगलात तथा 36% मैन्ग्रेव का विनाश हुआ।

आधुनिक सभ्यता के विकास में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। पूँजीवादी विकास ने मनुष्य और प्रकृति के बीच के सह संबंध को, जिसमें मनुष्य अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए प्रकृति का उपयोग तो करता था किंतु स्वयं को प्रकृति का अंग मानकर उसकी रक्षा भी करता था उसे तोड़ दिया। इसने प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष करना, उस पर विजय प्राप्त करना, उसे अपने वश में करना और उसके संसाधनों का अधिक से अधिक दोहन करने के लिए मनुष्य को सिखाया। मनुष्य के मस्तिष्क में यह सोच भर दिया कि यही है विकास। इस विकास प्रणाली का साथ देते हुए विज्ञान और तकनीक का सारा विकास भी इस दिशा में हुआ। बीसवीं शताब्दी के अंत तक आते आते यह स्पष्ट हो गया कि पूँजीवादी विकास दो कारणों से टिकाऊ नहीं है।

एक कारण यह है कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं, वे अनन्त काल तक उपलब्ध रहनेवाले नहीं है।

दूसरा कारण है पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के चलते प्रकृति और पर्यावरण की जो क्षति हो रही है, उससे अन्य जीवधारियों की असंख्य प्रजातियों के साथ-साथ मनुष्यों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है।

इस नई जागरूकता ने 1960-70 के दशकों में पश्चिमी देशों के पर्यावरणवादी आन्दोलनों को जन्म दिया था। इन आन्दोलनों ने पूँजीवादी विकास की कटु

आलोचना की। इस विकास प्रणाली ने मानवीय सभ्यता और संस्कृति को ही नहीं संपूर्ण प्रकृति और पृथ्वी को विनाश की कगार की ओर ले गया।

1.2 पारिस्थितिक दर्शन की विभिन्न शाखाएँ

पारिस्थितिक दर्शन का विकास उसकी अलग अलग शाखाओं के साथ हुआ है। यह दर्शन जीवन की समग्रता प्रकृति और पारिस्थितिकी के साथ मनुष्य के सह-संबंध में देखता है। पारिस्थितिक दर्शन मनुष्य के साथ अन्य सभी जीव जन्तुओं का इस धरती पर जीने के अधिकार पर ज़ोर देता है। मनुष्य का अन्य सभी जीव-जन्तुओं के साथ का सहअस्तित्व पारिस्थितिकी की सुरक्षा और बचाव के लिए अनिवार्य है। पारिस्थितिक दर्शन इन्हीं तत्वों पर ज़ोर देती है।

पारिस्थितिक दर्शन की विभिन्न शाखाओं का विश्लेषण इस दर्शन को उसकी समग्रता में समझने के लिए सहायक होगा। गहन पारिस्थितिक वाद, सामाजिक पारिस्थितिकवाद, पारिस्थितिक साम्यवाद, पारिस्थितिक स्त्रीवाद, हरित मनोविज्ञान, हरित आध्यात्मिकता जैसे पारिस्थितिक दर्शन की अन्यान्य पहलुओं का अध्ययन इस दर्शन को उसकी समग्रता में समझने के लिए सहायक होग।

1.2.1 गहन पारिस्थितिकवाद या गहन पारिस्थितिकी (Deep Ecology)

पारिस्थितिक दर्शन के प्रारम्भिक विकास और प्रसार गहन पारिस्थितिकवाद से हुआ है। इसका विचार पारिस्थितिक दर्शन से सबसे निकट है। इसके प्रणेता नॉवैजियन दार्शनिक आर्नायिस (Arnic Naess) है। सन् 1972 में इन्होंने गहन

पारिस्थितिकवाद संबंधी विचारों को सामने रखा। पारिस्थितिक बोध संबंधी अपने विचारों को उन्होंने 'इकालॉजी, कम्यूनिटी एन्ड लाइफस्टाइल' ग्रन्थ में समाहित किया है। अर्नेस ने विज्ञान, तकनीक और प्रौद्योगिकी को प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंध विच्छेदन का कारक ठहराया है। उनके अनुसार मनुष्य की तरह अन्य जीवियों का भी इस पृथ्वी पर जीने का समान अधिकार है। अर्नेस की इस महत्वपूर्ण संकल्पना को बयोस्फेरिकल इगलेटेरियनिसम (Biospherical Egatitarianism) कहते हैं। इससे मिलते जुलते विचार मलयालम के जाने माने पारिस्थितिक आलोचक आया मेनन ने भी लिखा है : "कीड़े मकोड़े या तितलियों के लिए मनुष्य द्वारा आन्दोलन चलाने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन इस पारिस्थितिक तंत्र में उनके महत्वपूर्ण स्थान को पहचानने की धार्मिकता तो मनुष्य को अवश्य होना चाहिए।" गहन पारिस्थितिक वाद की दो शाखाएँ हैं बयोसिन्मट्रिज़्म और स्पिरिचुल इकोलजी। जिनका विकास अलग रूप में हो रहा है। प्रमुख गहन पारिस्थितिक वादियों में थॉरो, जॉन मयुर, जॉर्ज सन्तायना, अल्दो लियोपोल्द आदि का नाम उल्लेखनीय है।

1.2.2 सामाजिक पारिस्थितिकवाद (Social Ecology)

सन् 1960 में मुरे बूकचिन ने इसका आविष्कार किया था। पारिस्थितिकी संबंधी उनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं 'पोस्ट स्केर्सिटी अनार्किज़्म टुवेर्ड एन इकोलॉजिकल सोसाइटी' (Post-scarcity Anarchism Towards on Ecological Society) और 'दि इकोलॉजी ऑफ फ्रीड़म' (The Ecology of Freedom)

---

1. आशा मेनन - परागकोशङल - पृ. 141

सामाजिक पारिस्थितिकवाद के अनुसार पारिस्थितिक समस्यायें सामाजिक समस्याओं को भी जन्म देती हैं। अर्थात् सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रभाव पड़ता है। प्रतिरोध की बात उठाते हुए सामाजिक पारिस्थितिकवाद जनतांत्रिक व्यवस्था के मूल भूत आदर्शों पर टिके हुए नैतिक सदाचार बोध से युक्त सामूहिक क्रिया कलापों पर ज़ोर देता है। सामाजिक पारिस्थितिकवाद पारिस्थितिक संकट के लिए पूँजीवादी व्यवस्था को दोषी ठहराता है। पूँजीवादी व्यवस्था ने ही प्रकृति के ऊपर मनुष्य के स्वामित्व के भाव को जगाया है। सामाजिक पारिस्थितिकवाद जनसंख्या और पारिस्थितिक संकट के आपसी संबंध पर भी विचार करता है। जॉनेट बेली (Janet Biehly) और मुररे बुकचिन (Murray Bookchin) प्रमुख सामाजिक पारिस्थितिक वादियों के रूप में जाने जाते हैं।

संक्षेप में देखा जाए तो गहन पारिस्थितिकवाद और सामाजिक पारिस्थितिकवाद आधुनिक विज्ञान के प्रकृति संबंधी दृष्टिकोण पर उँगली उठाते हैं। प्रकृति के विरुद्ध होनेवाले सभी क्रियाकलापों को ये दोनों नकारते हैं।

1.2.3 पारिस्थितिक साम्यवाद (Eco-marxism)

पारिस्थितिक साम्यवाद के वैचारिक धरातल मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है। सन् 1970 में एलफ्रेड स्मिट्स, हवार्ड पार्सन्स जैसे चिंतकों ने मार्क्स की रचनाओं का पुनर्पाठ किया और उनमें निहित पारिस्थितिकबोध को ढूँढ निकाला। इस दर्शन के प्रमुख प्रचारकों में ओ कोणँर और टेड बेन्टण के नाम उल्लेखनीय है। दोनों ने पारिस्थितिक साम्यवाद में निहित उद्देश्य लक्ष्यों को सबसे पहले प्रस्तुत किया।

उनके अनुसार आजकल के पारिस्थितिक संकट के परिप्रेक्ष्य में पूँजीवादी और साम्यवादी व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगादन रहा है। इन दोनों व्यवस्थाओं में आर्थिक क्रिया कलाप प्रकृति विरुद्ध तथा केन्द्रीकृत रहा है। पारिस्थितिक साम्यवाद प्रकृत्यानुकूल तथा केन्द्रीकृत उत्पादन पर ज़ोर देता है। वर्तमान पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को बदलकर पारिस्थितिक साम्यवाद की स्थापना पर यह ज़ोर देता है।

उनके अनुसार "वैश्विक स्तर पर हो रहे पारिस्थितिक संकट से आर्थिक संकट पैदा हो गया है। इसलिए पारिस्थितिक संकट का समाधान और आर्थिक संकट का समाधान दोनों का संबन्ध अन्योन्याश्रित है। पारिस्थितिक साम्यवाद इन दोनों का समाधान एक राजनैतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) के आधार पर ढूँढता है।"[1]

पारिस्थितिक साम्यवाद के अनुसार पारिस्थितिक संकट का समाधान प्रान्तीय स्तर तक सीमित नहीं रख सकते। इसके लिए प्रान्तीय सुरक्षा यत्नों के साथ-साथ देशीय और अन्तर्देशीय स्तर के उद्‌यमों का भी होना अनिवार्य है।

पारिस्थितिक साम्यवाद सभ्यताओं की विविधता की रक्षा तथा पारिस्थितिक संरक्षण की बात उठाता है। यह इसलिए है कि ये दोनों परस्पर संबन्धित हैं। सामाजिक-आर्थिक नीति तथा पारिस्थितिक नीति के बीच के अभेद्‌य संबन्ध को भी यह पहचानता है। क्योंकि पारिस्थितिक नीति अंततः मानवीय अधिकारों की समस्याओं से तो जुड़ी हुई है।

---

1. जी. मधुसूदनन - भावुकत्वम इरुपत्तोन्नाम नूटाण्डिल - पृ. 146

हरित सामाजिक व्यवस्था में अनियंत्रित भोग का कोई स्थान नहीं है। सबकी नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की मांग यह करता है। उपभोगवादी संस्कृति को यह नकारता है। पारिस्थितिक साम्यवाद इस सच्चाई को भी पहचानता है कि पारिस्थितिक विनाश के सबसे बड़ा शिकार बच्चे और स्त्री होते हैं।

1.2.4 पारिस्थितिक स्त्रीवाद (Eco Feminism)

पारिस्थितिक स्त्रीवाद की प्रणेता फ्रेंच नारीवादी चिंतक फ्रान्स्वा दि यूबोन (Francoise D Eaubonne) है। उन्होंने सबसे पहले इसका उल्लेख 'दि टैम फॉर इको-फेमिनिज़्म' (The Time For Eco Feminism) में किया था, जिसका प्रकाशन सन् 1974 में हुआ था। उनका कहना है कि "इको फेमिनिज़्म अन्य पारिस्थितिकी प्रतिरोधी संगठनों से मिलकर एक नयी मानवीयता का विकास करना चाहता है।"[1] उन्होंने यह भी जोड़ा है कि पुरुष केन्द्रित अधिकार व्यवस्थाओं ने ही आज के पारिस्थितिक संकट को पैदा किया है। इसीलिए पुरुष केन्द्रित व्यवस्थाओं से लड़कर उनको तबाह करना पारिस्थितिक स्त्रीवाद का उद्देश्य रहा है। एक अन्य प्रमुख पारिस्थितिक स्त्रीवादी करोलिन मेरचेन्ट (Carrolin Merchant) है। उन्होंने 'डेथ ऑफ नेचर' शीर्षक ग्रन्थ में स्त्री और प्रकृति के बीच के घनिष्ठ संबन्ध को ढूँढ़ने का प्रयास किया है। उनके अनुसार प्रकृति के जलचक्र के बारे में पुरुषों से अधिक स्त्री की ग्राह्यता है। इसीलिए स्त्रीत्व की हत्या अन्ततः प्रकृति की ही हत्या होती है। इससे सहमत होकर आशा मेनन ने लिखा है : "वैसे तो स्त्री और पुरुष

1. फ्रान्स्वा दि यूबोन - दि टाइम फोर इकोफेनिज़्म - अनुवादक रूथ हदल - पृ. 17

के जैविक धर्म में तो भिन्नता है। इस तथ्य को पहचानना चाहिए। फिर इस सच्चाई से भी वाकिफ़ होना कि प्रकृति के जलचक्र पुरुषों से अधिक स्त्री को ग्राह्य है। तभी तो कला या साहित्य में स्त्रीत्व की सहजावबोध की, तथा प्रकृति के प्रति ममता का भाव से युक्त यिन (Yin) मूल्यों की स्थापना होगी।"[1]

पारिस्थितिक स्त्रीवाद का पश्चिम से भिन्न होकर भारतीय संदर्भ में एक अलग महत्व है। "हमारे वेदों, पुराणों तथा उपनिषदों में वृक्षों की पूजा करने की प्रथा देख सकती है। पारिस्थितिक तंत्र में पेड़-पौधों के तथा अन्य जीवों के महत्व की जानकारी हमें थीं और उसके प्रति हमेशा श्रद्धा का भाव भी प्रकट किया है। पुरुषों से अधिक स्त्री ही इसप्रकार के आचारों-प्रथाओं का पालन करती आयी है।"[2] यह हमारी संस्कृति की ही एक विशेषता रही है। इसलिए भारतीय परिप्रेक्ष्य में पारिस्थितिक स्त्रीवाद का अपना अलग स्थान है।

पारिस्थितिक स्त्रीवाद, प्रकृति और स्त्री को केन्द्र में रखकर पारिस्थितिक तंत्र को समृद्ध करने पर विचार करता है। पारिस्थितिक स्त्रीवादियाँ सभी तरह के शोषणों को, प्रकृति और स्त्री के विरुद्ध के शोषण मानती हैं। इसकी मूल संकल्पना है पारिस्थितिकी, परिवार और राष्ट्र। जब स्त्री और प्रकृति स्वस्थ रहेगी तब ही परिवार और राष्ट्र स्वस्थ रहेगा। मेयस मेरी मल्लर, वालप्लम वुड, एरियल सले जैसे पारिस्थितिक स्त्रीवादियों ने इस दर्शन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। भारतीय संदर्भ में मेधा पाटकर, वन्दना शिवा, अरुंधती रॉय, सुगतकुमारी जैसी महत

---

1. आशा मेनन - पयस्विनी - पृ. 70
2. पी. मणिकण्ठन - परिस्थिति पेणवादत्तिन्टे नवराष्ट्रीयम, माध्यमम, जून 2007 - पृ. 42-43

व्यक्तियों को इस कोटि में रख सकते हैं। लेकिन एक वाद के प्रचार-प्रसारक से भी परे होकर, भारत के प्रमुख पारिस्थितिक कार्यकर्त्रियों के नाम से ही ये जाने जाते हैं।

पारिस्थितिक स्त्रीवाद के पाँच मुख्य धाराएँ होती हैं। वे निम्नप्रकार के हैं-

1. रेडिकल इकोफेमिनिज़म (Radical Ecofeminism)
2. स्पिरुचेल इकोफेनिज़म (Spiritual Ecofeminism)
3. इकोफेमिनिस्ट थियॉलजी (Ecofeminist Theology)
4. सोशियल इकोफेमिनिज़म (Social Ecofeminism)
5. सोशियलिस्ट फेमिनिज़म (Socialist Feminism)

इसमें सामाजिक पारिस्थितिक स्त्री विमर्श का समकालीन संदर्भ में अहम स्थान है। जब समाज के हाशिये पर रहनेवाली स्त्रियाँ अपने अस्तित्व के लिए प्रकृति शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाने लगती हैं तब साहित्य में स्त्री के हरित-प्रतिरोध की अभिव्यक्ति को आवाज़ मिलने लगती है। केरल के वयनाड में प्रकृति-शोषण के खिलाफ़ लडनेवाली गोत्रवर्ग की नारियाँ, टेहरी गढ़वाल में वन संरक्षण के लिए पेडों से चिपकनेवाली चिपको आन्दोलन की नारियाँ तथा इंडोनीशिया में नवउपनिवेशवादी संयुक्त शक्तियों से लडकर शहीद हुई गोत्र वंश के मवायोसफ अलोमाड ये सभी स्त्री के हरित-प्रतिरोध के नवीन चेहरे हैं।

1.2.5 हरित मनोविज्ञान (Green Psychology)

हरित मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के क्षेत्र में विकसित नयी धारा का नाम है। ग्रिगरी बेट्सन और थियॉडर रोज़ॉक को मनोविज्ञान के क्षेत्र में हरित पथ का मार्ग

प्रशस्त करने का श्रेय प्राप्त है। ग्रिगरी वेट्सन के 'मैन्ड एन्ड नेचर' (Mind and Nature) में मन और प्रकृति के बीच के गहरे संबन्ध को दर्शाने का प्रयास हुआ है। उसीप्रकार थियॉडर रोजॉक ने 'वॉयस ऑफ दि एर्थ' में (Voice of the Earth) पारिस्थितिक विज्ञान और मनोविज्ञान इन दोनों के बीच के आपसी संबन्ध को दर्शाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में, प्रमुख मनोवैज्ञानिक कार्ल युङ का विचार बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। रोजॉक ने अपने ग्रन्थ में युङ के सामूहिक अचेतन (collective unconscious) संबन्धी विचारों पर आलोचना करते हुए कहा है कि "पहले तो युङ के सामूहिक अचेतन संबन्धी विचारों में जीव तथा जानवरों का रूप विद्यमान थे। लेकिन धीरे-धीरे जब युङ धर्म की ओर मुडने लगे तो ये आदिम रूप मानवीय प्रतीकों के धार्मिक रूप ग्रहण करने लगे। इसलिए युङ की इस भावना की वास्तविकता में एक पारिस्थितिक अचेतन (Ecological Unconscious) का ही बोध होता है।"[1] हरित मनोविज्ञान के क्षेत्र में रॉजाक का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इस विषय को लेकर उन्होंने 'इको साइकोलॉजी' (Eco Psychology) नाम से एक ग्रन्थ भी लिखा है।

प्रमुख पारिस्थितिक वैज्ञानिक रेल्फ मेट्स्नर ने रोजॉक के इस विचार का खण्डन किया है। उनका कहना है कि हमारे लिए इस पारिस्थितिक अचेतन से परे होकर एक पारिस्थितिक बोध की ही ज़रूरत है।

---

1. जी. मधुसूदनन - भावुकत्वम् इरुपत्तियोन्नाम् नूटाण्डिल - पृ. 118

पारिस्थितिक मनोवैज्ञानिकों का दावा यह है कि मनुष्य के स्वरूप तथा आध्यात्मिक अस्तित्व को कायम रखने के लिए प्रकृति के साथ भौतिक संबन्धों के साथ-साथ मानसिक संबन्ध का होना भी अनिवार्य है। इसप्रकार वे लोग मनोविज्ञान में प्रकृति को पुनः प्रतिष्ठित करते हैं।

1.2.6 हरित आध्यात्मिकता (Spiritual ecology)

जब राजनीति, समाज, विज्ञान, कला, साहित्य आदि के क्षेत्रों में पारिस्थितिकी संबन्धी अवधारणाएँ उभर रही हैं तो धर्म इससे कैसे दूर रह सकता है। पूरब के देशों में, विशेषकर भारतीय संदर्भ में धर्म हमेशा प्रकृत्यानुकूल रहा है। "पारिस्थितिक आदर्शों को धार्मिक ढ़ाँचे का रूप देकर प्रस्तुत करने का जो प्रयास हो रहा है उसे ही हरित आध्यात्मिकता कहते हैं।"[1] ज्ञान के इस क्षेत्र का विकास ईसाई धर्म में ही हुआ है।

ईसाई धर्म के दार्शनिक अस्सीसी के फ्रान्सीस सबसे पहले ईसाई धर्म में निहित पारिस्थितिक अवधारणाओं को खोज निकाला था। उन्होंने, प्रकृति के ऊपर मनुष्य के स्वामित्व भाव के बदले में मनुष्य और अन्य जीवों का प्रकृति के ऊपर समान अधिकार के भाव को रखा। उसके बाद बारहवीं शताब्दी में जर्मन के हिल देगार्द आफ बिंगन के विचारों में पारिस्थितिकी संबन्धी अवधारणाएं देख सकते हैं। फिर बीसवीं शताब्दी में फ्रेंच पुरोहित तेलहाद द षरीन (Tielhard de chardin) ने ही 'हरित आध्यात्मिकता' का आविष्कार किया था। आधुनिक संदर्भ में हरित

---

1. जी. मधुसूदनन - भावुकत्वम इरुपत्तोन्नाम नूटाण्डिल - पृ. 122

आध्यात्मिकता पर सबसे पहले लिन टोन सेन्ड वयिट जूनियर (Lynn Town Send White Jn) ने किया था। सन् 1967 में प्रकाशित अपने 'दि हिस्टॉरिकल रूट्स ऑफ अउर इकोलॉजिकल क्रैज़िस' (The Historical Roots of our Ecological Crisis) नामक ग्रंथ में उन्होंने बाईबल के प्रकृति विरोधी चिंतन पर उँगली उठाया और प्रकृति के ऊपर मनुष्य के स्वामित्व के भाव का विरोध किया। उनका प्रयास यह रहा कि ईसाई धर्म के प्रकृति और मानव के बीच के आपसी संबन्ध को लेकर जो दृष्टिकोण है उसको प्रस्तुत करना। मैथ्यू फोक्स, जॉन हॉर्ट, जॉन कोब, माइकल केण, डेविड स्पेन्गलर जैसे धर्म विज्ञानियों द्वारा अब इस दर्शन का विकास हो रहा है।

1.2.7 ईको टूरिज़म (Eco-Tourism)

पारिस्थितिक पर्यटन प्रकृति-प्रेम और उसकी सुरक्षा पर टिकी एक संकल्पना का व्यावहारिक रूप है। हरित राजनीति और मानवमुक्ति प्रयत्न के नीवाधार में ही इसकी बनावट हुई है। लाभ पर केन्द्रित और प्रकृति को नकारनेवाले पर्यटन के स्थान पर पारिस्थितिकी प्रेम से युक्त पर्यटन की खोज ने ही इको-टूरिज़म को जन्म दिया था। इको टूरिज़म शब्द का प्रयोग सबसे पहले सेबल्लोस लासन्टियन ने सन् 1980 में किया था। उन्होंने इको-टूरिज़म की परिभाषा इसप्रकार दी है : "अध्ययन के लिए, विस्मय के लिए, दृश्यास्वादन के लिए जंगली पौधों तथा जीवों के निरीक्षण के लिए, विभिन्न संस्कृति और सभ्यताओं की खोज के लिए स्वच्छ और प्रदूषण मुक्त प्राकृतिक-स्थानों की ओर किये जानेवाली यात्राओं को इको टूरिज़म कहते हैं।"[1]

1. एन.एम. पिर्येसन - इको फेमिनिज़म, इको टूरिज़म मार्क्सिज़म - पृ. 23

इको टूरिज़्म को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने वाली किताब है डेविड ए. फेन्नल की 'इकोटूरिज़्म ए. प्रेफिस' (Eco Tourism A Preface)। इसमें उन्होंने समकालीन संदर्भ में इको टूरिज़्म का विकास किस प्रकार हो रहा है और उससे उत्पन्न नैतिक और दार्शनिक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

पर्यावरण के संरक्षण हेतु इस कार्यप्रणाली को लागू किया गया था। इसमें पर्यटक के आकर्षण केन्द्र के रूप में आश्चर्यजनक बियाबानों, वन्य जीवन एवं उनके जल क्षेत्रों का नियोजन किया जाता है। इस बात पर भी ज़ोर दिया जाता है कि इससे वन एवं बियाबानों को कोई हानि न पहूँचे। प्रारम्भ में यह प्रणाली सोद्देश्यपरक थी। लेकिन धीरे-धीरे यह पर्यटन व्यापार के रूप में परिणत हो गया। पश्चिमी देशों के शासक एवं व्यापारी पर्यावरण संरक्षण का उपयोग अपने व्यापारिक हितों के लिए कर रहे हैं। अभी तक विश्व-व्यापार संगठन से जुडे देश जैविक विविधता (Biodiversity) का उपयोग व्यापारिक लाभ कमाने के लिए करना चाहते हैं।

प्रकृति से प्रेम करना तथा उसकी सुरक्षा मानव जीवन और उनके अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। इसी संकल्पना के साथ इसका प्रादुर्भाव हुआ था। देखना चाहिए कि वैश्वीकरण के युग में 'व्यक्ति' से ज़्यादा 'उपभोक्ता' की मूल्यों की माँग की स्वीकृति अधिक है। स्वाभाविक तौर पर पर्यावरण-पर्यटन की व्यापारिक स्वरूप में औद्योगिक हो जाता है। अर्थ की महत्ता ने प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा की आवश्यकता को धूल में मिला दिया। अर्थात् पर्यावरण पर्यटन प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा को बढावा देने के बजाय 'पर्यावरण - उद्योग' को प्रोत्साहन दे रहा है।

पर्यटन व्यवसाय मुख्यतः वैदेशिक ज़रूरतों को महत्व देते हैं। इसमें फेन्नल ने इको टूरिज़म को समझने और मूल्यांकन करने के लिए संरक्षणवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। इससे यही साबित होता है कि इको टूरिज़म का मौलिक आशय भी संरक्षणवाद ही है। प्रकृति और मनुष्य की सुरक्षा ही इसका मुख्य क्रिया-कलाप है।

1.3 विभिन्न चिन्तकों के पारिस्थितिकी संबन्धी विचार

पारिस्थितिकी संबन्धी जितनी भी अवधारणाएँ तथा वाद उभरकर आये हैं उनका संबन्ध किसी न किसी चिंतकों तथा मनीषियों से जुड़ा हुआ है। पश्चिमी साहित्य में इसप्रकार के चिंतकों की एक लम्बी परंपरा ही देख सकते हैं। अरनोल्ड होसर, विलियम रुकेर्ट, जॉसफ मीकर, लॉरेन्स कवेल, स्वेन बिरकेट्स, जॉन एलडर, मिशेल फूको, तॉरो, जॉर्ज पेर्किन्स मार्श, जॉन मुयर, तियॉडर रोजॉक, क्लैव पोण्डिड़ का पारिस्थितिकी संबन्धी विचारों के प्रचार-प्रसार करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय संदर्भ में सुन्दरलाल बहुगुण, मेधा पाटकर, अरुंधती रॉय, अनील अग्रवाल, संदीप पाण्डेय, सुगतकुमारी, माधव गाडगिल, रामचन्द्रगुहा जैसे कर्मठ व्यक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान इस क्षेत्र में रहा है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी संबन्धी विचारों को प्रस्तुत करने का प्रयास आगे किया गया है।

1.3.1 हेनरी टेविड तॉरो (Henry David Theoreau 1817-1862)

तॉरो अमेरीका के प्रसिद्ध निबन्धकार, कवि, दार्शनिक और पारिस्थितिक विज्ञानी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति है। प्रकृति में मग्न होकर अमरीका भर में पारिस्थितिक बोध जगाने का महत्वपूर्ण कार्य उनके द्वारा हुआ है। अमरीकी वासियों

में प्रकृति की सुरक्षा पर सोच-विचार करने के लिए उनका विचार सहायक निकला। तॉरो जंगलीपन (Wildness) के पूजारी थे। वह पहला चिन्तक है जिन्होंने जीवन का अस्तित्व जंगलीपन में देखा था। उनके अनुसार पूरी दुनिया को प्रकृति मानना चाहिए और प्रकृति की तरह देखना चाहिए। प्रकृति संबन्धी उनके विचारों में ग्रीक, रोमा तथा भारतीय चिन्तन का प्रभाव देख सकते हैं। 'वालड़ेन' का अध्ययन तॉरो के जंगलीपन संबंधी विचारों से परिचय होने के लिए काफी सहायक होगा।

1.3.2 जॉन मयूर (John Myir 1838-1914)

अमरीका के प्राचीन संरक्षणवादियों में उनका नाम उल्लेखनीय है। जॉन मयूर को राष्ट्रीय नगरोद्यानों (National Park) के पिता मानते हैं। सियरा क्लब के सह-संस्थापक भी थे। उनकी प्रमुख किताबों में 'दि मोन्टेन्स ऑफ कालिफोर्निया' (The Mountains of California) 'नेशनल पार्क्स' (National Parks) आदि उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों में अमरीका के पारिस्थितिक संगठनों के विकास कार्य-क्रम में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुयर भी जंगलीपन के उपासक थे।

1.3.3 अलदो लियपोलड (Aldo Leopold 1887-1948)

अलदो लियपोलड, अमरीकी पारिस्थितिक विज्ञ, वनपालक, पर्यावरणवादी जैसे अनेक नामों से जाने जाते हैं। आधुनिक पर्यावरण नीतिशास्त्र को बनाने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मरुस्थल (wilderness) संरक्षण पर उन्होंने आन्दोलन चलाया। उन्होंने जंगलीस्थान के संरक्षण के लिए आवाज़ उठाया है।

अमरीका में वे जंगली जीवन अनुशासन (wildlife management) के प्रवर्तक रहे हैं। पारिस्थितिक तंत्र में दखलंदाज़ी करने की उन्होंने कटु आलोचना की है। उनकी महत्वपूर्ण किताब है "ए सेन्ट कन्ट्री एलमनी' (A Sand Country Almanae) इस ग्रन्थ में उन्होंने 'भू निति' (Land Ethics) संबन्धी नये विचारों को प्रस्तुत किया है।

1.3.4 लूयी मंफोड (Lewis Mumford 1895-1990)

पारिस्थितिकी संबन्धी विचार-विमर्श में लूयी मंफोड का स्थान उल्लेखनीय है। उनका 'मिथ ऑफ दि मशीन' (Myth of the machine) ग्रन्थ आधुनिक पारिस्थितिक बोध संबन्धी विचारों को प्रस्तुत करने में एक मील का पत्थर मानता है। उत्तर आधुनिकता के इस प्रतिरोधी युग में, उनका यह ग्रन्थ यंत्रों के विरोध करने की बात करता है। उनके विचारों में पारिस्थितिक साम्यवादी दर्शन का प्रभाव देख सकते हैं।

1.3.5 रेश्वल कार्सन (Rachel Carson 1907-1964)

रेश्वल कार्सन अमरीका के समुद्रीय जैव-विज्ञानी थी। सन् 1950 से लेकर उनका ध्यान पारिस्थितिक समस्याओं पर केन्द्रित रही। मुख्यतः कृत्रिम कीटनाशकों से उत्पन्न होनेवाली पारिस्थितिक समस्याओं का अध्ययन उन्होंने किया था। उसका परिणाम था उनका मशहूर ग्रन्थ 'दि साइलेन्ट स्प्रिंग' (The silent spring) जो विश्वभर में पारिस्थितिक बोध जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया है। सन् 1962 में इस का प्रकाशन हुआ था उसके ठीक दस साल बाद अमरीका में डि.डि.टी. (D.D.T.) पर प्रतिबद्ध लगा दिया गया। उन्होंने रासायनिक उद्योगों की भी कटु आलोचना की है।

1.3.6 फुकुबोका

आधुनिक युग में प्रकृति की महत्ता को समझने और समझाने का महत्वपूर्ण कार्य करनेवालों में जापान के मसनोबु कुकुवोका का नाम सबसे पहले आता है। प्रकृति को नज़दीकी से देखने, परखने और समझने के लिए उन्होंने खुद की ज़िन्दगी को एक प्रयोगशाला बनाया है। प्रकृति तथा पारिस्थितिकी संबन्धी अपने विचारों को शब्दबद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य भी उन्होंने किया है। 'वन स्ट्राव रेवलूशन' (One straw revolution), 'नेचुरल वे ऑफ फार्मिंग' (Natural way of farming) 'दि थियरी एन्ड प्राक्टीस ऑफ ग्रीन फिलोसवी' (The theory and practice of green philosophy), 'दि रोड बाक टुनेचर' (The Road back to nature) जैसी किताबें उनके प्रकृति संबन्धी विचारों के चिंतन-मनन का परिणाम हैं।

फुकुवोका ने प्रकृति की ओर लौटने की बात कही है। आज मानव और प्रकृति के बीच का संबन्ध टूट गया है। वह प्रकृति से दूर हो गया है। अपने ही कुकर्मों का परिणाम ही आज वह भुगत रहा है। उनके अनुसार इसलिए मनुष्य को प्रकृति की ओर लौटना अनिवार्य हो गया है। लेकिन अब मनुष्य एक अबोध में जी रहा है और सब कुछ कर भी रहे हैं। पुकुवोका के अनुसार "मानव को सबसे पहले अपने इस अबोध को पहचानना चाहिए है। यही है प्रकृति की नज़दीकी में पहूँचने का मार्ग।"[1]

प्राकृतिक खेतीबाडी दुनिया के लिए फुकुवोका की सबसे बडी देन है। फुकुवोका के ही शब्दों में कहें तो "इसका जन्म लगभग पचास वर्ष पहले अचानक

1. फुकुवोका - प्रकृतियिलेक्कु मडङान - पृ. 190

एक पल में ही हुआ था। मेरे लिए यह एक अनुमान था जो मेरे ही आध्यात्मिक दृष्टिकोण का परिणाम था। इनके मूल में आधुनिक कृषि-विज्ञान की विधियाँ तो हैं ही नहीं। क्योंकि मैं ने अपने अनुभवों से यह सीखा है कि कृषि संबन्धी जितने भी कार्य-कलाप हो रहे हैं जैसे मिट्टी की जोताई, खादों का प्रयोग ये सब निरर्थक है।"[1] उनके मत में अगर सही तरह का पारिस्थितिक संतुलन विद्यमान है तो मानव की ज़िन्दगी भी संपुष्ट हो जायेगी और प्रकृति भी समृद्ध हो जायेगी। यहाँ समृद्धि से उनका तात्पर्य सब तरह के जीवों से भरे सचेतन जगह से है।

फुकुवोका की दृष्टि में प्रकृति ही ईश्वर है या फिर प्रकृति में ही ईश्वर बसा हुआ है। अगर हम इस विश्वास के साथ जीयेंगे तो प्रकृति के प्रति हमारा व्यवहार भी उतना ही अच्छा और नैतिक होगा।

1.3.7 गाँधीजी

भारत में प्रकृति संरक्षण और प्रदूषण-मुक्ति के विचारों को फैलाने का श्रीगणेश राष्ट्रपिता महात्मागाँधी ने किया था। सन् 1908 में लिखित 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने प्रकृति, विकास एवं सभ्यता संबन्धी अपने विचारों को स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। गाँधीजी ने एक ऐसे विकेन्द्रित समाज का संकल्प किया था जिसमें प्रकृति शोषण तथा जल और वायु प्रदूषण के महादैत्यों को स्थान नहीं है। गाँधीजी ने लिखा है "इस ब्राह्माण्ड के पाँच मुख्य तत्व है पृथ्वी, वायु, जल, आकाश और अग्नि। मानव का शरीर भी इन्हीं पाँच तत्वों से बना हुआ है। इसलिए यदि मानव स्वच्छ

---

1. फुकुवोका - प्रकृतियिलेक्कु मडङान - पृ. 190

वायु, जल, मिट्टी तथा खुली धूप से युक्त एक परिवेश में जीये तो निश्चय ही वहाँ उनका शरीर भी स्वस्थ रहेगा।"[1]

गाँधीजी आधुनिक सभ्यता को भौतिक सभ्यता की संज्ञा देते थे। उनके अनुसार तकनीकी सभ्यता की चमक-दमक के कारण एक गम्भीर त्रासदी से मानव मन अभिशप्त है। गाँधीजी तमाम यंत्रों के खिलाफ़ तो नहीं है। उनका विरोध यंत्रों से नहीं यंत्रों के दुरुपयोग से था। हिन्द स्वराज में गाँधीजी ने इसके ओर संकेत देते हुए लिखा है - "अगर यंत्र समूह के प्रति सनक और भी बढ़ जायेगी तो हमारा यह देश एक असंतुष्ट देश ही रह जायेगा।"[2] आज तो जिन्हें मेहनत बचाने वाले यन्त्र कहते हैं उनके पीछे लोग पागल हो गए हैं। यंत्रों के उपयोग के पीछे जो प्रेरक कारण है वह श्रम की बचत नहीं है, बल्कि उनकी हद बाँधने का है। पश्चिम की भोगवादी सभ्यता से पैदा होनेवाले युद्ध, प्रदूषण और गरीबी को गाँधीजी ने शताब्दी के प्रारम्भ में ही पहचान लिया था। 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने भारत को इसका अंधानुकरण न करने की चेतावनी दी है।

1.3.8 सुन्दरलाल बहुगुणा

सुन्दरलाल बहुगुणा प्रकृति के सच्चे प्रेमी हैं। वे कहते हैं प्रकृति के खिलाफ़ युद्ध छिड़ गया है। आज पूरी दुनिया में पर्यावरणीय चेतना फैल रही है। विकास की लगभग हर गतिविधियों के लिए पर्यावरणीय मानदण्ड निर्धारित किए जा रहे हैं। ऐसे

1. के. अरविन्दाक्षन - गाँधी के जीवन दर्शन - पृ.सं. 135
2. M.K. Gandhi - Hind Swaraj - If the machinery craze grows in our country, it will become an unhappy land, P. 81,

में सुन्दरलाल बहुगुण के उक्त कथन कभी भी गलत नहीं हो सकते। बहुगुणा विकास के खिलाफ़ नहीं है लेकिन वे ऐसे विकास का विरोध करते हैं जो मानव से उसका ज़िंदा रहने का अधिकार खींचता है। उनके अनुसार सबसे पहले इस बात पर विचार करना चाहिए कि "मनुष्य को अपने परिवेश, अपनी विशिष्ट जीवन-शैली और साँस्कृतिक पहचान के साथ जीने का अधिकार है कि नहीं।"[1] इसीलिए विकास की सभी अवधारणाओं को प्रगति के लिए अपनाई जानेवाली सभी परियोजनाओं को इसी कसौटी पर खरी उतरनी चाहिए। उनके अनुसार विकास के केन्द्र में मनुष्य होना चाहिए। यहाँ मनुष्य से उनका तात्पर्य उन लोगों से है जो विकास योजनाओं का सबसे अधिक शिकार होते हैं।

टेहरी-गढ़वाल निवासी सुन्दरलाल बहुगुणा के रूप में वृक्षों को एक सच्चा मित्र मिल गया है। वृक्षों की रक्षा के लिए उन्होंने संपूर्ण जीवन ही समर्पित किया है। वन संरक्षण की दिशा में उनका 'चिपको आन्दोलन' एक साहसी एवं विजयी कदम रहा है।

बहुगुणा ने धरती के अनवरत शोषण का मुख्य दोषी के रूप में उपभोगवाद ठहराया है। सुन्दरलाल बहुगुणा के अनुसार धरती के लिए पैदा हुआ पर्यावरण प्रदूषण का संकट प्राकृतिक प्रकोपों से कहीं अधिक गहरा है। इसका हल तकनीकी उपायों से नहीं हो सकती। बहुगुणा के अनुसार प्रदूषण की समस्या पश्चिम के उद्योग प्रधान देशों के अंधानुकरण करने से उत्पन्न हुई है। अपनी समस्याओं के

---

1. सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार - पृ. 52

समाधान के लिए हमने उनकी पद्धतियों को अपनाया। वास्तव में इन उद्योग प्रधान देशों में समृद्धि, गरीब देशों के संसाधनों की लूट और वहाँ अपने बाज़ारों के विस्तार से हुई है। भारत जैसे विकासोन्मुख देशों ने प्रगति के नाम पर कृषि विस्तार के लिए जंगल काट डाले, भीमकाय बाँध बनाकर उपजाऊ ज़मीनों और जंगलों को डूबो दिया और उद्योगों का विस्तार करने के लिए लहलहाते खेतों पर सीमेंट के जंगल खडे कर दिये। प्रदूषण और उससे उत्पन्न पारिस्थितिक संकट इन सभी का कुपरिणाम है।

इसलिए सुन्दरलाल बहुगुणा कहते हैं कि "समय की माँग है कि हम एक ऐसी वैकल्पिक जीवन-पद्धति और तकनीकी का विकास करें जो फिजूलखर्ची के स्थान पर आवश्यकताओं की पूर्ति और बडे के स्थान पर लघु का विकल्प दे सकें। लघु से तात्पर्य दीर्घ-जीवी पर्यावरण मित्र और आर्थिक स्थायित्ववाला से है। हमें चाहिए उन साधनों को खोजें जिनसे विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन कायम हो सके।"[1]

1.3.9 वन्दना शिवा

विश्व के मशहूर पारिस्थितिक चिंतकों में श्रीमती वन्दनशिवा का स्थान उल्लेखनीय है। वन्दना एक पारिस्थितिक कार्यकर्त्री भी है। आजकल वे इन्टेर नेशनल फॉरम ओन ग्लोबलाइसेशन (Internation forum on globalisation) नामक संगठन में काम कर रही हैं। इसके अलावा रिसेच फाउन्डेशन फोर साइन्स एन्ड टेकनॉलजी नेचुरल रिज़ोर्स पोलिसी (Research Foundation for Science

1. सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार - पृ. 67

Technology Natural Resources Policy) संस्था के निदेशक के रूप में भी काम कर रही हैं। भारत के प्रमुख पारिस्थितिक आन्दोलनों जैसे 'मूकघाटी आन्दोलन', चिपको आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन तथा प्लाच्चिमडा के आन्दोलन में वे सक्रिय भागीदार रही हैं।

विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों के शोषण संबन्धी बहुत सारी समस्याओं पर उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है। उनकी किताबों में 'स्टॉलेन हार्वेस्ट' (Stolen harvest), 'दि हाइजकिंग ऑफ दि ग्लोबल फूड सप्लै' (The Haijacking of Global food supply), 'दि बयो पैरसी : दि प्लन्डेर ऑफ ग्रीन रेवलूशन' (Biopiracy : The Plunder of nature and knowledge), वाटर वोर (water war) 'ग्लोबलाइसेशनस न्यू वोर्स' (Globalisations new wars, sead, water and life forms) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

1.3.10 सुगतकुमारी

सुगतकुमारी एक ऐसी शख्स है जिनका जीवन प्रकृति संरक्षण और मानव अधिकारों के संघर्षों के लिए समर्पित है। वे भारत का पहला प्रकृति संरक्षण संगठन का संस्थापक हैं। पारिस्थितिकी संबन्धी उनके महत्वपूर्ण विचार 'कावुतीण्डल्ले', 'वनरोदनम' शीर्षक पुस्तक में देख सकते हैं। उनके लिए प्रकृति की रक्षा और सुरक्षा एक अटूट विश्वास की तरह है जो एक बार प्रकृति से संबन्ध स्थापित करने के बाद टूटता नहीं है। सन् 1979 में हुई मूकघाटी आन्दोलन में वे सक्रिय रूप से भागीदार रही है। उन्होंने विकास की गलत नीतियों पर ऊँगली उठाया और पारिस्थितिकी

संतुलन को बिगाडनेवाली विकास परियोजनाओं को रोकने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। सुगतकुमारी ने प्रदूषण को सबसे बडी विपत्ति मानी है। प्रदूषण पारिस्थितिकी संरक्षण का सबसे बड़ा शत्रु बन गया है। मिट्टी, पानी, तथा वायु प्रदूषण से पृथ्वी पूरी तरह सड चुकी है। हमारे पास समय बहुत कम है। इसलिए वे चाहती हैं कि अब कुछ कर दिखाने का समय आ गया है, इसके लिए प्रकृति शोषण के खिलाफ़ हो रहे युद्ध में सबकी भागीदारी माँगती हैं चाहे उसमें जीत हो या हार। केरल में अब तक हुए सभी पारिस्थितिक आन्दोलनों में उसकी सक्रिय भागीदारी रही है।

1.4 भारत में पारिस्थितिक आन्दोलन के विकास की पृष्ठभूमि

स्वतंत्र भारत को कई गंभीर समस्याओं का सामना करना पडा। देश की बढ़ती जन-संख्या एक बहुत बडी समस्या थी। उनकी माँगों की पूर्ति के लिए विकास योजनाओं पर सोचना पड़ा। भारत भर में पारिस्थितिक बोध फैलाने की पृष्ठभूमि में तीन मुख्य कारण रहे हैं। वे इसप्रकार हैं :

1. आर्थिक विकास
2. विज्ञान पर हमारा विश्वास
3. तकनीकी और उद्योगों के द्वारा धरती पर स्वर्ग उतारने की संकल्पना

परिणाम स्वरूप प्रकृति को अनदेखा करने लगे। हाँ इस बात से सहमत भी हूँ कि आर्थिक विकास से हमें मानव-निर्मित अनेक भौतिक और तकनीकी लाभ मिले हैं। वाहन, हवाई जहाज़, कपड़ा धोने की मशीनें, प्लास्टिक की बाल्टियाँ, डिब्बा बंद खाना, टेलीविज़न, कम्प्यूटर, मोबाइल फोन न जाने कितनी भौतिक सुख-

सुविधाओं को हम भोगते रहे हैं। लेकिन इसकी एक अन्य पहलू यह भी है जिससे हम प्राकृतिक जगत से मिलनेवाले वास्तविक लाभों जैसे परिवार, समुदाय, उपजाऊ मिट्टी, पर्याप्त और स्वच्छ जल, आदि से वंचित भी हो गये हैं।

भारत में प्रकृति संरक्षण और प्रदूषण मुक्ति के विचारों को फैलाने का श्रीगणेश इस शताब्दी के प्रारम्भ में गाँधीजी ने किया था। गाँधीजी ने एक विकेन्द्रित समाज का स्वप्न देखा था, जो प्रकृति शोषण तथा उद्योगों के द्वारा पैदा होनेवाले जल-वायु प्रदूषण से मुक्त हो। नेहरू प्रकृति-प्रेमी तो थे लेकिन वे पश्चिमी ढंग के विकास के पूजारी थे। उनके इस मोह के कारण देश में औद्योगिक हितों को सर्वोपरि स्थान दिया गया। पर्यावरण की रक्षा के विचार को भारतीय नियोजन में स्थान देने का श्रेय योजना आयोग के सदस्य स्व. डॉ. पीताम्बर पंत को जाता है। सन् 1979 के स्टॉकहोम सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागाँधी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। उन्होंने प्रदूषण को गरीबी से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने सरकारी स्तर पर एक 'राष्ट्रीय पर्यावरण नियोजन समिति' की स्थापना भी की। उसके बाद सन् 1980 के संसदीय चुनाव में पर्यावरण की रक्षा मुख्य चुनावी मुद्दा बन गया। उस समय चल रहे दो जन आन्दोलनों-चिपको आन्दोलन और मूकघाटी आन्दोलन का प्रभाव इसके कारण बन गए। ये दो आन्दोलन पूरे देश में पर्यावरण की रक्षा के लिए जन चेतना जागृत करने में सहायक बन गये। 3 दिसम्बर 1985 को हुई भोपाल ट्रेजडी ने पारिस्थितिक सजगता पर सोचने के लिए हमें मजबूर किया। भोपाल में स्थित कार्बाइड फैक्टरी से गैस का रिसाव होने से काफी लोग मारे गये थे, बहुत सारे लोग अपंग हुए। कुछ लोग बीमारी

के शिकार हो गए। अधिकांश रिसी हुई गैसें मिट्टी, वायु तथा जल में घुल गयी जिससे वहाँ का वातावरण पूरी तरह प्रदूषित हो गया। ऐसे ही कुछ परिवेश में ही भारत में पारिस्थितिक बोध संबन्धी अवधारणाएँ जाग उठी थी।

पारिस्थितिकीय ह्रास के कारण मानव-जाति के कयामत का दिन निकट पहूँच गया है। यह पारिस्थितिक ह्रास औद्योगिकीकरण तथा विकास संबन्धी गलत नीतियों का परिणाम है, जिसके कारण बहुत सारी पारिस्थितिक समस्यायें उभरकर आयी हैं। आगे इसका विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

1.5 विभिन्न पारिस्थितिक समस्यायें

आज दुनिया बहुत सारी पारिस्थितिक समस्याओं का सामना कर रही है। ऐसे में प्रकृति-शोषण, प्राकृतिक प्रकोप, विकास परियोजनाओं से जन्मे पारिस्थितिक समस्याएँ, प्रदूषण जैसे पारिस्थितिक मुद्दा, प्रकृति-पारिस्थितिकी तथा मनुष्य के लिए खतरा साबित हो रहा है।

प्रदूषण आज दुनिया सामना करनेवाली सबसे बडी पारिस्थितिक समस्या है। प्रदूषण की समस्या पूरी दुनिया के जल, थल और वायु पर छा गयी है। यह समस्या पूर्णतः मानव की उपज है।

1.5.1 प्रदूषण शब्द की परिभाषा

हमारी मूलभूत तथा अनवरत रूप से चलनेवाले विकास कार्यक्रमों के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज सर्वाधिक विवादास्पद और महत्वपूर्ण विषय का बन गया है। प्रेमानन्द चन्दोला ने प्रदूषण की परिभाषा कुछ इसप्रकार दिया

है कि "प्रदूषण व पारिस्थितिक असंतुलन वह क्रिया है, जिसमें पर्यावरण का संतुलन और निर्मलता नष्ट हो जाती अथवा बिगड जाती है। इसे पर्यावरण का बिगाड कह सकते हैं। ऐसा कई तरह से और कई कारणों से होता है।"[1]

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति के साथ प्रदूषण शब्द की उत्पत्ति भी हो गयी है। पारिस्थितिकी में असंतुलन उत्पन्न होने की स्थिति को ही प्रदूषण कहते हैं। मानव की क्रियाएँ जिसके द्वारा हवा, पानी, मिट्टी, जैव जगत एवं संसाधनों के सहज भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में अवांछनीय परिवर्तन होने से वनस्पति, प्राणि जगत् व संपूर्ण भौतिक पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है उसे प्रदूषण कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसके लिए पोल्यूशन शब्द का प्रयोग होता है। प्रदूषण को उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदार तत्वों को पर्यावरणीय जगत् के चिंतक लोग प्रदूषक का नाम देते हैं। ऐसे सभी पदार्थ, ऊर्जा एवं कारक तत्व जो कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानव के हस्तक्षेप से उसमें विकृति उत्पन्न हो जाती है। मानवोत्पादित रसायनों और विनाशकों से जो भयावह तत्व जन्म लेते हैं और फिर उनके द्वारा उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियाँ ही प्रदूषण कहलाती हैं।

मानव और पारिस्थितिकी का बहुत गहरा नाता है। इसलिए पारिस्थितिकी में जितने भी परिवर्तन होते हैं उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप का परिवर्तन मानव पर ही पड़ता है। यह प्रभाव तुरन्त प्रकट नहीं होता। यह प्रकट होने के लिए काफ़ी समय लगता है। अब आज की दुनिया इस समस्या से जूझ रही है। वायु प्रदूषण,

---

1. प्रेमानन्द चन्दोला - प्रदूषण पृथ्वी का ग्रहण - पृ. 42

ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण, खेती का प्रदूषण, परमाण्विक प्रदूषण, रासायनिक प्रदूषण आदि के सम्मिलित रूप ने पारिस्थितिकी की परिस्थितियों को बिगाड रही है।

1.5.2 प्रदूषण के प्रमुख कारण

1. बढ़ती आबादी
2. औद्योगिकीकरण और शहरीकरण
3. संसाधनों का अनुचित दोहन
4. मनुष्य का असंयमित व्यवहार
5. पर्यावरण ज्ञान की अनभिज्ञता
6. विज्ञान और तकनीक का गलत प्रयोग

इन सभी कारणों पर गंभीरता से विचार-अध्ययन करने की आवश्यकता है।

1.5.2.1 बढ़ती आबादी

लगातार जनसंख्या बढ़ने के कारण पारिस्थितिकी में छेड़-छाड़ भी बढ़ रही है। जनसंख्या की वृद्धि और खाद्यान्न के उत्पादन में कोई समानता नहीं है। आबादी की वृद्धि के साथ कृषि-क्षेत्र के विस्तार तथा कल-कारखाने के लिए जंगलों की अंधाधुंध कटाई हुई। जिसके कारण मिट्टी का कटाव ज़ारी है। मिट्टी की उर्वर परतें वर्षा द्वारा बहकर नष्ट हो रही है जिससे उपज में कमी होने लगी है। जनसंख्या बढने

के साथ वाहनों तथा उद्योगों की संख्या भी बढ़ी जिससे प्रदूषण की समस्या उठ खड़ी हुई है। हरित क्रांति ने मिट्‌टी, जल, वायु प्रदूषण प्रत्यक्ष रूप से फैलाया है जिसके कारण मिट्‌टी की भौतिक अवस्था बिगड चुकी है।

बढ़ती हुई जनसंख्या अभिशाप है। पारिस्थितिक तंत्र में जैव-घटक के बढ़ने की सीमाएँ होती हैं। जनसंख्या-वृद्धि उस घटक की सीमाओं को लांघ चुकी है। जनसंख्या बढ़ने से पशु-पक्षी का काफी शिकार हुआ है। पशु-पक्षी की बहुत सारी प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने पारिस्थितिक तंत्र के जैव और अजैव घटक में असंतुलन उत्पन्न कर दिया है।

1.5.2.2 औद्योगिकीकरण और शहरीकरण

जनसंख्या की वृद्धि के कारण रोज़गार की खोज में जनसंख्या शहर की ओर पलायन कर रही है। औद्योगिक क्रांति के कारण जीविका साधन ढूँढने के लिए लोग शहर की ओर जाने लगे हैं। शहर की आबादी बढ़ने के कारण सडकों पर अपार भीड़ देखने को मिल रही है। गाडियों तथा उद्योगों की संख्या में लगातार वृद्धि से प्रदूषण बढ़ रही है। शहर में शुद्ध वायु मिलना मुश्किल हो गया है।

अत्यधिक शहरीकरण की प्रवृत्ति से भी शहरों और जल सुविधावाले क्षेत्रों में अधिक भीड़-भाड हो रही है और जीवित रहने से लेकर स्वच्छता तथा विकास के विभिन्न पहलुओं में महत्वपूर्ण योगदान होने के कारण इस्तेमाल बहुतायत तौर पर बढ़ रहा है। अधिकांश शहरों में जनसंख्या वृद्धि के कारण और मनुष्यों में तेज़ी से विकसित होती जा रही शहरीकरण की लालसा से दिन-प्रतिदिन शहरों में उपजी

विभिन्न समस्याओं के साथ ही मल-मूत्र सफाई तथा निस्तारण की समस्या भी अबाध गति से बढ़ रही है।

यह सत्य है कि औद्योगिकीकरण आधुनिक जगत की एक महत्वपूर्ण परिलब्धि है। इसने हमारी संपन्नता, सुख-सुविधाएँ और सामुदायिकता को बढाने में तथा सुव्यवस्थित रूप से उभारने में काफ़ी मदद भी की है। लेकिन इसका एक पहलू यह भी है और जो सबसे महत्वपूर्ण और खतरनाक है कि यह भावि विनाशक स्थापित हो रही है।

1.5.2.3 विज्ञान और तकनीकी

विज्ञान तथा तकनीकी एक दूसरे से संबंधित है। मनुष्य की विकासशील प्रवृत्ति होने के कारण तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन दोनों का विकास भी काफी महत्वपूर्ण और आवश्यक हो गया है। विज्ञान तथा तकनीकी की सहायता से, मनुष्य की रोज़मरा ज़िन्दगी को और अधिक सुविधाजनक बनाने के लिए बहुत सारे आविष्कारों को खोज निकाले हैं। जैसे कि मोटर गाडियाँ, घरेलू सामग्रियाँ, प्लास्टिक, ये जितने ही उपयोगी सिद्ध है उससे ज़्यादा हानिकारक भी है। मिट्टी, पानी, वायु इससे पूरी तरह प्रदूषित हो गया है। अब विज्ञान की सहायता से ऐसे तकनीकों का आविष्कार हो रहा है या आगे होने की संभावना है कि तकनीकी आविष्कारों से उत्पन्न प्रदूषण को दूर कर सकते है, और जो ज़्यादातर पारिस्थितिकी के अनुकूल हो।

1.5.2.4 संसाधनों का अनुचित दोहन

प्रदूषण की समस्या पैदा करने में मनुष्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित दोहन की प्रक्रिया एक प्रमुख कारण बन गया है। "प्राकृतिक स्रोतों का प्राकृतिक संसाधन बनाना वास्तव में मानव की कार्यकुशलता का परिणाम है। इसप्रकार जलप्रपात, वायु, मिट्टी, जंगल सब संसाधन बन जाता है।"[1] अर्थात् प्राकृतिक स्रोतों को प्राकृतिक संसाधन बनाना, प्रकृति के प्रति मनुष्य के उपयोगितावादी दृष्टिकोण को ही प्रकट करता है। बड़े पैमाने पर जंगल की कटाई हो रही है, जिससे अंतरिक्ष में कार्बनडाइक्साइड की मात्रा बढ़ी है और वायु प्रदूषित हो रही है। इसके अतिरिक्त वर्षा के कारण मिट्टी की ऊपरी परत नष्ट हो रही है जिससे मिट्टी की उर्वरता नष्ट होती है।

पर्यावरण ज्ञान की अनभिज्ञता और मनुष्य का असंयमित व्यवहार भी पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाने का कारण बन गया है। जैसे कि पहले ही सूचित किया गया है कि अबोध से जन्मे मानव के क्रियाकलापों के कारण ही पारिस्थितिक समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं। इसलिए पारिस्थितिकी की सही जानकारी हर नागरिक में अपेक्षित है। अपने संयमित व्यवहार और पारिस्थितिकी ज्ञान के द्वारा मानव एक बेहत्तर दुनिया बना सकते हैं।

1.6 प्रदूषण के विभिन्न प्रकार

प्रदूषण विभिन्न प्रकार के होते हैं। जैसे कि जलप्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, खेती का प्रदूषण रासायनिक प्रदूषण, परमाण्विक प्रदूषण

---

1. डॉ. प्रभाकुमारी - जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण प्रदूषण - पृ. 26

आदि। इन प्रदूषणों का मानवीय जीवन तथा पारिस्थितिक-तंत्र में दूरगामी असर डालने की क्षमता है। प्रदूषित वातावरण में जीना, गंदा पानी पीना, विषैले कीटनाशकों से भरे फल तथा भोजन की वस्तुएं खाना आज मानव की नियति कुछ ऐसा ही हो गया है। लेकिन ये सब मानव के कुकर्मों का परिणाम है। इसलिए इसका अंजाम भी उसे खुद ही भुगतना पड़ेगा।

1.6.1 जल प्रदूषण

भूमंडल में दो तिहाई हिस्सा जल ही है। जल के वांछित गुणों के कारण हमारी दैनिक जीवनचर्या के साथ विकास के प्रत्येक पहलू में भी काम आता है। उद्योगों की शुरुआत जलीय ऊर्जा के आधार पर हुई थी। जल का प्रदूषण भी तभी से प्रारम्भ होता है। जल में प्रदूषण उत्पन्न होने पर उसमें घुलनशील कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ मिल जाते हैं प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, रंग, घोल, अवशेष, डिटर्जेंट, उच्च तापमानीय जल, रेडियोधर्मी तरंगों आदि का जल में सम्मिश्रण हो जाने से जल की बी.ओ.डी. मात्रा में भारी कमी आ जाती है। और वह मानव, वनस्पति, जीव-जंतु जगत के लिए उतना उपयोगी नहीं रह पाता है जितना की अपने मूल रूप में होता है। विभिन्न कीटाणुओं और ज़हरीले रसायनों तथा कार्बनिकों के सम्मिश्रण की अधिकता के कारण जल की स्वतः शुद्धि की प्रवृत्ति तथा शक्ति भी नष्ट हो जाती है। जल की ऐसी अवस्था को ही हम जल प्रदूषण की संज्ञा देते हैं।

पृथ्वी का दो तिहाई हिस्सा जलीय है। जिसमें से अधिकांश खारा जल समुद्रों में भरा है। शेष 18 प्रतिशत ध्रुवों में बर्फ के रूप में जमा है। पीने लायक मीठा पानी संपूर्ण विद्यमान पानी का 8 प्रतिशत ही है। वही हमारी जीवनोपयोगी

दैनिक कार्यों के लिए इस्तेमाल योग्य होता है किंतु यह हमारी आवश्यकताओं का बहुत छोटा सा हिस्सा पूरा कर पाता है। पहाड़ी इलाकों में उद्योगों के नहीं के बराबर होने के कारण यहाँ का जल प्रदूषण अभी निम्न स्तर पर ही है। किंतु मैदानी भागों तथा अत्यंत औद्योगिक शहरों में खुला जल तो भूमिगत जल भी 10 प्रतिशत प्रदूषित हो चुका है।

तेल-पेट्रोलियम के उत्पादन तथा विषाक्त रसायनों के उत्पादन वाले उद्योग के कूड़े-कचरे, नदियों और समुद्र में उत्सर्जित किये जाने के कारण जल-प्रदूषित हो रहा है। इन हानिकारक पदार्थों की मात्रा काफ़ी बढ़ गई है। एक देश के उत्सर्जित हानिकार पदार्थ समुद्री धाराओं में मिलकर कई देशों के जल को प्रदूषित कर रहे हैं। जब जल के भौतिक, रसायनिक गुण में गिरावट आती है तो वह मनुष्य के लिए तथा पारिस्थितिकी-व्यवस्था के लिए हानिकार होता है जिससे जैव-व्यवस्था असंतुलित हो जाती है।

भारत में जल का एक महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक प्रभावशाली स्रोत नदियाँ ही हैं। किंतु आज विश्व के अन्य देशों की भांति ही हमारे देश की गंगा, यमुना, कावेरी, कृष्णा, गोदावरी, दामोदर, पेरियार आदि नदियाँ लगभग 70 प्रतिशत प्रदूषित हो चुकी है। दामोदर नदी का आसनसोल से दुर्गापुर तक बिलकुल काला हो गया है। केरल के पेरियार तथा चालियार नदी का जल प्रदूषण से भूरा होने लगा है। दिल्ली में यमुना नदी नाले में बदल गयी है। गंगा नदी मोकामा से बरौनी तक काफ़ी प्रदूषित हो गयी है जहाँ बाटा तथा फैक्टरियों के कचरे रोज़ दिन गंगा में मिल रहे हैं। कानपुर के पास भी गंगा मैली हो गयी है।

1.6.2 वायु प्रदूषण

पर्यावरण में काफी अंतर आने से वायु के गुणकारी तत्व में या फिर उनके मूल स्वरूप में काफ़ी बदलाव आते हैं। वायु में आक्सीजन की कमी और अवशिष्टों की बढ़ोत्तरी वाली स्थिति इस क्षेत्र की मुख्य समस्या है। अत्यधिक शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, बढ़ती यातायात वायु प्रदूषण के मुख्य हेतु है। इसका प्रभाव मात्र स्थानीय वातावरण में व्याप्त वायु तक नहीं डालते हैं, वरन ये धूल, रेत, ज़हरीली गैस, धुएँ आदि के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक फैलते रहते हैं। इस तरह वायु प्रदूषित हो जाती है। दूसरी तरफ़ हवा को शुद्ध करते वृक्षों की तादाद में भारी कमी हो रही है। प्रदूषित वायु हमारे पारिस्थितिकी जगत के लिए भी विनाशक है। क्योंकि इससे पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ जाता है और विश्व तापन, ओज़ोन परत का छेदीकरण, अम्लवर्षा, हिमटोप का पिघलना जैसे नयी पारिस्थितिक समस्यायें भी पैदा होती हैं।

वायु प्रदूषण के कारण बहुत सारी अन्य पारिस्थितिक समस्यायें भी उभरकर आयी हैं। जलवायु परिवर्तन, विश्व-तापन, ओज़ोन परत में छिद्र, हिमटोप (glariers) का पिघलना जैसी नयी पारिस्थितिक समस्याओं का सामना आज दुनिया कर रही है। इनका मानव जीवन तथा पारिस्थितिक तंत्र पर दूरगामी असर होने की संभावना है। वैज्ञानिक अध्ययनों के मुताबिक यह तथ्य सच ही स्थापित हो रहा है।

1.6.2.1 जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन आज दुनिया सामना करनेवाली पारिस्थितिक समस्याओं में प्रमुख है। जलवायु परिवर्तन के कारण ध्रुव की बरफ पिघलने लगी है। क्योंकि

औद्योगिकीकरण के कारण जीवाश्म इंधन जलने के कारण कार्बनडाइक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। इसलिए अन्तरीक्ष का तापमान बढ़ गया है। जलवायु में परिवर्तन होने के कारण सूखा, बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोपों को झेलने के लिए दुनिया मजबूर हो रही है।

1.6.2.2 विश्व-तापन (Global warming)

औद्योगिकरण के कारण जीवाश्म ईंधन और पेट्रोलियम पदार्थों की दहन क्रिया के कारण कार्बनडाइक्साइड और सल्फरडाइक्साइड अन्तरिक्ष में बढ़ रहा है। क्योंकि जीवाश्म ईंधन की दहन क्रिया से बडी मात्रा में कार्बनडाइक्साइड उत्सर्जित हो रहा है जो तापमान को बढ़ा रहा है। अवरक्त किरणें, जो सौर्य विकिरण में होती हैं, जो बड़ी तेज़ गति से धरती पर आती है फिर लौटने के समय इसकी गति थोड़ी कम पड़ती है और धीरे-धीरे लौटने लगती है। कार्बनडाइक्साइड गैस की अधिक मात्रा अन्तरिक्ष में रहने के कारण उसे जकड लेती है जिसके कारण पृथ्वी की सतह और अधिक गर्म हो जाती है। वायुमंडल में उपस्थित कार्बनडाइक्साइड, मीथेन और जलबाष्प काँच की तरह रात में पृथ्वी की सतह को गर्म रखती है। इन्हें ही ग्रीन हाउस गैस कहते हैं। अवरक्त किरणें ग्रीन हाउस गैसों से परावर्तित होकर पृथ्वी की तरफ़ मुड़ती है जिसके कारण वातावरण का तापमान रात में भी बढ़ जाता है। इसप्रकार से तापीय ऊर्जा के वायुमंडल में सांद्रण से धरती के तापमान में वृद्धि होती है जिसे विश्व-व्यापी-ताप कहते हैं।

विश्व-तापन के कारण भू मंडल गरम हो रहा है और सूखा, तूफान, बाढ़ मृत्यु दर में वृद्धि हो रही हैं। इसके दूरगामी प्रभावों में संक्रमण एवं रोग, खाद्य-

समस्या, अकाल तथा जैव-विविधता को खतरा उत्पन्न होगा। विश्व-तापन के कारण बरफ पिघलने लगी है जिसके कारण तटीय प्रदेश की डूब जाने की संभावना है। मौसम तथा पर्यावरण वैज्ञानिकों के अनुसार इक्कीसवीं शताब्दी के मध्य तक हिमालय के सभी हिमनद, हिमझीलों में परवर्तित होगा। जिसके कारण विध्वंसक बाढ़ आयेंगी। नई खोजों से पता चला है कि पृथ्वी के गरम होने के कारण उत्तर की ओर ग्रीनलैंड के हिमनद बडी भयावह गति से पिघलने लगा है।

1.6.2.2 ओजोन परत का छेदीकरण

वायु प्रदूषण का दूसरा परिणाम है ओजोन परत का छेदीकरण। ओजोन परत पृथ्वी की रक्षा कवच है। यह आक्सीजन की परत है जो सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। ओजोन परत (O3) में छिद्र के लिए उत्तरदायी गैस क्लोफ्लोरोकार्बन्स (CFCs) है। यह गैस फ्रिज, एयरकंडीशन, कूलर से निकलता है। इसके एक अणु ओजोन के सहस्त्रों अणुओं को नष्ट कर दे रहे हैं। ओजोन परत में छेद होने के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया ठीक से नहीं हो पा रही हैं। ओजोन के क्षय से वायु-मंडल का तापमान बढ़ने लगा है। अधिक तापमान के कारण पौधे के डी.एन.ए. के मूल आधार में परिवर्तन हो जाता है जिससे पौधों में व्याधियाँ होने लगी हैं।

1.6.2.3 अम्ल वर्षा या तेजाबी वर्षा

अम्लवर्ष या तेजाबी वर्षा वायु प्रदूषण का एक ओर नतीजा है। यह 65 प्रतिशत सल्फ्यूरिक एसिड, 30 प्रतिशत नाइट्रिक एसिड और पाँच प्रतिशत

हाइड्रोक्लोरिक एसिड से होती है। सर्वप्रथम 1952 में रोबटएंगस स्मिथ ने मैनजैस्टर में अम्लवर्षा की खोज की थी। अम्लवर्ष जैव-अजैव घटक को दुष्प्रभावित करती है। मिट्‌टी, जल, वायु को भी प्रदूषित करती है। वायु मंडल में संचित कार्बनडाइक्साइड- जो जीवाश्म ईंधन की दहन-क्रिया से व्याप्त है, पेट्रोलियम पदार्थ की दहन-क्रिया से उत्सर्जित सल्फरडाइक्साइड और नाइट्रिक ऑक्साइड बारिश के दौरान नमी से प्रतिक्रिया करके वर्षा जल को अम्लीय बना देते हैं। जब नाइट्रोजन और सल्फर के आक्साइड अस्वीकृत हो जाते हैं जिससे अम्ल बनते हैं। यह जल में घुलकर उसे भी अम्लीय बना देते हैं। अम्ल वर्षा के प्रमुख कारण हैं औद्योगीकरण। सडक यातायत, पेट्रोकेमिकल और अन्य खनिज तेलों से चलने वाले उद्‌योग नाइट्रोजन आक्साइड का भी उत्सर्जन कर रहे हैं।

अम्ल वर्षा पारिस्थितिकी तंत्र को अस्त-व्यस्त कर देती है। इस वर्षा से मिट्‌टी, हवा तथा जल प्रदूषित होते हैं। मछलियाँ मर जाती हैं। अनेक प्रकार के उपयोगी जीवाणु को नष्ट कर देती है, जिससे भूमि की उर्वरता कम हो जाती है।

1.6.3 मिट्‌टी प्रदूषण

पर्यावरण के विभिन्न सहायक घटकों में मिट्‌टी का महत्वपूर्ण स्थान है। संतुलित विकास तथा जीवन अस्तित्व में जलवायु के समान इसकी भी अति महत्वपूर्ण भूमिका है। विकास, विनाश, संरक्षण, भक्षण जैसे जैविक क्रियाकलापों पर पर्यावरण प्रदूषण के कारण हानिकारक प्रभाव नज़र आने लगा है। इसके फलस्वरूप मृदा की शक्ति में भी क्षति होती जा रही है और यह विनाशक रूप लेती जा रही है। मृदा प्रदूषण से मिट्‌टी की उर्वरा शक्ति खत्म होती रहती है और कालांतर

में यह रेगिस्तान या दलदल में भी परिवर्तित हो सकती है। शायद इसलिए आज कई उपजाऊ मैदान ऊसर भूमि में तब्दील हो गये हैं।

हमारी अविकसित सोच, प्रगति की लालसा, संसाधनों का दुरुपयोग, प्रकृति के प्रति लापरवाही, विकृत राजनीति, औद्योगिकीकरण, परमाणु परीक्षण, कृषि उर्वरक, उत्पादन की बढ़ती चाहत में रसायनिक खादों का तथा कीटनाशकों का अविवेकपूर्ण प्रयोग आदि ने मिलकर मिट्टी को पूरी तरह प्रदूषित कर दिया है।

मृदा अपरदन के लिए वन विनाश ज़िम्मेदार है। क्योंकि पेड़ों की जड़ें भूमि को बाँधे रखती हैं। परिणाम स्वरूप वर्षा की तीव्रता का भूमि पर अधिक दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। और सुरक्षित मृदा के कारण वृक्षों के नीचे का भाग हरे-भरे पैधों से भर जाता है और फिर फैली हुई घास की जड़ें अपनी मूल प्रवृत्ति के अनुरूप ज़मीन में फैलती चली जाती हैं और वर्षा के पानी को अपने में समाहित करके फिर समय तथा आवश्यकतानुसार पानी का उचित वितरण करती है। किंतु अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण दिन-प्रतिदिन यह संसाधन दयनीय स्थिति में प्रवेश कर रहा है। और इस संसाधन में कमी के कारण नदियों का जलस्तर भी घटता जा रहा है। दूसरी तरफ वायु के तापमान में वृद्धि के कारण कुछ नदियों में ग्लेशियरों के पिघलने की वजह से उनके जलस्तर में हुई अप्रत्याशित वृद्धि भी भूमि के उपजाऊ भाग को पानी के साथ बहाकर मृदा विनाश को बढ़ावा दे रही है। इसके अलावा पशुओं के चरान, खनन, घास का व्यापारिक दोहन, बाढ़ आदि कारणों से भी मिट्टी की तबाही या भूःस्खलन हो जाती है। लेकिन सबसे बडी समस्या यह होती है कि इन सभी के फलस्वरूप मिट्टी का जो कटान होता है उसकी पूर्ति हज़ारों वर्षों तक असंभव है। क्योंकि यह प्रकृति की दीर्घकालीन प्रक्रिया का परिणाम है।

1.6.4 ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण की समस्या आज बढ़ी है। ध्वनि प्रदूषण से आसपास की आवाज़ें सुनाई नहीं पड़ती है। ध्वनि का डेसीबल बढ़ने के कारण दुर्घटनाएं बढ़ी हैं। वाहनों से उठनेवाले धुएँ से वायु प्रदूषित हो जाती है। ध्वनि प्रदूषण की समस्या मानव राशी के लिए ख़तरनाक सबित हो रही है। ध्वनि प्रदूषण सबसे अधिक गाड़ियों से ही हो रही है। यह बहुत सारी बीमारियों को पैदा करती है।

1.6.5 परमाण्विक प्रदूषण

आज विश्व भर में बिजली घर है जिससे परमाणु ताप उत्पन्न किया जा रहा है। इसमें दुर्घटनाएँ होने की अधिक संभावनाएँ हैं। हिरोशिमा और नागसाकी का विध्वंस परमाणु बम गिरने से हुआ था। जिससे वे दोनों शहर ही समाप्त हो गए थे। रूस के चेर्नोबिल में सन् 1986 अप्रैल 26 में हुई परमाणविक दुर्घटना का प्रभाव लगभग सत्तर लाख लोगों पर पडा। कैंसर जैसी बीमारियों से पीडित होकर बहुत सारे लोग मारे गये। उसीप्रकार सुनामी के दौरान जापान के फुकूशिमा में हुए परमाणु त्रासदी निश्चय ही एक गंभीर घटना है। इसके बाद एक अच्छी बात यह हुई है कि दुनिया ने फुकुशिमा हादसे सबक लेने का जतन किया है। अब हर देश अपनी परमाणु संयंत्रों की सुरक्षा बढाने के बारे में सोच रहे हैं। भारत में भी परमाणु संयंत्रों की सुरक्षा की बात को लेकर जनता और राजनैतिक दल काफ़ी जागृत हो गये हैं।

1.6.6 रासायनिक प्रदूषण

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन के लिए कई तरह के उद्योग लगाये जाते हैं। जिसमें अनेक तरह के विषाक्त रासायनिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इस तरह के उद्योगों के कूड़े कचरे तथा कभी-कभी हो रहे रासायनिक पदार्थों का रिसाव से भी प्रदूषण होता है। इस तरह के प्रदूषण पारिस्थितिकी तथा मनुष्य के लिए विनाशकारी है। भोपाल में सन् 1984 दिसंबर को हुए विषकांड दुर्घटना मिथैल एसोसैनेट (MIC) गैस के रिसाव से हुआ था। इसे भारत की सबसे बडी पारिस्थितिक दुर्घटनाओं में मानी जाती है। केरल के कासरगोड जिल्ले में हुए एन्डोसालफान ट्राजडी रासायनिक पलूशन में गिनी जा सकती है।

1.7 वंशलुप्ति

वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि हमारी इस धरती पर 10 लाख जंतु और तीन लाख वनस्पतियों की विभिन्न जातियाँ तथा प्रजातियाँ पायी जाती हैं। यदि ये सब अपने प्राकृतिक वातावरण में रहें तो जीवमंडल में पूर्ण संतुलन की स्थिति बनी रहेगी। लेकिन मानव की विकास प्रणालियों ने जीवमंडल में तबाही मचा दी है। परिणामतः जो जीव-जंतु अपने पर्यावरण से सामंजस्य नहीं बना पाते हैं वे अपनी असमर्थता के कारण अपने को बचाने में असमर्थ रह जाते हैं। इसलिए जीवों की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो गयी हैं। हाल के कुछ वर्षों में बहुतायत में यातायात तथा उद्योग उत्सर्गों के कारण जीवमंडल पर प्रदूषण का भारी दबाव होता जा रहा है। यह जीवों तथा वनस्पतियों के वंशजों के लिए काफ़ी बडे पैमाने पर नुकसानदायक

साबित हो रही है। वनस्पतियाँ नष्ट हो जाने से सामान्यतया उन पर निर्भर पौधों की प्रजातियाँ भी नष्ट हो जाएँगी।

एक ओर तो प्रदूषण से कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही है। दूसरी तरफ़ जंगलातों की व्यापक कटाई से जंगली जानवरों की तादात में कमी नज़र आती है। पारिस्थितिक असंतुलन से जीवों की भोजन श्रृंखला में व्यवधान पड़ता है जिससे प्रकृति का सारा समीकरण गड़बड़ा जाता है।

1.8 जैव प्रौद्योगिकी और खेतीबाड़ी

जैव प्रौद्योगिकी जीवों एवं जीवित पादप एवं पशु-कोशिकाओं का औद्योगिक प्रयोग है। जैव-प्रौद्योगिकी विश्व की खाद्य-सुरक्षा, रोगों की रोकथाम एवं नियंत्रण करने तथा स्वच्छ पर्यावरण की गारंटी देती है। सर्व प्रथम 1920 में जैव-प्रौद्योगिकी शब्द की व्याख्या हुई थी। जैव-प्रौद्योगिकी का विकास सन् 1970 के दशक में हुआ था। यह वही समय या जब आणविक एवं कोशकीय जीव विज्ञान की नवीनतम् खोजों तथा नये औद्योगिक प्रतिष्ठानों ने मानवता के कल्याण हेतु उपयोग करने के लिए नये रास्ते दिखाया था।

आजकल बी.टी. बैंगन, बी.टी. कपास के बीजों के विरुद्ध लोग चिल्लापों मचा रहे हैं। हमारे खाद्य-व्यवस्था, पारिस्थितिकी तथा किसानों के लिए ख़तरनाक साबित हो रहा है। इस तरह के बीज मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए भी हानिकार हैं। फिर भी वर्तमान संदर्भ में जैव तकनीक द्वारा निर्मित बीजों का बोलबाला चल रहा है। भारत के मशहूर पारिस्थितिक कार्यकर्त्री डॉ. वन्दना शिवा इस विषय पर गहन अध्ययन कर रही है उनके कुछ किताबों का प्रकाशन कार्य भी हुआ है।

हमारा वैश्विक खाद्य-तंत्र अपने पारिस्थितिक, आर्थिक और सामाजिक पहलू सहित एक बहु आयामी संकट से गुज़र रहा है। पारिस्थितिक दृष्टि से औद्योगिक शैली की खेती का प्रभाव कीटनाशकों और उर्वरकों के घुलने से ज़मीन के भीतर के पानी पर, एकफसली खेती के प्रचलन और सिकुडते आनुवंशिक आधार के कारण जैव विविधता पर और भविष्य में उत्पादक बने रहने की कृषि पारिस्थितिकी की क्षमता आदि पर पड़ा है।

भारत ने बढ़ती आबादी की खाद्य-पूर्ति हेतु खेती के क्षेत्र में हरितक्रांति के मार्ग को अपनाया था। इस तरह की खेती में यंत्रों का इस्तेमाल होता था। उत्पादन बढाने के लिए रासायनिक खादों का बडे पैमाने पर उपयोग किया। इसकी पद्धतियाँ बहुत खर्चीले थे। यांत्रिक कृषि का सबसे बडा खतरा इससे मिट्टी की गुणवत्ता में ह्रास होता है। भूमि के दलदल खारापन और क्षरीयता से ग्रस्त होना तथा पानी के स्थाई स्रोतों में क्षय आदि इसके अन्य परिणाम थे। लेकिन इसकी पहचान लंबे अरसे के बाद हुआ। याने कि अब। हरित क्रान्ति के समर्थन करनेवाले विद्वान राजनीतिगण अब पश्चता रहा है। हमने बिना सोचे समझे गहन अध्ययन किये बगैर हरित क्रान्ति का प्रश्रय लिया। इसके कारण खेती के क्षेत्र में बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ा। विगत का अनुभव और वर्तमान का परिदृश्य हमें यही सिखाते हैं।

1.9 प्राकृतिक आपदाएँ

प्राकृतिक आपदाएँ आज दुनिया सामना करती पारिस्थितिक समस्याओं में प्रमुख हैं। प्राकृतिक आपदाओं में भूकम्प, ज्वालामुखी, बाढ़, सूखा, चक्रवात, मरूस्थलीकरण तथा मिट्टी का कटाव आदि मुख्य हैं। उसकी संख्या कम और

परिणाम भीषण एवं भयंकर हैं। अब मानव निर्मित प्रदूषण के कारण बहुत सारे नूतन तथा पुरातन प्राकृतिक आपदाएँ दुनिया भर में विनाश का हुंकार मचा रही हैं।

1.9.1 बाढ़ (Flood)

बाढ़ वर्षा एवं तापमान बढ़ने के कारण आती है। अतिवृष्टि से बाढ़ आती है। अतिवृष्टि प्रदूषण के कारण हो रही है। बाढ़ से जान-माल तथा कृषि को काफी क्षति होती है। बाढ़ आने से उस क्षेत्र का विध्वंस होता है। भारत में सबसे अधिक बाढ़ उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल के गंगा क्षेत्र में तथा असम के ब्रह्मपुत्र नदी में आती है।

1.9.2 सूखा (Drought)

सूखा प्राकृतिक आपदा के साथ-साथ मानव जनित आपदा भी है। क्योंकि प्रदूषण के कारण ही सूखा पड रहा है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई से उत्पन्न शुष्कता के कारण सूखा पड़ते हैं। सूखा के कारण निरन्तर अकाल भी उत्पन्न होने लगा है। भारत में पर्याप्त वर्षा न होने के कारण सूखे की स्थिति आ गयी है। सूखा के कारण लोगों का पलायन भी ज़ारी रहता है। भारत में 30 प्रतिशत भूमि सूखाग्रस्त है। सूखा के कारण चारागाह सूख जाता है राजस्थान का थार, गुजरात, मध्यप्रदेश, उडीसा, कर्नाटक के भी कुछ क्षेत्र सूखा की चपेट में है। राजस्थान के थार में वनों की कटाई जारी है जिससे थार रेगिस्तान आगरा दिल्ली की ओर बढ़ रहा है।

1.10 भारत के प्रमुख पारिस्थितिक आन्दोलन

भारत के ही नहीं विश्व का भी सबसे पहला पारिस्थितिक आन्दोलन हमारे ही देश में घटित हुआ था। राजस्थान के मारवार क्षेत्र में ही यह घटना घटित हुई थी।

मारवार शस्य-श्यामलता से भरा एक क्षेत्र था। वहाँ वैश्णोई धर्मावलंबी लोग ही रहते थे। उनके धर्मानुसार पेड़ों को काटना तथा पशुओं को मारना पाप हैं। उस समय जोधपुर साम्राज्य के राजा अजय सिंह ने एक नये राजमहल बनाने की योजना बनायी। इसके लिए बहुत सारी लकडियों की आवश्यकता थी। वैश्णोई गाँव पेड़ों से भरा हुआ था। लकड़हारों को लेकर सैनिक वहाँ पहूँचे। तब अमृतादेवी नाम से एक गाँववाली अपनी तीन लड़कियों को लेकर वहाँ आ गयी और पोड़ों में चिपकर खड़ी हो गयीं। सैनिकों ने उन्हें तलवार से मार दिया। यह सुनकर और अधिक वैश्णोई लोग वहाँ आ गये। उन्हें भी मार दिया गया। इसप्रकार उस संघर्ष में 363 वैश्णोई लोग मारे गये। वृक्षों के लिए जान कुर्बान दिये ये वैश्णोई लोग इतिहास के पन्नों में वृक्ष-प्रेम के लिए शहीद हुए ज्वलंत व्यक्तित्व के रूप में ही जाने जाते हैं। भारत का पहला पारिस्थितिक आन्दोलन यह था। चिपको आन्दोलन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है।

1.10.1 चिपको आन्दोलन

भारत भर में वन चेतना जगाने के लिए चिपको आन्दोलन की भूमिका महत्वपूर्ण रही। चिपको आन्दोलन सत्तर के दशक में शुरू हुआ और अस्सी के दशक में व्यापक हो गया। 5 अप्रैल सन् 1981 को उत्तराखंड (पुराने उत्तर प्रदेश) के पर्वतीय जिलों में इस आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ था। 1000 मीटर से अधिक ऊँचाई के क्षेत्र में हरे पेड़ों की व्यापारिक कटाई पर पाबंदी लगाकर इस आन्दोलन की शुरुआत हुई थी। बाद में पूरे देश में चिपको आन्दोलन द्वारा बनाए गए

मनोवैज्ञानिक वातावरण से पर्वतीय क्षेत्रों में वनों की कटाई में कटौती हुई और वन संरक्षण व वन को प्रधानता दी गई।

उत्तर से यह आन्दोलन दक्षिण की ओर फैलने लगा। 8 सितम्बर 1981 को सुदूर दक्षिण में, कर्नाटक के सिरसी क्षेत्र में अप्पिको के नाम यह प्रकट हुआ और अब केरल, करनाटक और तमिलनाडु में सक्रिय है। इस आन्दोलन की प्रेरणा से उडीसा के गंधमर्दन में बाक्साइट के खनन की बाल्को की प्रस्तावित योजना से वहाँ के लोगों ने प्राकृतिक वन को बचाया। इस तरह मध्यप्रदेश के खंडवा जिले में नर्मदा सागर के डूब क्षेत्र में सघन वनों को काटना बन्द कर दिया गया। इस आन्दोलन द्वारा देहरादून में नाहीं-बडकोट में चुना खनन रोका गया। अब यह आन्दोलन भारत की सीमाओं को पारकर सुदूर पूर्व और पश्चिम के देशों में फैला है।

चिपको आन्दोलन ने तबाही की ओर ले जाने वाले ज्ञान के स्थान पर सामान्य लोगों की बुद्धिमत्ता को प्राथमिकता देने के लिए आवाज़ उठायी। इस आन्दोलन का संदेश कुछ इसप्रकार था - "वनों का लकडी की खानों या औद्योगिक कच्चे माल के संसाधन मानने के बजाय, प्राणवायु दाता, नदियों की माँ और स्थाई बाँध तथा मिट्टी पैदा करने के कारखाने माना जाना चाहिए और उन वन उपजों के उपयोग में जिनके लिए पेड कटते हों, संयम बरता जाए और इनके विकल्प ढूँढे।"[1]

चिपको आन्दोलन एक ओर भूमि-उपयोग की गलत नीतियों जैसे कि मिट्टी और पानी का ह्रास करनेवाले पेड़ों को लगाने व खनन आदि के खिलाफ़ संघर्ष करता है तो दूसरी ओर मिट्टी तथा पानी का संरक्षण करनेवाले सही प्रकार

---

1. सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार - पृ. 36

के खाद्य-चारा, ईंधन, जैविक खाद, व ग्रामोद्योगों के लिए रेशा देनेवाले पेडों के शोषण से धरती के लुप्त हरित कवच को पुनः स्थापित करने के प्रयास में लगा है। आन्दोलन ने वनों के संबन्ध में तथा पर्यावरण की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण विचारों को लोगों के सामने रखा। इस आन्दोलन के मूल वाक्य ही देखिए :

"क्या है जंगल का उपकार ?
मिट्टी, पानी और बयार !
मिट्टी, पानी और बयार,
ज़िंदा रहने का आधार।"[1]

चिपको आन्दोलन ने प्रदूषण को भूख और प्रकृति-विनाश के साथ जोडकर, मानवता की रक्षा के लिए संघर्ष करनेवाले अन्य पारिस्थितिक आन्दोलनों को एक नया आयाम दिया।

1.10.2 मूकघाटी आन्दोलन

पश्चिम घाट की मूकघाटी केरल में अष्टकटिबंधीय वनों का केन्द्र रहा है। मूकघाटी वन जैव परिणामों का तथा वंश लोप के भीषण स्थिति में जीनेवाले अनेक जीव-जंतुओं और वनस्पतियों का आवास केन्द्र है। जैव-विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं बल्कि पारिस्थितिकीय दृष्टि से भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

उत्तर केरल में 52 करोड एकक बिजली और 10000 हेक्टर भूमि की सिंचाई के उद्देश्य से ही मूकघाटी-सिंचाई विद्युत परियोजना की कल्पना की थी।

---

1. सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार - पृ. 42

लेकिन इस परियोजना के अमल होने पर एक पूरे पारिस्थितिक-तंत्र के बिगड़ जाने की संभावना थी। प्रकृति और एक संपन्न जैव-व्यूह की तबाही के खिलाफ़ समाज के सभी प्रबुद्ध वर्ग ने एक जुट होकर आवाज़ उठायी। पारिस्थितिकी विज्ञ भी इस परियोजना के कुपरिणामों को लेकर आशंकित थे और चेतावनी भी दी। "सभी परिस्थितियों को सामने रखते हुए तथा पूरे जाँच-पडताल के बाद सरकार ने सन् 1980 में मूकघाटी संरक्षण के लिए नियमों का निर्माण किया।"[1]

इस आन्दोलन ने पारिस्थितिकी संबन्धी कुछ वैज्ञानिक तत्वों का, जो मूलतः मानव जीवन और उनके अस्तित्व से जुड़ा हुआ है, प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि प्रकृति संरक्षण का तात्पर्य एक संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा से है। क्योंकि एक पारिस्थितिक तंत्र से जितना लाभ अन्य जीवों का होता है उतना ही लाभ मानव भी उठाते हैं। कभी संसाधन के रूप में है तो कभी प्रयोजन के रूप में। यह आन्दोलन हमारे तकनीकी विज्ञ पर प्रश्न चिह्न लगाता है। पारिस्थितिक विज्ञान में ठीक जानकारी न रखनेवाले ये तकनीकी विज्ञ वास्तव में पारिस्थितिकी का कसाई कर रहे हैं। यह कितनी विडम्बना की बात है कि अगर संविधान में कोई परिवर्तन लाना है तो ध्यान और श्रद्धा के साथ हम उसका अध्ययन करते हैं लेकिन अगर कहीं प्राकृतिक नियमों में दखलंदाज़ी की तो, कितनी सरलता के साथ उसको लेते हैं। मूकघाटी आन्दोलन ने वास्तव में इस सच्चाई का पर्दाफाश किया है।

---

1. प्रो. एम.के. प्रसाद - हरितचिन्तकल - पृ. 177

1.10.3 नर्मदा बचाओ आन्दोलन

नर्मदा, मध्यप्रदेश के शहडौल जिले में अमरकंटक के पठार से उमड़नेवाली नदी है। सुंदर पर्णपाती जंगलों और भारत के सबसे उपजाऊ खेतीहर इलाके से गुज़रती हुई यह नदी मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात राज्यों से गुज़रकर 1300 किलोमीटर का रास्ता तय करती है। इस नदी-घाटी में इसके पारिस्थितिकीय तंत्र से, और परस्पर निर्भरता के जटिल प्राचीन सूत्रों में एक दूसरे से बँधे ढ़ाई करोड़ लोग बसते हैं। लेकिन जब से नर्मदा को जल-संसाधन विकास के लिए लक्षित कर लिया गया तब से यह टुकडों में बाँटती जा रही है।

1946 में ही गुजरात में गोरा के पास नदी को बाँधने की योजना बनायी थी। 1961 में नेहरू ने 49.8 मीटर ऊँचे एक बाँध का शिलान्यास भी किया। उस समय के इसके प्रस्तावक का दावा यह था कि "नर्मदा घाटी परियोजना मानव इतिहास में अब तक अभिकल्पित सबसे महत्वाकांक्षी परियोजना है। उनकी योजना 3200 बाँध बनाने की है। इनमें से तीस बडे बाँध होंगे, 135 मँझोले और बाकी छोटे बाँध होंगे। गुजरात में सरदार सरोवर और मध्य प्रदेश में नर्मदा सागर के बीच भारतीय उपमहाद्वीप के किसी भी जलाशय से ज़्यादा पानी जमा होगा।"[1]

लेकिन इस बाँध परियोजना से ढ़ाई करोड़ लोगों की जिंदगी तबाह होनेवाली है। सिर्फ यही नहीं इस विकास परियोजना से भारत की सबसे बड़ी नदियों में से एक की समूची नदी-घाटी की पारिस्थितिकी बदल जायेगी। यह 4000 किलोमीटर के

---

1. अरुंधती रॉय - बहुजन हिताय - पृ. 25-26

प्राकृतिक पर्णपाती जंगल को डुबोकर नष्ट कर देगी। अफ़सोस की बात है कि इस बाँध परियोजना के संबन्ध में कोई भी अध्ययन नहीं हुआ था। साथ ही बाँध की इंसानी कीमत या उसका पर्यावरणीय असर क्या होगा? इस पर भी विचार किये बिना सरकार ने इस परियोजना के लिए सहमति दी थी।

सरदार सरोवर बाँध स्थल पर निर्माण कार्य, छिटपुट ढंग से 1961 से ही ज़ारी था, 1988 में गंभीरता से शुरू हो गया। उस वक्त तक किसी को मालूम नहीं था, न विश्व बैंक को, न सरकार को, कि मेधा पाटकर नाम की एक औरत डूब के लिए निर्धारित गाँवों में भटक रही है और लोगों से पूछ रही है कि क्या उन्हें पता है कि सरकार उनके साथ क्या करने का इरादा रखती है। धीरे-धीरे उसके सामने स्पष्ट होता गया कि उनके प्रति सरकार का इरादा कतई सम्मान जनक नहीं है। 1986 तक बात पसर चुकी थी। प्रत्येक राज्य का अपना जन संगठन तैयार हो चुका जो विस्थापन और पुनर्वास के उन वायदों पर सवाल उठा रहा था जो सरकारी अधिकारियों द्वारा उछाले जा रहे थे। कुछ सालों बाद जिन लोगों को विस्थापित होना है और जिन्हें इसका लाभ मिलने की उम्मीद है, उन पर बाँध के असर की अपने चरम पर पहूँचकर आकार लेने लगी। परिणाम स्वरूप नर्मदा घाटी विकास परियोजना को देश का सर्वाधिक सुनियोजित पर्यावरणीय विनाश माना जाने लगा। अलग अलग जन संगठनों ने मिलकर एक अकेला संगठन बनाया और नर्मदा बचाओ आन्दोलन (NBA) का जन्म हुआ।

1988 में, नर्मदा बचाओ आन्दोलन ने नर्मदा घाटी विकास परियोजना के सभी काम रोके जाने का औपचारिक आह्वान किया। 1989 में भारत भर से

50,000 लोग घाटी में एकत्रित हुए और उन्होंने इस विनाशकारी विकास से लडने की शपथ ली। 1990 में क्रिसमस के दिन 6000 मर्द और औरतें अपने खाने-पीने के सामान और बोरिया-बिस्तर सहित सौ किलोमीटर की यात्रा तय करके आए और उनके साथ एक सात सदस्यीय बलिदानी जत्था भी था जिसने नदी के लिए अपने प्राण अर्पित करने की शपथ ली थी। 7 जनवरी 1991 को बलिदानी जत्थे के सातों सदस्यों ने ऐलान किया कि वे अनियतकालीन भूख़-हड़ताल पर जा रहे हैं। भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रेस, टी.वी. कैमरा टीम और डोक्यूमेंटरी बनानेवाले - सभी वहाँ मौजूद थे। लगभग हर रोज़ अख़बारों में खबरें आ रही थीं। वाशिंग्टन में भी पर्यावरणवादियों ने दबाव बढा दिया। आखिरकार प्रतिकूल मीडिया की कोप दृष्टि से बुरी तरह घबराए विश्व बैंक ने ऐलान किया कि वह सरदार सरोवार परियोजना की एक स्वतंत्र समीक्षा करवाएगा।

लगभग बीस साल से, पंचाट के फैसले के बाद घाटी की यह अनगढ़ सेना बेदखली के डर से जी रही है। बीस साल से ज़्यादातर इलाकों में विकास के कोई चिह्न नहीं है। अभी तक सरदार सरोवर ने डूब क्षेत्र का बस एक-चौथाई इलाका ही डुबोया है। अगर हम इसे अभी रोक दें तो हम 3,25000 लोगों को निश्चित बदहाली से बचा सकेंगे। वास्तव में नर्मदा घाटी का यह युद्ध दुनिया भर के नदियों, पहाडों और जंगलों के लिए है।

1.10.4 प्लाच्चिमडा आन्दोलन

केरल के पालक्काड जिले के प्लाच्चिमडा में 'कोकाकोला' कम्पनी के विरुद्ध वहाँ के लोगों ने मिलकर पेयजल के अधिकार के लिए जो जन आन्दोलन

चलाया है वह निश्चय ही एक ऐतिहासिक घटना है। भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा किस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुन्ध दोहन हो रहा है प्लाच्चिमडा उसका ब्यौरा प्रस्तुत करता है। सन् 2000 जून में 'हिन्दुस्तान कोकाकोला बिवरेजस प्राइवेट लिमिटेड' ने 'पेरुमाट्टी' पंचायत के प्लाच्चिमडा में कम्पनी शुरू की थी। अनैतिक ढंग से 35 एकट खेती-क्षेत्र को पाटकर ही कम्पनी का निर्माण कार्य हुआ था। कम्पनी शुरू होने के दो साल बाद कई प्रकार की पारिस्थितिक समस्यायें उभरकर आने लगीं। कई प्रकार की बीमारियाँ फैलने लगीं। जब लोग इसप्रकार के परिवर्तन महसूस करने लगे तो, वे कम्पनी के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार हो गये। जिनमें आदिवासी लोग ही प्रमुख थे। 2002 को आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन को समर्थन देते हुए देश-विदेश के पारिस्थितिक कार्यकर्ता प्लाच्चिमडा में आ गये। सभी ने यही राय दी कि कम्पनी के आगे की प्रवृत्ति कठिन पारिस्थितिक समस्यायें पैदा करेगी और जिससे जल संकट की परिस्थितियाँ भी आ जायेगी। इसलिए कम्पनी को तुरंत ही बंद कर दिया जाना चाहिए। आन्दोलन के फलस्वरूप सन् 2004 मार्च 2 को कम्पनी बंद कर दिये गये।

प्लाच्चिमडा आन्दोलन को समर्थन देने के लिए फ्रैंस से आई प्रमुख पारिस्थितिक कार्यकर्ता एवं 'फ्रेंच किसान संगठन के नेता होसे बूवे का यह कथन देखिए, "एक प्रान्तीय जन संघर्ष किसप्रकार दुनिया भर में हो रहे समान संघर्षों के लिए निदर्शन और प्रेरणा स्रोत बन सकती है इसके लिए अच्छा उदाहरण है प्लाच्चिमडा।"[1] प्लाच्चिमडा के इस जन आन्दोलन से प्रेरणा पाकर तमिलनाडू के

1. सं. एम.पी. वीरेन्द्रकुमार - प्लाच्चिमडा के जलचूषणवुम जनकीय प्रतिरोधवुम - पृ. 54

शिवगंगा में और वाराणसी में भी कोका कोला के विरुद्ध समान तरह के जन आन्दोलन हो रहे हैं। इसके अलावा राजस्थान के 'कालडेरा' और मध्यप्रदेश के मान्डद्वीप के किसान आन्दोलन के लिए भी यह प्रेरणास्रोत बन गया है।

अंध औद्योगिक विकास के पीछे भागता हमारा देश बहुराष्ट्रीय और राष्ट्रीय कम्पनियों को गरीब लोगों के सिर पर बिठा रहा है। वे जोंक की तरह प्राकृतिक संसाधनों और लोगों की कमाई का शोषण कर रही हैं। ऐसे में इसप्रकार के जन-आन्दोलनों द्वारा उसका प्रतिरोध करने की आवश्यकता पर हमें सोचना चाहिए।

1.11 साहित्य में पारिस्थितिक चिंतन का उद्‌भव एवं विकास

समकालीन संदर्भ में जब पारिस्थितिकी संबन्धी विचारों पर चर्चा करती है तो साहित्य में उसकी शुरुआत रेश्वल कार्सन की 'साइलेंट स्प्रिंग' से मानना होगा। सन् 1962 में उन्होंने यह किताब लिखा था। "सन् 1962 में जब डी.डी.टी. को फसलों के अनेक रोगों के लिए अचूक व मलेरिया के विरुद्ध एक प्रभावशाली प्रतिरोधक माना जाता था तभी इस अमेरिकी महिला शोधकर्त्री रेश्वल कार्सन ने चेतावनी दी थी कि इस औषधि का छोटा-सा कण भी यकृत को भारी हानी पहूँचा सकता है।"[1] और कार्सन की यह चेतावनी सही भी निकली। बीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन-चार दशकों से ही पारिस्थितिक विचार या बोध जाग उठा था। लेकिन इससे पहले यानी कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही पारिस्थितिक बोध संबन्धी विचारों का प्रचार प्रसार हुआ था। सन् 1864 में जॉर्ज पेर्किन्स मार्श का 'मैन एन्ड नेचर' का

1. बी.एल. गर्ग - पर्यावरण, प्रकृति और मानव - पृ. 120

प्रकाशन हुआ। प्रकृति को केन्द्र में रखकर एक पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का यह पहला प्रयास था। पारिस्थितिक संकट जो आजकल चर्चा के केन्द्र में है उसका अनुमान लेखक ने सौ साल पहले ही इस किताब में प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है - "मनुष्य जो है हर कहीं बाधा डालनेवाला है। जब कभी उसने प्रकृति पर हस्तक्षेप किया है उसकी समरसता टूट गई है।"[1] मार्श ने बिलकुल सही कहा है। प्रकृति में मनुष्य की दखलंदाज़ी ने आज पारिस्थितिक संकट की नौबत खड़ा कर दिया है।

साहित्य में इको-क्रिटिसिज़्म शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम विलियम रूकेर्ट ने सन् 1978 में किया था। 'लिटरेचर एन्ड इकोलॉजी : एन एक्सपेरिमेन्ड इन इको क्रिटिसिज़्म' में उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया था। सन् 1974 में प्रकाशित जोसेफ मीकेर का 'दि कॉमदी आफ सरवाइवल : स्टडीज़ इन लिटेरेरी इकोलॉजी' को ही आधुनिक युग के प्रथम पारिस्थितिकीय ग्रन्थ का श्रेय मिलता है।

सन् 1989 में फ्रेंच चिंतक ल्योतार ने ओइकस (oikos) शीर्षक से एक लेखन का प्रकाशन किया था। इसमें उन्होंने इस बात की ओर संकेत दिया है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रकृति और मनुष्य के बीच का संघर्ष और तेज़ हो गये और धीरे-धीरे यह संघर्ष पश्चिमी देशों के गरीब देशों के ऊपर आर्थिक वार के रूप में परिणत होता है।

---

1. George Perkins Marsh - Man and Nature - Man is everywhere a disturbing agent wherever he plants his foot, the harmonies of nature turned to discords - P. 36

नब्बे के दशक में पारिस्थितिकी के विषय को लेकर गंभीर रूप से विचार-विमर्श होने लगे। सन् 1992 में अमरीका में Association for the study of Literature and Environment संगठन की स्थापना हुई। सन् 1995 में कोलेराडो स्टेट (colorado state) विश्व विद्यालय में प्रथम विश्व पारिस्थितिक सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में पारिस्थितिक के विषय पर गंभीर रूप से विचार विमर्श हुआ।

इको-क्रिटिसिज़्म की शुरुआत सत्तर के दशकों में हुई थी। नब्बे के दशकों में आकर एक नवीन आलोचना पद्धति के रूप में इसका विकास होने लगा। सन् 1996 में शेरील ग्लोफेल्टी के संपादकत्व में, अंग्रेज़ी में इकोक्रिटिसिज़्म का एक संकलन का प्रकाशन हुआ। इस किताब की भूमिका में उन्होंने इसप्रकार लिखा है : "इको क्रिटिसिज़्म प्रकृति और सभ्यता के बीच के संबंध को ढूँढ़ता है। एक आलोचना पद्धति के रूप में उसका एक पैर साहित्य में है तो दूसरा पैर पृथ्वी पर है।"[1]

साहित्य में पारिस्थितिक दर्शन, पारिस्थितिक वाद, पारिस्थितिक कला पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र, पारिस्थितिक कला, पारिस्थितिक विमर्श जैसे पद प्रयोग पारिस्थितिक चिंतन के विभिन्न पहलुओं को दर्ज करता है। इसलिए इसका विस्तृत अध्ययन आगे करेंगी।

---

1. जी. मधुसूदनन - हरितनिरूपणम मलयालत्तिल - भूमिका - पृ. xii

1.11.1 पारिस्थितिक वाद

"इस पृथ्वी पर जन्म लेनेवाले हर एक जीव को यहाँ पर जीने का अधिकार है। पृथ्वी और प्रकृति को लेकर जितना अधिकार मानव को है उतना ही अधिकार अन्य जीवों को भी है। उनके अधिकारों की रक्षा करते हुए पारिस्थितिक संतुलन को बरकरार रखना, यही है पारिस्थितिक वाद का मूल तत्व।"[1] इस बात से वाकिफ़ होना है कि पारिस्थितिकवाद प्रकृति शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाना और उसके विरोध में संघर्ष करना मात्र नहीं है। इसकी अपनी एक विशाल राजनीतिक पद्धति होती है जिसमें व्यक्ति द्वारा मूल्यों की परंपरा की सुरक्षा होगी और इसके द्वारा प्रकृति की पहचान होगी। वास्तव में यह हमारा दायित्व है कि प्रकृति और पारिस्थितिकी की सुरक्षा करना। इसीलिए प्रकृति को पहचानना वास्तव में हमारे दायित्व की नैतिकता को पहचानना भी है।

1.11.2 पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र

पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र, प्रकृति की गोद में पलनेवाला सहज मानव का सौन्दर्यशास्त्र है। प्रकृति की गोद में पलनेवाला सहज मानव वही है जो ऊर्जा का दुरुपयोग नहीं करते हैं। पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र साहित्य के क्षेत्र में एकदम नवीन है। यहाँ तक कि अंग्रेज़ी साहित्य में इसका अध्ययन बहुत ही कम हुआ है। मलयालम के साहित्य में इस विषय को लेकर अब चिंतन-मनन हो रहा है। टी.पी. सुकुमारन के 'परिस्थिति सौन्दर्यशास्त्रत्तिनु ओरु मुखवुरा' इस दृष्टि से बहुत ही

---

1. डॉ. एम. लीलावती - फेमिनिज़म चरित्रपरमाय अन्वेषणम - पृ. 7

उल्लेखनीय है। उसी प्रकार केरल साहित्य अकादमी के तत्वावधान में निकलनेवाली द्विमासिक पत्रिका 'साहित्यलोकम' ने सन् 1995 में पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र को लेकर एक विशेषांक निकाला था, जो नाइजीरिया के महान कवि एवं पारिस्थितिक कार्यकर्ता केनसारोविवा के हरित प्रतिरोध के लिए समर्पित था। नवीन विचारधारा होने के नाते इसकी सीमाओं को खींचना उतना आसान कार्य नहीं है। इनकी सीमाओं को पहचानने और समझने के लिए अब तक की साहित्यिक रचनाओं का पुनर्पाठ करना पड़ेगा। इस पुनर्पाठ के लिए भी कुछ जानकारियाँ अवश्य होनी चाहिए। अर्थात् आधुनिक सभ्यता के प्रकृति संबन्धी दो दृष्टिकोणों को इस पुनर्पाठ का आधार मान सकते हैं। उसमें पहला है : "आधुनिक सभ्यता के प्रकृति संबन्धी नज़रिया, जिसके केन्द्र में सिर्फ मानव है। और मानव अपनी इच्छाओं के अनुसार प्रकृति तथा प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं। दूसरा है : जो इस विचार के खिलाफ उभर कर आया है। इस विचार के केन्द्र में 'पारिस्थितिक बोध' से युक्त प्रकृति संबन्धी दृष्टिकोण है।"[1] यहाँ 'पारिस्थितिक बोध' से क्या तात्पर्य है? इसको सबसे पहले स्पष्ट करना होगा। इसके लिए प्रकृति क्या है? उसका स्वरूप क्या है इनको समझना चाहिए। नन्दकिशोर नवल ने 'कविता की मुक्ति' शीर्षक ग्रन्थ में प्रकृति की जो परिभाषा दी है उसको देखिए : "प्रकृति एक निरपेक्ष सत्ता है, यानी अपने अस्तित्व के लिए वह किसी दूसरी वस्तु पर निर्भर नहीं है।"[2] प्रकृति संबन्धी एक और परिभाषा देखिए : "दृश्यात्मक जगत् की वे वस्तुएँ जो स्वतः उत्पन्न हुई हैं, जिनका निर्माण मनुष्य ने नहीं किया है और जिनमें नष्ट होकर भी आत्मनिर्माण और

1. के.सी. नारायणन - साहित्यलोकम, पुस्तक 2, अंक 5, सितंबर-अक्तूबर 1995 - पृ. 31
2. नन्दकिशोर नवल - कविता की मुक्ति - पृ. 41

आत्मविस्तार करने की अनंत क्षमता है, वे सब प्रकृति के अंग है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति अपने आप में एक पूर्ण स्वतंत्र सत्ता है जो किसी के भी अधीन में नहीं है। प्रकृति के इस विराट रूप को पहचानना और उसके आधार पर एक नवीन जीवन शैली को रूपायित करना सही अर्थ में पारिस्थितिक बोध है।

वैसे तो पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र का अध्ययन अब और अधिक गहन रूप से हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप 'रेस्टोरेशन इकोलोजी' (Restoration Ecology) नाम से एक नयी संकल्पना का उदय पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र में हुआ है। पारिस्थितिक सौन्दर्यशास्त्र में पुनर्निर्माण की इस संकल्पना का अहम स्थान है। क्योंकि "उपभोगवादी संस्कृति ने हमारे मूल्यों तथा नैतिकता को पूरी तरह तबाह कर दिया है। ऐसे में खोई हुई उन मूल्यों तथा नैतिकता को पुनःस्थापित करके और अतीत की जितनी भी अच्छाइयाँ हैं उनको भी पुनः लाकर प्रकृति और मानव जीवन का पुनरेकीकरण और पुनःस्थापन करके प्रकृति को सुरक्षित रखना रेस्टोरेशन इकोलोजी है।"[2] 'मिशेल फूको' का 'ए ग्रीन एस्थेरिवस ऑफ एक्जिस्टेन्स' (A green aesthetics of existence) इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कदम है। फूको इसे हरित प्रतिरोध (Green resistance) कहते हैं जो प्रकृति की शोषण करनेवाली शक्तियों के खिलाफ़ लड़ने का एक सशक्त हथियार है।

---

1. मनीषा झा - प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता - पृ. 14
2. जी. मधुसूदनन - भावुकत्वम इरुपत्तोन्नाम नूटाण्डिल - पृ. 202

1.11.3 पारिस्थितिक कला

पारिस्थितिक कला पारिस्थितिकी को केन्द्र बनाकर, जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने की कला है। प्रकृति बोध दिखाना इसका विषय नहीं है। यह तो बहुत सारी विशेषताओं को लेकर प्रस्तुत होती है। पारिस्थितिक कला का आविर्भाव उत्तर आधुनिकता के परिवेश में हुआ है। यह कला प्रकृत्योन्मुख ज़िन्दगी के पथ की ओर अग्रसर होने के उत्तराधुनिकता के दायित्व पर ज़ोर देती है। इस प्रकार करने से उत्तर आधुनिक साहित्य और भाषा में नवीन चेतना पायेगी। पारिस्थितिक कला समकालीन यथार्थ पर आधारित पारिस्थितिक बोध जगाने की बात करती है। अब तक हम इसी 'युटोपिया' में जी रहे थे कि प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुन्ध दोहन करके जीवन भर सुख-समृद्धि की ज़िन्दगी जी सकते हैं। लेकिन हमें इस गलतफ़हमी से जल्दी-से-जल्दी बाहर आना होगा और इस सच्चाई से वाकिफ़ होना है कि पृथ्वी पर प्राकृतिक संसाधन बहुत ही सीमित मात्रा में है। इसलिए उसके उपयोग में परेहज़गारी अवश्य लेना चाहिए। अर्थात् युटोपिया को छोड़कर यथार्थ को अपनाना है। पारिस्थितिक कला 'प्रकृति की ओर लौटने की बात पर ज़ोर देती है। लेकिन यह उतना आसान कार्य भी नहीं है आज की दुनिया तकनीकी के कराल पंजो में ग्रस्त है। हर कहीं तकनीकी का ही शासन हो रहा है। ऐसे में "पारिस्थितिक कला एक अन्य तकनीकी को प्रस्तुत करती है जो एक अलग संस्कृति की पहचान कराती है जिसमें 'सुरक्षा' की संकल्पना अंतरनिहित है। प्रकृति की, संपूर्ण चेतन और अचेतन वस्तुओं की, हमारी परंपरा की, जड़ों की, प्रान्तीयता की, परिवेश की, हमारे सह-संबन्धों की, सामाजिक बोध की सबकी सुरक्षा।"[1] वास्तव में

1. जी. मधुसूदनन - भावकत्वम इरुपत्तोन्नाम नूटाण्डिल - पृ. 159

यही है वह अलग संस्कृति जिसके निर्माण द्वारा हम अपनी भाषा में, सृजनात्मक प्रतिभा में और यहाँ तक की भावनाओं में भी नयी-नयी खोजें ला पायेगी। उपनिवेशवाद के इस दौर में जब औपनिवेशिक शक्तियाँ हमारी भाषा, संस्कृति और प्रकृति को नष्ट कर रही है पारिस्थितिक कला इनको बचाये रखने की आवश्यकता पर ज़ोर देता है। तकनीकी संस्कृति के सबसे बडा शिकार आदिवासी लोग, दलित और स्त्री है। वर्तमान समय में, ये तिरस्कृत लोग अपने स्वत्व की पहचान कर रहे हैं। ऐसे में, उनमें प्रतिरोध का स्वर जाग उठना स्वाभाविक भी है। तब समाज और साहित्य में उसका प्रतिफलन होने लगता है। फलतः नयी कला और नये साहित्य का जन्म होता है। पारिस्थितिक कला तिरस्कृतों के स्वत्व को पहचानती है और उनको वाणी देने में सक्षम भी है। साहित्य में पारिस्थितिक स्त्री विमर्श का उदय इसका एक अच्छा परिणाम है।

1.11.4 पारिस्थितिक विमर्श

साहित्य के क्षेत्र में कई अध्ययन दृष्टियों का विकास हुआ है। 'विमर्श' एक ऐसी पद्धति है। किसी भी विषय का एक समग्र अध्ययन ही इसका उद्देश्य रहा है। 'विमर्श' के लिए अंग्रेज़ी में प्रयुक्त शब्द है 'डिसकोर्स' (discourse)। 'वेबस्टेर्स विश्वज्ञानकोश' में डिसकोर्स का अर्थ इसप्रकार दिया गया है : "किसी भी विषय को लेकर किये जानेवाले चिंतन के औपचारिक तथा क्रमबद्ध विस्तृत अभिव्यक्ति को ही प्रायः विमर्श कहते हैं।"[1] सारा मिल्स (Sara Mills) की महत्वपूर्ण किताब है

---

1. Merriam - webster's Encyclopedia of Literature - Formal and orderly and usually extended expression of thought on a subject - P. 331

'डिसकोर्स' (discourse) इसमें मिल्स ने विमर्श की परिभाषा इसप्रकार दी है : "विमर्श शब्द का अन्य किसी भी शब्द की तरह गलत अर्थ में ही परिभाषित करते हैं। इसलिए विमर्श शब्द को प्रायः पाठ, वाक्य, आदर्श जैसे शब्दों के अर्थ में ही लिया जाता है। इन प्रत्येक विपरीत शब्दों से विमर्श शब्द के अर्थ को सीमाबद्ध कर सकते हैं।"[1]

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में साहित्य के क्षेत्र में एक नवीन विमर्श के रूप में पारिस्थितिक विमर्श का प्रादुर्भाव हुआ था। आज हम जिस दुनिया में और परिवेश में जी रहे हैं उसकी सही और समग्र अभिव्यक्ति के लिए सबसे अनुरूप साहित्यिक विमर्श यह है। अंग्रेज़ी में इसके लिए 'इकोलॉजिकल लिटेररी क्रिटिजिज़म' (Ecological Literary Criticism) या इकोक्रिटिज़म शब्द का प्रयोग करते हैं।

हमारी दुनिया गहन पारिस्थितिक संकटों से गुज़र रही हैं। ऐसे में साहित्य में इसकी चर्चा स्वाभाविक भी है। किसी भी समस्या की चर्चा राजनीति से जोड़े बिना पूर्ण नहीं होगी। इसलिए पारिस्थितिक विमर्श के तहत आजकल हरित-राजनीति पर चर्चाएँ हो रही हैं। प्रकृति शोषण और उससे उत्पन्न पारिस्थितिक संकटों के पीछे राजनीति का खेल तो है ही। साम्राज्यवादी पूँजीवादी राजनीति के जाल में फँसकर भारत जैसे विकासोन्मुख देशों की प्रकृति तथा पारिस्थितिक-तंत्र पूरी तरह बिगड़ गये हैं।

---

1. Sara Mills - Discourse - Discourse like any other term, is also largely define by what it is more, what it is set in opposition to; thus discourse is often characterised by its difference to a series of terms : text, sentence, ideology. Each of these oppositional terms marks out the meaning of discourse. P. 4

पश्चिम के देशों में पारिस्थितिक बोध का उदय भौतिक सुख सुविधाओं के एक बाई-प्रोडेक्ट के रूप में हुआ था। इसलिए उनके पारिस्थितिक बोध में प्रकृति की स्वच्छन्दता की ओर लौट जाने का एक आध्यात्मिक उतावलेपन देख सकते हैं। किन्तु विकासोन्मुख देशों में जागृत पारिस्थितिक बोध ऐसा नहीं है। उनके पारिस्थितिक बोध के केन्द्र में मानव, उनके जीवन और परिवेश का आधार रहा है। इन लोगों के लिए जंगल तथा वन क्षेत्र उनके जीवन-यापन के साधन होने के साथ-साथ धाम स्थान भी है। ऐसे देशों में पारिस्थितिकीय शोषण का शिकार केवल वन-क्षेत्र ही नहीं होते बल्कि आदिवासी लोग, मछुवारे, किसान तथा बडे-बडे परियोजनाओं से विस्थापित लोग भी होते हैं। इसीलिए हमें समझना चाहिए कि पारिस्थितिक संकट अंततः एक साँस्कृतिक-स्वत्व संबन्धी समस्या हैं। इसलिए उसकी चर्चा में मनुष्य का ही प्रमुख स्थान होना चाहिए साथ ही प्रत्येक देश के ऐतिहासिक तथा साँस्कृतिक परिवेश को भी जोड़ना चाहिए। तभी पारिस्थितिक विमर्श के अध्ययन में समग्रता का समावेश हो पायेगा।

पारिस्थितिक विमर्श एक विस्तृत फलक के समान है। केवल साहित्य ही इसका क्षेत्र नहीं है। यह जीवन को उसकी समग्रता में दर्शाने का एक प्रयास है। अपने देश और प्रदेश के अनुरूप तथा वहाँ की प्रकृति और जीवन को साथ मिलाकर एक समग्र अध्ययन ही इसका उद्देश्य है। इसलिए साहित्य में इसकी चर्चा भी इसी समग्र दृष्टिकोण से होना चाहिए।

1.12 निष्कर्ष

मनुष्य जीवन ही नहीं इस दुनिया के समस्त जीवन प्रकृति-पारिस्थितिकी पर निर्भर रहते हैं। पारिस्थितिक व्यवस्था के बिगड़ने पर भूमि में जीवन दुसाध्य हो जाएगा। आधुनिक सभ्यता पर्यावरण संतुलन को अक्सर अनदेखा करके आ रही है। परिणाम स्वरूप पारिस्थितिक सदाचार गायब होने लगा। धीरे-धीरे आधुनिक सभ्यता के केन्द्र में औद्योगीकरण जगह जमाने लगा और पारिस्थितिक तंत्र पर आघात पहूँचने लगा और यह आघात गंभीर तो है। जीवन और जीने के वातावरण पर भी उसका गंभीर असर पड़ने लगा। परिणाम स्वरूप सजग मनुष्य इस विकास नीति पर प्रश्न उठाने लगे। इस प्रश्नाकुलता पारिस्थितिक आन्दोलन को जन्म देने लगी है। जीवन के प्रति प्रतिबद्ध संवेदनशील रचनाकारों के ध्यान भी इस ओर मुड़ने लगा। यह पारिस्थितिक विमर्श संबन्धी विचारों को मार्ग खोल देता है। इस तरह साहित्य की अन्य अध्ययन दृष्टियों के बीच पारिस्थितिक विमर्श भी स्थान जमाने लगा है।

❖❖❖

दूसरा अध्याय

पूर्ववर्ती काव्य में प्रकृति और पर्यावरण

दूसरा अध्याय
पूर्ववर्ती काव्य में प्रकृति और पर्यावरण

2.1 प्रकृति और मानव का आपसी संबंध

प्रकृति स्वयं में एक स्वतंत्र, परिपूर्ण और विविधता से भरी सत्ता है। मनुष्य इस प्रकृति का एक अंग है। लेकिन वह अपनी बुद्धि, चेतना और सामूहिक श्रमशक्ति की विलक्षणता के बलबूते पर प्रकृति से एक भिन्न अस्तित्व रखता है। फिर भी जीवन की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह प्रकृति पर निर्भर रहने को बाध्य है। मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के विकास में प्रकृति का अन्यान्य योगदान रहा है। कहते हैं प्रकृति संस्कृति का प्रतिरूप है। इसीलिए बहुत-सी संस्कृतियों में प्रकृति-संरक्षण के तत्व निहित होते हैं। विशेषकर भारतीय संस्कृति में इसके कई उदाहरण देख सकते हैं। हमारे यहाँ यज्ञ, पर्व, त्योहार आदि, प्रकृति की सानुकूलता पाने के लिए ही निरंतर मनाये जाते हैं।

मानव का समग्र परिवेश प्राकृतिक-पर्यावरण से ही प्रभावित तथा विकसित होता रहता है। मनुष्य के लिए अपने प्राकृतिक पर्यावरण की पहचान तथा उसके महत्व की जानकारी अत्यंत आवश्यक है क्योंकि उसमें उसके शाश्वत मूल्य निहित है। हमारी संस्कृति, परंपरा और इतिहास के बहुत सारे भाग प्राकृतिक पर्यावरण से निर्मित हुए हैं। केवल यही नहीं विज्ञान तथा प्रविधि की संभावनाएँ भी प्राकृतिक

पर्यावरण में निहित रहती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति ही मानव जीवन को संभव करती है और यह भी प्रमाणित होता है कि प्रकृति से मनुष्य का चिर और अटूट संबंध है। प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंध को दर्शाते हुए नामवर सिंह ने लिखा है "आदिम युग से ही मनुष्य भयंकर वन्य प्रकृति से संघर्ष करता हुआ, उसे अपने अनुकूल बनाकर उसके सौंदर्य का उद्घाटन करता चला आ रहा है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि मानव स्वयं भी प्रकृति के अन्तःसंघर्ष का परिणाम है; वह प्रकृति से ही पैदा हुआ है और प्रकृति का सर्वोत्तम विकास है।"[1]

मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों में कालानुसार अन्तर अवश्य आया है। सभ्यता के विकास से इस संबंध में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है। नन्दकिशोर नवल ने लिखा है "प्रकृति एक निरपेक्ष सत्ता है, यानी अपने अस्तित्व के लिए वह किसी दूसरे वस्तु पर निर्भर नहीं है।"[2] लेकिन मानव क्या चाहता है? एक ओर मानव अपने चारों तरफ़ मानवीय जगत् का निर्माण करना चाहता है। इसके लिए वह प्रकृति पर तरह-तरह से काम करके प्रकृति का उपयोग करता है और प्रकृति को विकासशील मानव-जीवन के लिए अनुकूल बनाता है। दूसरी ओर, वह अपने अंतःजगत् में अपनी पाशविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित करके एक संस्कृति की ओर बढ़ता है। अपने जैविक अस्तित्व पर उसका नियंत्रण कायम हो जाता है। इस तरह मनुष्य अपने बाहर और भीतर प्रकृति का व्यापक रूपांतरण कर देता है। इन दोनों विचारों को जोड़कर कह सकते हैं "मनुष्य प्रकृति के साथ दो औजारों के माध्यम से संबंध स्थापित करता है :

---

1. नामवरसिंह - छायावाद - पृ. 33
2. नन्द किशोर नवल - कविता की मुक्ति - पृ. 41

1) कल्पना के ज़रिए

2) विज्ञान के ज़रिए

जब मनुष्य कल्पना के माध्यम से प्रकृति से संबंध स्थापित करता है, तब कला और साहित्य का जन्म होता है। यह प्रकृति से संबंध स्थापित करने के लिए उनके अन्तःजगत् में घटित होनेवाली प्रवृत्ति है। उदाहरण के लिए वैदिक मिथक शास्त्र में अग्नि, वायु, वरुण, इन्द्र आदि की कल्पना वस्तुतः उस युग के मनुष्य द्वारा कल्पना के माध्यम से प्रकृति के साथ संबंध स्थापित करने का पवित्र व्यापार था। लेकिन मनुष्य जब वैज्ञानिक उपायों को पूरी तरह समझने लगे तब उसके सामने यह मिथकीय दुनिया खंडित होने लगी।"[1] ऐसे में कला और साहित्य में कल्पना का स्थान विज्ञान ने ले लिया। प्रकृति और मनुष्य के बीच के परिवर्तित संबंधों को वाणी देने की प्रक्रिया में ही कविता का प्लावन-पोषण और विस्तार हुआ है।

2.1.1 कविता और प्रकृति

मनुष्य, सभ्यता के विकास-पथ पर जब धीरे-धीरे कल्पनाशील और विवेकसम्पन्न होने लगा तब उसके अनुभव भी काव्यात्मक होने लगे। इसी प्रक्रिया में मनुष्य का कविता से प्रथम साक्षात्कार हुआ था। मनुष्य की आदिम गुनगुनाहट ही कविता की शुरुआत है। मनुष्य का आदिम अनुभव ने प्रकृति की गोद में आकार लिया था। इसलिए कविता का प्रकृति से अदिम काल से ही संबंध है। "वन, पर्वत, नदी, नाले, निर्झर, कछार, चट्टान, वृक्ष, लता, झाड, फूस, शाखा, पशु-पक्षी, आकाश, मेघ,

---

1. मनीषा झा - प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता - पृ. 14

नक्षत्र, समुद्र इत्यादि चिर सहचर रूपों का तथा पानी का बहना, सूखे पत्तों का झरना मेह का बरसना, कुहरे का छाना जैसे प्राकृतिक व्यापारों का भी मनुष्य-जाति के साथ अत्यन्त प्राचीन सहचर्य है। अर्थात् ऐसे आदि रूपों तथा व्यापारों में सहृदयों के लिए सहज आकर्षण वर्तमान है।"[1] इसीलिए तो नरेश मेहता ने कहा है "प्रकृति के सुखद तथा रम्य परिवेश ने ही मनुष्य को कवि बनाया।"[2] कवि अधिक सहृदय और भावुक होने के नाते इन प्राकृतिक परिवेशों से आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। शायद यही कारण है कि दुनिया भर के कवियों ने अपनी कविताओं में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

कविता में अभिव्यक्त प्रकृति और मनुष्य के बीच के सौंदर्यपरक संबंध और उसके अनुकूल विकसित प्राकृतिक सौंदर्य का बोध प्रकृति से मनुष्य के विकसित होते रागात्मक संबंध का परिणाम है। सवाल यह उठता है कि तब कवि का कर्म क्या होता है? "कवि का काम होता है कि वह प्रकृति-विकास को खूब ध्यान से देखे। प्रकृति की लीला अनंत है। प्रकृति अद्‌भुत-अद्‌भुत खेल खेला करती है। कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति के कौशल अच्छी तरह देख लेता है, उनका वर्णन भी करता है, उनसे नाना प्रकार की शिक्षा भी ग्रहण करता है।"[3] प्राकृतिक रूपांतरण से ही मानवीय सभ्यता का विकास हुआ है। तब कवि कर्म और भी गंभीर बन जाता है। क्योंकि इस रूपांतरण को ठीक से पहचानना तथा बारीकी से उसको अभिव्यक्त करना जितना सरल दिखता है उतना सरल नहीं है। इसलिए कवि, कविता और

---

1. आचार्य रामचन्द्रशुक्ल - चिन्तामणि - पृ. 83
2. नरेश मेहता - काव्यात्मकता का दिककाल - पृ. 19
3. सं. भारत यायावर - महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली - पृ. 73

प्रकृति के बीच का संबंध जितना सरल और स्वाभाविक लगता है उतना ही कठिन और जटिल भी है। फिर भी जीवन में जिस तरह मनुष्य को प्रकृति से विच्छिन्न करके देखना - समझना अधूरा और अपर्याप्त है उसी तरह कविता में प्रकृति से विच्छिन्न मनुष्य की परिकल्पना या पहचान भी अधूरी और अपर्याप्त है। इसीलिए कवि जब प्रकृति के विविध रूपों को कविता में उतरता है तब वह भी मनुष्य-जीवन को उसकी संपूर्णता में देखने-समझने के उपक्रम का ही एक अनिवार्य हिस्सा बन जाता है।

2.1.2 काव्य में प्रकृति : भारतीय काव्य के संदर्भ में

वेदकालीन साहित्य, प्रकृति और मनुष्य के स्नेह सम्बन्ध का साक्षी है। इस स्नेह संबंध के मूल में भारतीयों की आस्तिक तथा सर्वमंगलमयता की आदर्श दृष्टि विद्यमान थीं। जो समाज सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का वास मानता हो, भला वह सृष्टि के किसी भी तत्व के प्रति उपेक्षा का भाव कैसे रख सकता है? इसी दृष्टि के कारण यहाँ पेड, पौधे, नदियाँ, सूर्य-चन्द्र, वायु, सागर, पशु-पक्षी, पत्थर सब पूजे जाते हैं।

भारतीय काव्य ने प्राचीन काल से लेकर प्रकृति के प्रति अपने अभिनन्दन के स्वर अर्पित किए हैं। 'माताः भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का उद्घोष करनेवाला वैदिक पृथ्वी सूक्त इसका प्रमाण देता है। प्रकृति और मानव के बीच के संबंध का चित्रण लौकिक संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है। अर्थात् प्रकृति-प्रेम यहाँ चारों ओर हूबहू बह रहा है। रामायण हो या रघुवंशम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् हो या कुमारसम्भवम्, कादम्बरी हो या अन्य रचना, प्रकृति का विराट फलक इन सभी रचनाओं को केवल

पृष्ठभूमि ही नहीं देता वरन् एक सजीव पात्र के रूप में कार्य-व्यापार करता हुआ सब कहीं दिख जाता है। निसर्ग कन्या शकुन्तला के साथ हो या वनप्रान्तर में कर्मरत राम-लक्ष्मण के साथ हो यहाँ प्रकृति हर जगह विद्यमान है।

वैदिक युग में जब मानव ने प्रकृति पर विजय नहीं पायी थी तब वह उसे एक अलग सत्ता के रूप में देखता था और उसका सम्मान करता था। इस युग के काव्य में प्रकृति के प्रति विस्मय का भाव विद्यमान है। वैदिक युग के बाद के कवियों के प्रकृति-संबन्धी दृष्टिकोण में बदलाव आया। यह इसलिए है कि इस काल तक आते-आते मानव प्रकृति के साथ संघर्ष करते हुए उसे समझने तथा उस पर अधिकार जमाने का प्रयास करने लगा। अपने संघर्ष के दरम्यान वह प्रकृति को निकट से जान सका और कुछ अधिक परिचित हो सका। इस परिचय के कारण प्रकृति प्रेम का उदय हुआ और प्रकृति में नानाविध सौंदर्य का उद्घाटन कर सका। अर्थात् इस युग तक आते-आते काव्य में प्रकृति के प्रति सहृदयता का भाव प्रकट होने लगा। उसके बाद के काव्य-युग में कालिदास जैसे कवियों के लिए प्रकृति मानव का सहचरी बन जाती है। क्योंकि इस युग तक आकर मानव ने अपनी सभ्यता का विकास और कर लिया था और उनका सामाजिक जीवन पहले से अधिक व्यवस्थित हो चुका था।

2.1.3 हिन्दी काव्य में प्रकृति

हिन्दी काव्य को प्रकृति से प्रेम, जुड़ाव विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है। हिन्दी काव्य में प्रकृति का प्रयोग कई प्रकार से हुआ है जैसे कि "आलम्बन के रूप में, उद्दीपन के रूप में, अलंकार प्रदर्शन के रूप में, प्रतीकात्मक रूप में, वातावरण निर्माण के रूप में, पृष्ठभूमि के रूप में, उपदेश के रूप में, रहस्यात्मक सत्ता के रूप

में, बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में, मानवीकरण के रूप में"[1] आदि। इससे यही स्पष्ट होता है कि हिन्दी की विभिन्न युगीन कविता प्रकृति से अधिक प्रभावित है।

हिन्दी के प्रारंम्भिक काव्य में प्रकृति-चित्रण मुख्य रूप से उद्दीपन और उपमान के रूप में हुआ है। वीरगाथा कालीन कवियों ने प्रकृति के उपमान सौंदर्य-वर्णन के लिए ग्रहण किए और संयोग-वियोग की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को उद्दीपन के रूप में अंकित किया है। पृथ्वीराज रासो की प्रस्तुत पंक्तियाँ जिसमें विभिन्न प्राकृतिक उपादान संयोगिता के मुरझाते हुए प्राणों का सिंचन करनेवाले उद्दीपन के रूप में अवतरित होते हैं :

"दीहा दिव्य सदंग कोप अनिला आवात्त मित्ता कर
रेन सेन दिसान थान मलिना गोमग्ग आडंबर
नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरुणया तन
मलया चंदन चंद मंद किरणा सु ग्रीष्म आसेचन।"[2]

भक्तिकालीन कवियों में सूर, तुलसी, जायसी के काव्यों में प्रकृति के सूक्ष्म और रमणीय चित्र मिलते हैं। भक्तिकालीन कवियों में सूर के काव्य में प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन रूप में पूरा प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में प्रकृति की छवि सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। उपमानों में कवि की सौंदर्यदृष्टि प्रकृति के प्रति अनुराग की भावना प्रकट करती है। 'सूरसागर' में कवि ने बहुत से ऐसे चित्र खींचे हैं जिनमें प्रकृति और मानव के बीच का आपसी संबन्ध दृष्टिगोचर होता है-

---

1. डॉ. सुरेन्द्र माथुर - आधुनिक हिन्दी काव्य गति और विधा - पृ. 146
2. सं. माताप्रसाद गुप्त - पृथ्वीराज रासउ - पृ. 246-247

"अब वृन्दावन जाय रहैंगे जहाँ बीरुध तृत पानी।
ले गोप अति ओप बिराजैं बोलत हो हो बानी।
जमुना उतरि आइ बृन्दावन जहाँ सुखद द्रुम राजैं।
गोबर्द्धन बृन्दावन जमुना सघन कुञ्ज आति छाजैं।"[1]

प्रकृति प्रयोग के चित्र तुलसीदास के 'रामचरितमानस' और 'गीतावली' में यत्र-तत्र मिल जाते हैं। रामचरितमानस के 'अरण्यकांड' और 'किष्किंधाकांड' प्रकृति के आलोङन में साकार हुए हैं। अरण्यकांड के पंचवटी प्रसंग में, कवि ने श्रीरामचन्द्र के पंचवटी में निवास करने से वहाँ के प्राकृतिक परिवेश और जीव-जन्तुओं में किसप्रकार का परिवर्तन आता है उसका चित्रण करते हुए लिखा है-

"जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा।।
गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए।।
खग मृग बुंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजन छबि लहहीं।।
सो बन बरनिन सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा।।"[2]

जायसी में प्रकृति उद्दीपन, उपमान और प्रतीकों के रूप में दिखाई देती है। 'पद्मावत' में नागमति विरह वर्णन के लिए प्रकृति का सफल प्रयोग हुआ है। काव्य में प्राकृतिक चीज़ें उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत होकर नागमति के विरह को और बढ़ाती है।

---

1. सं. बालमुकुन्द चतुर्वेदी - सूरसागर - पृ. 214
2. सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - रामचरित मानस - पृ. 273

मध्यकालीन काव्य में प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता उपलब्ध नहीं है। प्रकृति, काव्य में माध्यम मात्र है। इस काव्य में मनुष्य अपने भाव जगत का आरोपण प्रकृति के माध्यम से करता है।

रीतिकालीन काव्य में षटऋतु वर्णन और बारहमासा की भरमार के कारण प्रकृति को प्रश्रय मिलना स्वाभाविक है। रीतिकालीन कवि - बिहारी, देव, सेनापति, घनानंद आदि ने प्रकृति के अनेक चित्रों का अंकन किया है। उदाहरण के लिए बिहारी का दोहा देखिए-

"नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनि तरुवर चित भूल।
अपतु भए बिनु पाइ हैं, क्यों नव दल, फल फूल।।"[1]

अर्थात् बसंत में पतझड होने के बाद वृक्षों में हरियाली आती है किन्तु वर्षकाल में स्वयं ही वृक्षों की हरीतिमा बढ़ जाती है। यहाँ कवि ने इस तथ्य को उद्‌घाटित किया है कि प्रकृति में यह कुवत होती है कि वह कालानुसार अपने आप में परिवर्तन करती रहती है। यह भी मानव हित के लिए है।

रीतिकालीन काव्य तक काव्य में प्रकृति को उतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था, जितना महत्व उसके बाद के काव्य में प्राप्त हुआ है। सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश कुछ अलग होने के कारण प्रकृति का स्थान गौण हो गया। फिर भी यत्र-तत्र प्रकृति का सूक्ष्म तथा रमणीय चित्र का वर्णन मिलता है। इससे यही स्थापित होता है कि चाहे परिवेश कुछ भी हो कविता का प्रकृति से गहरा नाता होता है। परवर्ती काव्य के प्रकृति-चित्रण में आए हुए परिवर्तन का विवेचन आगे करेंगे।

---

1. सं. प्रो. विराज एम.ए. - बिहारी सत्तसई - पृ. 319

2.2 प्रकृति चित्रण के विविध रूप

2.2.1 द्विवेदीयुगीन काव्य : प्रकृति का मनोरम चित्र

आधुनिक कवि अपने प्राकृतिक परिवेश के प्रति जागरूक थे। प्रकृति की गोद में पलते सहृदय कवि ने अनेक जीवन संदर्भों को प्रकृति के सहारे देखने-परखने का कार्य किया है। द्विवेदीयुगीन काव्य इसकी एक शुरुआत थी।

प्राकृतिक सौंदर्य और मानव हृदय के कोमल भावों के सुन्दर चित्र तत्कालीन काव्य में मिलते हैं। परंपरागत प्राकृतिक सौंदर्य की प्रणाली से दूर होकर एक नई रेखा द्विवेदीकालीन कवियों ने खींची। आगे छायावादी और बाद के कवियों ने इस प्रकृति को संपूर्ण विकास दिया। ये कवि अनेक जीवन संदर्भों में, प्रकृति-सौंदर्य की मनोरम कल्पनाओं को हमारे सामने रखते हैं। जहाँ प्रकृति सौंदर्य अपने उत्तमोत्तम रूप में नहीं मिलता है वहाँ भी व्यापक जीवन परिवेश से संपृक्त प्रकृति-चित्र ज़रूर मिलते हैं।

इस युग के प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त ने प्राकृतिक सौंदर्य का आलम्बन के रूप में बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। जयद्रध-वध, पंचवटी तथा अन्य खंड काव्यों में प्रकृति सौंदर्य के सुन्दर चित्रण हैं। प्रकृति सौंदर्य की दृष्टि से गुप्तजी का काव्य अधिक मनोरम और अन्तः स्थल को छूने वाली है। 'साकेत' और 'यशोधरा' में प्रकृति के आन्तरिक सौंदर्य का चित्रण किया गया है। गुप्तजी की प्रकृति सजीव और मार्मिक है। उदाहरण के लिए साकेत के ऊर्मिला के चित्रकूट वर्णन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है :

"नहलाती है नभ की वृष्टि,
अंग पोंछती आतप-सृष्टि,
करता है शशि शीतल दृष्टि
देता है ऋतुपति श्रृंगार
और गौरव-गिरि उच्च-उतार !
तू निर्झर का डाल दुकूल,
लेकर कन्द-मूल फल-फूल
स्वागतार्थ सब के अनुकूल,
खडा खोल दरियों के द्वार
और गौरव - गिरि, उच्च-उदार।
....
विविध राग-रंजित, अभिराम,
तू विराग-राधन, बन धाम।
कामद होकर आप अकाम,
नमस्कार तुम को रात वार
औ गौरव गिरि, उच्च-उदार।"[1]

यहाँ कवि ने चित्रकूट का चित्रण मानवीय संवेदनाओं के योग से ही किया है, जिससे चित्रकूट का लोक-कल्याणकारी व्यक्तित्व हमारे सम्मुख आता है। ज़ाहिर है कि कवि के हृदय में प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव उमड़ पड़ता है।

साकेत को अष्टम सर्ग में प्रकृति का बहुत से सुन्दर और सूक्ष्म चित्रण देखने को मिलता है। इसमें कवि ने प्रकृति के हर एक अंडक को मानवीय जीवन

1. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - पृ. 274

से जुड़कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए वैदेही वनवास से वहाँ के जीव-जाल कितना खुश हो जाते हैं ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण देती है :

"नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोडे,
नाचो कुरंग, तुम लो उडान के तोडे
गाओ दिवि, चातक, चटक, भृङक भय छोडे,
वैदेही के वनवास-वर्ष हैं थोडे।
तितली, तूने यह कहाँ चित्रपठ पाया।
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया।
आओ कलापि, निज चन्द्रकला दिखलाओ,
कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाओ।"[1]

प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग, मानवीय सभ्यता के विकास में अवश्य हुआ है। यह एक अनिवार्यता थी जिसके बिना मानव आगे नहीं बढ़ सकते थे। प्राकृतिक स्रोत मात्र प्रकृति की भलाई के लिए नहीं बल्कि मानव के हित के लिए भी है। कवि इस सच्चाई से वाकिफ़ है, इसीलिए वे लिखते हैं :

"प्राणेश्वर, उपवन नहीं किन्तु यह वन है,
बढ़ते हैं विटपी जिधर चाहता मन है।
बन्धन ही का तो नाम नहीं जनपद है?

---

1. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - पृ. 225-226

देखो कैसा स्वच्छंद यहाँ लघु नद है।
इसको भी पुर में लोग बाँध लेते हैं।
हाँ वे इसका उपयोग बढ़ा देते हैं।
पर इससे नद का नहीं, उन्हींका हित है।"[1]

प्रिय प्रवास द्विवेदीयुग का एक प्रमुख काव्य है। हरिऔध ने इस ग्रन्थ की रचना उस समय की थी जिस समय वैज्ञानिक युग का प्रभाव हो चुका था। ऐसे एक समय में कवि प्रकृति द्वारा लोककल्याण की शिक्षा देते हैं। कवि के अनुसार प्रकृति की जो वस्तुएँ हमें विनाशकारी दीख पड़ती हैं वस्तुतः वे विनाशकारी नहीं हैं; उनके मूल में भी हित की, कल्याण की भावना निहित है। वे भी अन्ततः हितकारी ही होती हैं। 'प्रियप्रवास' के प्रथम सर्ग की कुछ पंक्तियाँ देखिए जिनमें कवि ने प्रकृति के माध्यम से लोक कल्याण की शिक्षा देने का प्रयास किया है :

"खग-समूह न था अब बोलता
विटप थे बहु नीरव हो गये।
मधुर मंजुल मत्त अलाप के।
अब न यंत्र बने तरु-वृन्द थे।
विहग औ विटपी-कुल मौनता।
प्रकट थी करती इस मर्म्म को।
श्रवण को वह नीरव थे बने।
करुण अंतिम-वादन वेणु का
विहग-नीरवता-उपरांत ही।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - पृ. 230

रुक गया स्वर श्रृंग विषाण का।
कल-अलाप समापित हो गया।
पर रही बजती वर-वंशिका।।"[1]

द्विवेदीयुगीन काव्य में प्रकृति-सौंदर्य के नवीन और सजीव रूप का चित्रण हुआ है। इस युग के काव्य में प्रकृति के व्यापक व्यापारों को परम्परा से अलग हटकर प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। प्रकृति के रूप-विधान में मानवीय भावों का समावेश इसी काल में ही हुआ है। यह एक शुरुआत थी, जिसका विकास आगे छायावादी काव्य में नज़र आता है। द्विवेदीयुगीन काव्य में प्रकृति व्यापक जीवन परिवेश के साथ मानवीय संवेदनाओं से जुडकर कल्पना के ज़रिए प्रस्तुत होती है। इस काल के प्रायः सभी काव्यों में प्रकृति की लोक-कल्याणकारी भावना की ही अभिव्यक्ति हुई है। इससे यही समझना चाहिए कि इस युग तक आते-आते प्रकृति और मानव के बीच का संबंध और भी गहरा हो गया और इस युग के कवि में इसकी सही पहचान भी थी।

2.2.2 छायावादी काव्य : प्रकृति का काल्पनिक एवं प्रेमपूर्ण चित्र

आधुनिक काल में छायावादी काव्य में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। यह एक स्वीकृत तथ्य है। छायावादी काव्य ने पाश्चात्य साहित्य और उससे प्रभावित बंगला साहित्य से प्रभाव ग्रहण करते हुए खडीबोली हिन्दी में प्रकृति-चित्रण को नयी दिशा दी। आधुनिक भारतीय समाज के विकास की दिशा उसे इसी ओर जाने के लिए प्रेरित और प्रभावित कर रही थी। नामवर सिंह का यह कथन इसका

---

1. हरिऔध - प्रियप्रवास - पृ. 8

प्रमाण देता है - "विज्ञान के द्वारा प्रकृति से संघर्ष करते हुए भी आधुनिक मानव ने उससे प्रेम किया। जिस प्रकृति से संघर्ष, उसीसे प्रेम-यह आधुनिक युग का ही सत्य नहीं है; बल्कि मानव जाति के समूचे इतिहास का ही यही निष्कर्ष है।"[1] तात्पर्य यह है कि आधुनिक विज्ञान के विकास ने प्रकृति के साथ संघर्ष करते हुए, उससे मानव का एक नया संबंध जोडा। छायावादी कवियों का प्रकृति की ओर झुकना, प्रकृति को इतना महत्व देना, प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता को काव्य में प्रतिष्ठित करना - ये, सब आधुनिक विज्ञान का ही परिणाम हैं। विज्ञान ने 'विवेक' के द्वारा प्रकृति का रहस्योद्घाटन किया। लेकिन आज मानव ने उस विवेक को खो दिया है। तभी तो विज्ञान के सहारे आज मानव प्रकृति का बलात्कार कर रहा है।

आधुनिक मानव प्रकृति की ओर मुड़ने लगा है। "पुरानी समाज-व्यवस्था के घुटते हुए वातावरण की अपेक्षा आधुनिक मानव को प्रकृति के बीच खुला वातावरण मिला; प्रकृति के राज्य में उसे पशु-पक्षियों, नदी-नालों, हवा-बादल सब में उन्मुक्त और निरंकुश स्वच्छंदता के दर्शन हुए। इसी स्वाधीनता की टोह में आधुनिक कवि प्रकृति के क्षेत्र में आया। आधुनिक व्यक्ति का प्रकृति की ओर दौडना, व्यक्तिगत स्वच्छंदता माने व्यक्तिगत स्वाधीनता का परिणाम था।"[2] छायावादी काव्य में प्रकृति का आधुनिक रूप विद्यमान है। यह इसलिए हुआ कि वैज्ञानिक प्रगति छायावादी कवियों को प्रकृति के काफ़ी निकट लायी और स्वाधीनता आन्दोलन ने उनके भीतर स्वतंत्रता की तीव्र चेतना उत्पन्न कर दी थी। इससे वे मुक्त भाव से, प्रकृति के सौंदर्य को देखने और उसके आस्वादन करने में सफल हुए। छायावादी कवियों ने अनेक

---

1. नामवरसिंह - छायावाद - पृ. 33
2. वही - पृ. 33

प्रकार से प्रकृति को देखा और उसकी छवियों का अंकन किया। प्रकृति उनके लिए साधन भी थी और साध्य भी।

प्रकृति सौंदर्य मनुष्य के हृदय सौंदर्य से मंडित है। मनुष्य का सौंदर्य बोध चेतना सापेक्ष है। चेतना के आधार पर सौंदर्य के आनन्द को हम प्राप्त करते हैं। छायावादी कवियों ने जीवन-सापेक्ष दृष्टि के सहारे प्रकृति-सौंदर्य का चित्रण किया है। प्रकृति का जीवन चक्र जिन स्थितियों से गुज़रता है मनुष्य के प्राकृतिक जीवन से उसका निकट साम्य है। पंच तत्वों की प्रक्रिया प्रकृति और मानव जीवन में एक समान होती है। छायावादी कवियों ने प्रकृति-सौंदर्य का मानवीकरण करके भाव-संसार के सौंदर्य को विशाल क्षितिज और भूमि दिए हैं। अपनी स्थिति का साम्य प्रकृति के पुष्पों, वृक्षों, बादलों आदि में पाकर कवि आनन्दानुभव करता है। जीवन के सौंदर्य, सुख और नश्वरता का बोध प्रकृति दर्शन से कवि प्राप्त करता है। "इस जीवन रहस्य का सच्चा बोध होने के नाते ही छायावादी कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया था।"[1]

प्रकृति को छायावादी कवि ने जिज्ञासा, आत्मीयता तथा रागात्मक वृत्तियों के सहारे देखा था। छायावादी कवि का प्रकृति-चित्रण आत्मीय भावनाओं से भरा हुआ है। वह प्रकृति के जीवन रहस्य का व्यापक दर्शन करता है। छायावादी प्रकृति चित्रण अपने में संपूर्ण नया और औद्वितीय है। छायावादी कवि ने प्रकृति-सौंदर्य का वर्णन करते हुए प्रकृति के प्रति असीम श्रद्धा और विश्वास की भावना प्रकट की है। आगे प्रत्येक छायावादी कवि के प्रकृति दर्शन के अध्ययन करने का प्रयास है।

---

1. डॉ. रमाकान्त शर्मा - छायावादोत्तर हिन्दी कविता - पृ. 80

2.2.2.1 पंत के काव्य में प्रकृति

सुमित्रानंदन पंत प्रकृति सौंदर्य के अमर गायक हैं। उनके काव्य सृजन की प्रेरणा ही प्रकृति है। 'वीणा', 'ग्रान्थि', 'पल्लव', 'गुंजन' जैसे प्रारम्भिक रचनाओं में कवि के प्रकृति के प्रति आग्रह सर्वत्र द्रष्टव्य है। पल्लव कवि के प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम का दिगदर्शन है। 'गुंजन में' प्रकृति, मानव भावों की रंगभूमि, चेतना के स्पन्दन, प्राणों की धड़कन तथा प्रकृति और मानव में एकाकार की भावना आदि रूपों में अवतरित होती है। उनका काव्य प्रकृति के माध्यम को लेकर जीवन के बहुत से जटिल प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इसीलिए प्रकृति कवि के लिए कहीं आराध्या देवी है तो कहीं अध्यापिका है :

"कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा!
वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुस्काना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुःख को अपनाना!"[1]

और कहीं-कहीं काकवि ने ऐसे चित्र भी खींचे हैं जहाँ खुद मानव प्रकृति का गुरु बन जाता है। इसप्रकार करके कवि ने प्रकृति और मानव के बीच के जो एकाकार की भावना की स्थापना की है :

1. सुमित्रानंदन पंत - पल्लविनी - पृ. 220

"सीखा तुम से फूलों ने
मुख देख मंद मुस्काना,
तारों ने सजल नयन हो
करुणा किरणें बरसाना।
सीखा हँसमुख लहरों ने
आपस में मिल खो जाना,
अलि ने जीवन का मधु पी,
मृदु राग प्रणय के गाना।"[1]

प्रकृति का काल्पनिक तथा मनोरम चित्र भी उनके काव्य में उपस्थित है। यह प्रायः छायावादी काव्य की ही प्रमुख विशेषता रही है। उदाहरण के लिए 'सन्ध्या' शीर्षक कविता में सुन्दर कल्पनाओं के माध्यम से प्रकृति का रमणीय चित्र खींच कर कवि इसका प्रमाण देता है।

"कहो तुम रूपसि कौन?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छबि में आप,
सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन!"[2]

पंत जी के प्रकृति चित्रण में प्रकृति हर कहीं व्याप्त है। उनके लिए प्रकृति मानव के रंगभूमि है उनके गुरु है।

---

1. सुमित्रानंदन पंत - पल्लविनी - पृ. 226
2. वही - पृ. 318

2.2.2.2 जयशंकर प्रसाद का प्रकृति चित्रण

छायावादी कवि के लिए प्रकृति साधन है। छायावादी काव्य में प्रकृति मानव के किन्हीं भावों का साधन है। प्रसादजी की प्रकृति, चेतना संपन्न है। कामायनी के प्रारम्भ में कवि ने मानवीय भावों की परिव्याप्ति प्रकृति में किसप्रकार दिखाया है इसका प्रमाण है चिन्ता सर्ग की ये पंक्तियाँ :

"दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय-समान;
नीरवता-सी शिला-चरण से
टकराता फिरता पवमान।
तरुण तपस्वी - सा वह बैठा,
साधन करता सुर श्मशान;
नीचे प्रलय-सिंधु - लहरों का,
होता था सकरुण अवसान।
उसी तपस्वी से लम्बे, थे
देवदारु दो चार खडे;
हुए हिम - धवल जैसे पत्थर
बन कर ठिठुरे रहे अडे।"[1]

कामायनी में कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं जहाँ कवि ने प्रकृति को पीठिका के रूप में उपयोग किया है। उदाहरण के लिए मनु किसी अज्ञात संगीत को सुनकर जब

---

1. जयशंकर प्रसाद - कामायनी - पृ. 13

कुतूहलवश उस ओर देखता है तो उसे जो आकृति दिखाई पडी उसका वर्णन कवि ने प्रकृति के माध्यम से बहुत ही सुन्दर और अनुपम ढंग से प्रस्तुत किया है :

"और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इंद्रजाल अभिराम
कुसुम वैभव में लता-समान
चंद्रिका से लिपटा घन श्याम।
....
नील परिधान बीच, सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन-बीच गुलाबी रंग।"[1]

कामायनी में प्रसादजी ने प्रकृति के अनेक अंगों को प्रतीक-रूप में ग्रहण किया है। जैसे कि प्राचीन काव्य में वसन्त को यौवन का प्रतीक माना गया है और उसका प्रयोग प्रसादजी ने कामायनी के काम सर्ग के प्रारम्भ में किया है। प्रकृति के मानवीकरण भी काव्य में यत्र-तत्र मिलते हैं।

2.2.2.3 प्रकृति में रहस्यमय प्रियतम का आरोपण : महादेवी के काव्य के संदर्भ में

महादेवी के काव्य में प्रकृति की विराट सौंदर्य-भूमि दर्शनीय है। प्रकृति उनके लिए एक अज्ञात रहस्यमय प्रियतम है। इसीलिए तो 'मुस्कुराता संकेत भरा नभ' महादेवी के लिए प्रिय का आने का संकेत है। महादेवी ने अपनी भावनाओं की

---

1. जयशंकर प्रसाद - कामायनी - पृ. 56

अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को पृष्ठभूमि, वातावरण, माध्यम एवं साधन के रूप में प्रयोग किया है। प्रकृति के आन्तरिक सौंदर्य का चित्रण उनके काव्य में मिलते हैं।

महादेवी ने प्रकृति का मानवीकरण करके उसकी स्थिति से अपनी मानसिक भावानुकूलता को व्यंजित किया है। प्रकृति में चेतन के रूप और गुणों का आरोप मानवीकरण का प्रमुख लक्ष्य है। उनके काव्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों एवं कार्य-व्यापारों पर मानवी भावों का आरोपण अत्यन्त सूक्ष्मता, सजीवता एवं स्वाभाविकता के साथ किया गया है। 'मुर्झाया फूल' कविता की पंक्तियाँ देखिए :

"था कली के रूप शैशव-
में अहो सूखे सुमन!
....
कर रहा अठखेलियाँ
इतरा सदा उद्यान में,
अन्त का यह दृश्य आया-
था कभी क्या ध्यान में?
सो रहा अब तू धरा पर-
शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाया हुआ।"[1]

यहाँ महादेवी ने मूरझाया फूल के माध्यम से मानवीय जीवन के शाश्वत सत्य का उद्घाटन किया है।

1. महादेवी वर्मा - नीहार - पृ. 50-51

2.2.2.4 शक्ति के प्रतीक प्रकृति : निराला के काव्य में

निराला के लिए प्रकृति ब्रह्म है, शक्ति है। 'बहती निराधार पृथ्वी, गगन में, अतुनु में सुतनु-हार' के द्वारा कवि ने प्रकृति को अनंत, पूर्ण, अनादि और निराधार घोषित किया है। "भारतीय दर्शन में जो पाँच तत्व प्रसिद्ध हैं वे शक्ति के विभिन्न रूप हैं। इसीलिए ये पाँच तत्व देखने में पाँच होते हुए भी वास्तव में एक ही है। जो आकाश है, वही बदलकर पृथ्वी बनता है; जो पृथ्वी है वह जल बनती है; जो जल है वह हवा अथवा आकाश बन जाता है"[1] निराला की यह प्रकृति उनकी अनेक कविताओं में तरह-तरह से चित्रित है। 'सरोज-स्मृति' में जहाँ निराला ने दृष्टि का वर्णन किया है, वहाँ शक्ति से पाँच तत्वों का सम्बन्ध उपर्युक्त दार्शनिक धारणाओं के अनुकूल है :

"क्या - दृष्टि ! अतल की सिक्त धार
ज्यों भोगवती उठी अपार,
उमडता ऊर्ध्व को कल सलील
जल टलमल करता नील-नील,
पर बँधा देह के दिव्य बाँध,
छलकता दृगों से साघ-साघ।"[2]

निराला का काव्य प्रकृति वर्णन के माध्यम से स्वानुभूतिमय पूजन और मानव की परिष्कृत चेतना का संचलन करता है। प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन,

---

1. रामविलास शर्मा - निराला की साहित्य साधना - पृ. 76
2. निराला - अनामिका - पृ. 126

पृष्ठभूमि, उपमा आदि सभी रूपों में प्रयोग हुआ है। 'जुही की कली' में जुही की कली और पवन के माध्यम से प्रकृति का मानवीकरण किया है। उसी प्रकार प्रकृति के अनंत चित्रों का चित्रांकन 'संध्या' कविता में हुआ है।

संक्षेप में देखा जाए तो प्रकृति-सौंदर्य का चित्रण करते हुए प्रकृति के प्रति एक असीम श्रद्धा और विश्वास की भावना छायावादी काव्य में प्राप्त है। देखना चाहिए कि "इस समय में भारतीय जीवन प्रायः नवीन वैज्ञानिक संस्कृति के गुणों, अवगुणों से सामान्यता उतना परिचित नहीं थे। प्रकृति की गोद में मानवीय जीवन आनन्दमुक्त थे। यंत्रवाद की कर्कशता उसे स्पर्श नहीं की थी।"[1] इसलिए प्रकृति का कलात्मक, सुन्दर, मनोरम एवं प्रेमपूर्ण चित्र इस काल की रचनाओं में परिलक्षित है।

2.2.3 छायावादोत्तर काव्य में प्रकृति चित्रण

छायावादोत्तर काव्य के प्रकृति चित्रण में एक प्रकार की ईमानदारी देख सकते हैं। ईमानदारी इस दृष्टि से है कि उस समय के काव्य में प्रकृति का मानव के वास्तविक जीवन से निकट और सहृदय संबंध है। रामधारी सिंह दिनकर, नरेन्द्रशर्मा, हरिवंश राय बच्चन जैसे कवियों की रचनाओं में प्रकृति के प्रति सहज बोध विद्‌यमान है। जीवन के यथार्थ संदर्भ में प्रकृति का आगमन जिसप्रकार होता है उसका भावात्मक चित्र इस काल के काव्य में मिलता है। उदाहरण के लिए बच्चन की एक कविता देखिए :

"पीले पत्तों के नीचे अंकुर की लाली,
नूतन जीवन का चिह्न लिए डाली-डाली,

---

1. डॉ. रमाकान्त शर्मा - छायावादोत्तर हिन्दी कविता - पृ. 82

तरुवर-तरुवर पर लक्षित यौवन का उभार,
बहती है मधुवन में अब पतझर की बयार।

....

पीलेपन में बदल गई थी
पत्तों की हरियाली
छेड रही थी वह भी क्षण-क्षण
तरु की डाली-डाली
शाखा के कंकाल खडे थे
गगन-पटल के आगे।"[1]

इस काल की कविताओं में प्रकृति सांसारिक जीवन की सुख-समृद्धि के पूरक के रूप में दृश्यमान है। प्रकृति का मानवीकरण भी काव्य में देखने को मिलता है। नरेन्द्रशर्मा की कुछ रचनाएँ इस दृष्टि से उच्चकोटि की है। उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन, गाँव की धरती और वहाँ के प्रकृति सौंदर्य आदि बडी स्वस्थता से चित्रित हुए है। 'पलाश-वन' में संकलित 'आषाढ़' कविता की पंक्तियाँ देखिए :

"पकी जामुन के रँग की पाग
बाँधता आया, लो, आषाढ़!
लगी उडने आँधी में पाग
झूमता डगमग-पग आषाढ़!
हर्ष विस्मय से आँखें फाड
देखती कृषक-सुताएँ जाग,

---

1. बच्चन - मिलन यामिनी - पृ. 71-76

नाचने लगे रोर सुन मोर
लगी बुझने जंगल की आग।"[1]

अर्थात् छायावादोत्तर कविता में प्रकृति मानवीय जीवन के वास्तविक परिवेश को लेकर अवतरित होती है। जो प्रायः सुन्दर और रमणीय प्राकृतिक दृश्यों के भरा रहता है।

2.2.4 प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति के भिन्न रूप

प्रगतिवादी कवि जीवन से अनुरक्त है उसी प्रकार प्रकृति से भी। इसलिए इस काव्य में विभिन्न जीवन संदर्भों में प्रकृति का चित्रण हुआ है। प्रकृति के प्रति कवि का स्नेह इसलिए है कि मनुष्य, प्रकृति के सहारे जीवन को संपन्न करता है। इसलिए प्रगतिवादी कवि जीवन से अलग करके प्रकृति को नहीं देखता है। "उनके अनुसार जिसप्रकार प्रकृति स्वयं अपने परिवर्तन, विकास और विनाशलीला में तल्लीन रहती है इसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी इन्हीं स्थितियों से गुज़रता है।"[1] अर्थात् प्रगतिवादी काव्य में जीवन और प्रकृति की पारस्परिकता हर जगह विद्यमान है।

प्रगतिवादी कविता प्रकृति संबंधी एक नवीन दृष्टिकोण का परिचय कराती है। नवीनता इस दृष्टि से है कि इसमें प्रकृति नये भौतिक विचारों को लेकर अवतरित होती है। जीवन की विकासशील स्थिति तथा उसके व्यापक संघर्ष प्रकृति-दृश्यों के सहारे काव्य में प्रस्तुत हैं। प्रगतिवादी कवि अपनी सामाजिक चेतना से प्रभावित

---

1. नरेन्द्र शर्मा - पलाश-वन - पृ. 35
2. डॉ. रमाकान्त शर्मा - छायावादोत्तर हिन्दी कविता - पृ. 231

होकर जीवन के नव-निर्माण के लिए काव्यों में प्रकृति-दृश्यों का चित्रण करता है। जीवन को संपन्न करने में प्रकृति अधिक-से-अधिक सहयोग देती है। प्रगतिवादी कवि इस सत्यबोध को लेकर जब कविता लिखती है तब प्रकृति सौंदर्य में मानव जीवन की ऊष्मा, आशा, निराशा तथा विकास का स्पष्ट दर्शन होता है। नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' इस तथ्य को उद्‌घाटित करती है :

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आये घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखों कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलायी पाँखें कई दिनों के बाद।"[1]

प्रगतिवादी काव्य प्रकृति के प्रति ममता और कृतज्ञता का भाव प्रकट करती है। प्रकृति के साथ मानव के संघर्षमय जीवन में भी प्रकृति के प्रति कृतज्ञता की भावना प्रकट करने में ये कवि हिचकते नहीं। इसी भावबोध से ओतप्रोत होकर केदारनाथ अग्रवाल लिखते हैं :

'पेड नहीं
पृथ्वी के वंशज हैं
फूल लिये

---

1. नागार्जुन - सतरंगे पंखोवाली - पृ. 32

फल लिये
मानव के अग्रज हैं।"[1]

प्रगतिवादी काव्य के प्रकृति चित्रण में खासियत यह भी है कि यह काव्य प्रकृति-वर्णन के लिए लोक जीवन का सहारा लेता है। हम जानते हैं कि प्रकृति सौंदर्य के प्रति लोकजीवन का दृष्टिकोण भौतिक है। यहाँ लोकजीवन प्रकृति को साथी के रूप में ही पाता है। लोकजीवन में प्रकृति का जो महत्वपूर्ण स्थान है वास्तव में वह प्रकृति और मानव के बीच का रागात्मक संबंध का निदर्शन है। त्रिलोचन का काव्य इस दृष्टि से उच्चकोटि का है। उनकी कविता 'नगई मेहरा' की पंक्तियाँ इस तथ्य को उद्‌घाटित करती हैं :

"नगई कहार था
अपना गाँव छोडकर
चिरानीपट्‌टी आ बसा
पूरब की ओर
जहाँ बाग या जंगल था
बाग में
पेड, आम, जामुन या चिलबिल के
जंगल में मकोय, हैंत, रिसवल
की बँवरें
झडियाँ झरबेरी की
और कई जाति की
ढेरे कटार ढाक आछी,

---

1. सं. नरेश मेहता - वाग्देवी - पृ. 11

बबूल और रेवाँ के
पेड भी जहाँ तहाँ खडे थे।"[1]

जिसप्रकार प्रकृति स्वयं नए निर्माण के लिए सतत संघर्षशील रहती है उसीप्रकार मानव जीवन भी संघर्षरत है। प्रगतिवादी काव्य में कवि ने प्रकृति-चित्रों के माध्यम से मानव की संघर्ष वृत्ति दिखाने का प्रयास भी किया है। निराला की 'बादल राग' कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है :

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुःख की छाया-
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लवित माया-
यह तेरी रण-तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नव जीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल!"[2]

संक्षेप में, देखा जाए तो प्रगतिवादी काव्य में प्रकृति का चित्रण भौतिक जीवन के संदर्भों में ही हुआ है। इसलिए कविता में प्रकृति 'रूप' न होकर सत्य बनकर जीवन के निकट खड़ी हो जाती है।

---

1. सं केदारनाथ सिंह - त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ - पृ. 52
2. सं. राजीव सक्सेना - हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ - पृ. 62-63

2.2.5 प्रयोगवादी काव्य : प्रकृति से परिस्थितिक सजगता की ओर

प्रयोगवादी काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र रूप तो नहीं देख सकते। इसका कारण है कि "प्रयोगवादी कवि पर प्रकृति हावी न होकर स्वयं कवि प्रकृति पर हावी है। कवि अपनी संवेदनाओं को प्रकृति के अनुसार नहीं ढालता है, बल्कि खुद प्रकृति उसकी संवेदनाओं के अनुसार आकार ग्रहण करती है।"[1] कविता में प्रकृति का चित्रण साधन के रूप में हुआ है। प्रयोगवादी काव्य में चित्रित प्रकृति की दो विशेषताएँ होती है :

1. प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि मनुष्य पर केन्द्रित होने के कारण, इस काव्य में चित्रित प्रकृति का चित्र संश्लिष्ट नहीं है।

2. इस काव्य में चित्रित प्रकृति सामान्य न होकर विशेष है। विशेष इस दृष्टि से है कि प्रगतिवादी कवि ने अपने काव्य में ऐसी प्रकृति का चित्रण करने का प्रयास किया है जो पाठकों के लिए एकदम नवीन प्रतीत हो सके। उदाहरण स्वरूप प्रयोगवाद के प्रयोक्ता कवि अज्ञेय की 'कतकी पूनो' की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

> "पकी ज्वार से निकल शशों की जोडी गयी फलाँगती
> सन्नाटे में बाँक नदी को जगी चमककर झाँकती!"[2]

---

1. नन्दकिशोर नवल - कविता की मुक्ति - पृ. 43
2. अज्ञेय - पूर्वा - पृ. 223

कविता की अंतिम पंक्तियाँ कुछ इसप्रकार है :

"मन में दुबकी है हुलास ज्यों परछाई हो चोर की
तेरी बाट अगोरते ये आँखें हुई चकोर की!"[1]

इससे स्थापित होता है कि प्रकृति यहाँ एक साधन मात्र है।

प्रकृति संबन्धी स्वस्थ रचनाओं में प्रयोगवादी कवि संपूर्ण भारतीय है। संध्या, उषा, नदी, पर्वत और विभिन्न ऋतुओं का भारतीय सौंदर्य प्रयोगवादी काव्य में सुरक्षित है। अज्ञेय का प्रकृति-काव्य इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

प्रकृति अज्ञेय के प्रिय विषयों में प्रमुख है। पेड, पौधे, पक्षी, झरने, नदी, सागर और बादलों के विविध भावों को बडी कुशलता के साथ उन्होंने काव्य में उकेरा है। अज्ञेय की प्रायः बहुसंख्य प्रकृति-कविता में, प्रकृति के ज़रिए उद्वेगों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न है। उनकी प्रारंभिक कविताएँ कवि की प्रकृति-ग्राही मानसिकता का भिन्न धरातल प्रस्तुत करने वाली हैं। उदाहरण स्वरूप 'जन्म दिवस' शीर्षक कविता प्रकृति का एक नया रूप लेकर उपस्थित होती है :

"किन्तु नहीं धा रहा मैं पाटियाँ आभार की
उनके समक्ष
दिया जिन्होंने बहुत कुछ, किन्तु जो
अपने को दाता नहीं मानते-
नहीं जानते :

---

1. अज्ञेय - पूर्वा - पृ. 223

अमुखर नदियाँ,
धूल भरे शिशु
खग,
ओस - नमे फूल,
गन्ध
मिट्टी पर पहले आसाढ़ के अयाने वारि-बिन्दु की,
कोटरों से झाँकती गिलहरी,
स्तब्ध, लय-बद्ध भौंरा
टँका-सा अधर में,
चाँदनी से बसा हुआ कुहरा,
पीली धूप शार, दीय प्रात की,
बाजरे को खेतों को फलाँगती
डार हिरनों की बरसात में-
नत हूँ मैं
सब के समक्ष बार-बार मैं विनीत स्वर
ऋण-स्वीकारी हूँ
विनत हूँ।"[1]

यहाँ प्रकृति अपने प्रकृत रूप में उपस्थित होकर मानव अनुभूति को, उसकी संरचना को, उसके पूरे व्यक्तित्व को अपनी उदात्तता से परिपूर्ण करती है। उनकी अधिकांश प्रकृति संबंधी कविताओं में यह उपस्थित है।

जहाँ कवि ने प्राकृतिक-परिवेश के माध्यम से अपनी मनःस्थिति का चित्रण किया है वहाँ कवि उस परिवेश के सौंदर्य से प्रभावित तो रहता है साथ ही यह परिवेश

1. अज्ञेय - पूर्वा - पृ. 67

उसके भीतर गहरी पीडा भी जगाता है। यह पीडा सुख-दुख से घनीभूत रहती है। 'ये मेघ साहसिक सैलानी' कविता में पानी के झरने की लय को पकड़कर उसी में अपनी प्रेयसी के मधुर स्मृति-चित्रों को पिरोने का प्रयास किया है :

"ये मेघ साहसिक सैलानी।
पर अब-झर-झर
स्मृति शेफाली
यह युग - सरिका अप्रतिहत स्वर
झर-झर-स्मृति के पत्ते सूखे
जीवन के अन्धड में पिटने
मरुस्थल के रेणुक-कण रूखे!"[1]

अज्ञेय की प्रकृति कविता का अध्ययन करते हुए चन्द्रकांत महादेव बंदिवडेकर ने इसप्रकार लिखा है कि "जीवन के उत्कट आत्मलीन एवं मूल्यवान क्षण वे प्रकृति के परिपार्श्व में अनुभव करते हैं - प्रेम की मधुर और दर्दभारी स्मृतियों का प्राकृतिक परिवेश में जागना इसी तथ्य को संकेतित करता है। प्रकृति के प्रति यही संवेदनशीलता जब व्यक्ति को चिंतनशील बनाती है, तब कुछ ऐसे भी क्षण कवि अनुभव करता है, जिनमें जीवन के प्रति गहरा बोध उपलब्ध सा होता है।"[2] 'हरी धास पर क्षण भर' काव्य संकलन की बहुत सारी कविताएँ इसप्रकार की हैं जहाँ एक ओर कवि ने प्रकृति के प्रति आशंसा का भाव प्रकट किया है तो दूसरी ओर प्रकृति के इस्तेमाल की बात भी की है।

---

1. अज्ञेय - पूर्वा - पृ. 185
2. चन्द्रकांत महादेव बंदिवडेकर - अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन - पृ. 30

गिरिजा कुमार माथुर ने भी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का उपयोग किया है। 'पानी भरे हुए बादल' की पंक्तियाँ देखिए :

"पानी भरे हुए भारी बादल से डूबा आसमान है
ऊँचे गुम्बद, मीनारों, शिखरों के ऊपर।
निर्जन धूल-भरी राहों में
विवश उदासी फैल रही है।
....
भीगे उत्तर से बादल हैं उठते आते
जिधर छोड आये हम अपने मन का मोती
कोसों की इस मेघ-भरी दूरी के आगे
एक बिदाई की सन्ध्या में
छोड चाँदनी-सी वे बाँहें
आँसू-रुकी मचलती आँखें"[1]

मनुष्य प्रकृति की प्राकृतिकता का उल्लंखन अनादिकाल से लेकर उल्लंखन करता आया है। उसका इस पाशविक वृत्ति के लिए विज्ञान ने बहुत साथ दिया है। कवि सदैव अपने परिवेश एवं तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित रहा है। ऐसे में, वैज्ञानिक युग में कविता का रचना पटल और विस्तृत हो जाता है। तब कविता में वैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन स्वाभाविक बन जाता है। लेकिन केवल बौद्धिक चिन्तन या वैज्ञानिक दृष्टि प्रस्तुत करना कविता का उद्देश्य नहीं है। विश्व में हो रही वैज्ञानिक प्रगति, इसके लाभ तथा दुष्परिणामों से जब साधारण को अवगत

---

1. सं. अज्ञेय - तार सप्तक - पृ. 166

करना तथा समाज में वैज्ञानिक चेतना एवं मानवीय संवेदना जागृत करना उनका उद्देश्य है। पचास के बाद की कविताओं में कुछ हद तक, और साठोत्तरी कविताओं में कुछ और विस्तार से कविता ने इस विषय पर कलम चलाई हैं।

इस विषय को लेकर जब नयी कविता के संदर्भ मं अध्ययन करता है तो नतीजा यह निकलता है कि परिवेश कुछ ऐसा ही था। डॉ. देवराज ने लिखा है : "वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिकीकरण ने मिलकर हमारे सामाजिक ढाँचे को अमूल बदल डाला था। शहरी सभ्यता औद्योगिक सभ्यता का परिणाम था।"[1] औद्योगिक सभ्यता के विकास के कारण मानव मुख्यतः शहरों और महानगरों में सिमट गया। परिणामतः प्रकृति के साथ मनुष्य का वह पुराना सहज स्वाभाविक संबंध टूट गया। प्रकृति के साथ अब वह जीवन नहीं जीता, केवल उसे वस्तु के रूप में देखता भर है।

यहाँ शोधार्थी का उद्देश्य नयी कविता के प्रकृति-चित्रण पर विचार करना नहीं है। देखना चाहिए कि विज्ञान ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ओर तो अधिनायकत्व की भूमिका अदा कर रहा है तो दूसरी ओर मानव-मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया को भी जन्म दिया था। द्वितीय महायुद्ध विज्ञान के अधिनायकत्व का भीषण परिणाम था। उस महायुद्ध में हुए भीषण नरसंहार तथा तद्जनित परिस्थितिक संकट और मानव मूल्यों का ह्रास आदि की चर्चा पहले अध्याय में हो चुका है। यहाँ द्वितीय विशुयद्ध और तद्जनित पारिस्थितिक संकट को नयी कविता के संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास मात्र है।

---

1. डॉ. देवराज - नयी कविता - पृ. 31

बीसवीं शताब्दी दो विश्वयुद्धों का साक्षी रहा है। दोनों युद्धों में शक्तिशाली राष्ट्रों ने तरह-तरह के मारक अस्त्र, विनाशक यंत्र, विषैले रसायन, नर्व गैस, अणुशक्ति, पर्यावरण-विध्वंस और अंतरिक्ष युग के संभाविक युद्धों के प्रयोगात्मक परीक्षण किए थे। इन सभी प्रयोगों का दुष्परिणाम पूरी दुनिया को झेलना पडा और आज भी झेल रहे हैं।

द्वितीय महायुद्ध में अमरीका द्वारा जापान के हिरोशिमा और नागसाकी पर परमाणु बम वर्षा हुआ था। दुनिया भर के कवियों ने इसकी कटु निन्दा की है। हिन्दी के कवियों ने इस राक्षसीय वृत्ति की खूब भर्त्सना की है। सुमित्रानंदन पंत के 'गीत अगीत' काव्य संकलन में संग्रहीत 'छप्पन' शीर्षक कविता इसकी एक सशक्त अभिव्यक्ति है :

> "भीषण ध्वंसास्त्रों की
> किन देशों में वृद्धि
> हो रही। कहां परीक्षण
> अणु विस्फोटों के दूषित कण
> जगत प्राण को
> वातावरण विषाक्त बनाते
> भू जीवन का
> सर्वनाश संभव है।"[1]

---

1. सुमित्रानंदन पंत - गीत अगीत - पृ. 115-116

हिरोशिमा और नागसाकी में हुए भीषण नरसंहार आज भी हमारे मनोमस्तिष्क को कंपित कर रहे हैं। अमरीका ने परमाणु बम्ब के सहारे जापान पर विजय तो प्राप्त की थी। लेकिन इस भीषण नरसंहार ने सारी मानवीयता को झकझोर कर दिया था। हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने इस दुर्घटना पर चिन्ता तथा प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। श्री नरेश मेहता की कविता 'मेरा समर्पित एकांत' युद्ध में हुए भीषण नरसंहार का दर्दनाक चित्रण प्रस्तुत करती है :

"दूर छिपकली सा वह छोटा टापू है
जापान देश था
जो कि मर चुका
एटम बम से
डूब गई बूटों की टापें
सिसक रहा कोढ़ों सा जीवन
विज्ञान
धुएं के अजगर सा है लील रहा
सब रंग रेशम मनु श्रद्धा का
हिरोशिमा में मनुज मर गया।"[1]

वैज्ञानिक प्रगति ने जहाँ मानव को अनेकानेक सुख सुविधाएँ प्रदान की हैं वहीं अनेक समस्यायें भी उत्पन्न कर दी हैं। इन सभी समस्याओं में सबसे बडी है परमाणु हथियारों के निर्माण एवं प्रयोग। परमाणु बम के प्रभाव को गिरिजाकुमार माथुर की कविता 'अदन पर बम वर्षा' और अज्ञेय की कविता हिरोशिमा व्यक्त करती हैं। 'हिरोशिमा' कविता विज्ञान के गलत इस्तमाल पर उँगली उठाती है :

1. नरेश मेहता - समय देवता - पृ. 50

"एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं,
नगर के चौक :
धूप बरसी
....
छायाएँ मानव-जन की
नहीं मिटी लम्बी हो-हो कर :
मानव ही सब भाप हो गये।"[1]

उसीप्रकार हिरोशिमा और नागासाकी की दुर्घटना को दोहरा कर समस्त विश्व को परमाणु परीक्षणों के दुष्परिणामों से अवगत करते हुए शमशेर बहादुर सिंह लिखते हैं :

"किस एटमगर से पूछें कि इंसान के
हीरोशिमा में कितने एटम गुम हुए।"[2]

द्वितीय महायुद्ध की भीषण स्थिति को प्रस्तुत करनेवाली ये कविताएँ, मानव समाज को युद्ध से उत्पन्न पारिस्थितिक संकट के प्रति सजग कराती हैं। आगे इस विषय पर चर्चा करनेवाली कुछ कविताओं का अध्ययन किया गया है।

हिन्दी के दो-तीन प्रमुख काव्य युद्ध के भयानक दुष्परिणामों को और तद्जनित पारिस्थितिक संकट को गंभीर ढंग से अभिव्यक्ति देने में सक्षम हुए है।

---

1. अज्ञेय - अरि जो करुणा प्रभामय - पृ. 154-155
2. शमशेर बहादुर सिंह - बात बोलेगी - पृ. 52

धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' और गिरिजाकुमार माथुर जी के 'कल्पान्तर' प्रभाकर माचवे के 'विश्वकर्मा' को ही ये श्रेय प्राप्त हैं। गिरिजा कुमार माथुर के प्रमुख गीतिनाट्य 'कल्पान्तर' अणुयुद्ध की समस्या को आधार बनाकर लिखा गया है। इस गीतिनाट्य के पहले खंड को 'स्वर्णदेश' नाम दिया गया है जिसमें कवि ने व्यावसायिक लिप्सा, अंधाधुंध औद्योगिक प्रसारवाद, प्राकृतिक संपदा का विवेकहीन दोहन, संहार के नए अस्त्रों, रसायनों, औषधियों का अन्वेषण और उत्पादन, जीव-कोषों को कृत्रिम रीति से बदलने के खतरनाक प्रयोग आदि विषयों पर चर्चा की हैं। कविता के अध्ययन के दौरान यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का पारिस्थितिक बोध पाठकों तक पहूँचने में सक्षम हुए हैं :

"हमने खोजी हैं परम सिद्धियाँ जीवन की
जो हैं आधार सृष्टि तक की
उनका यह मनमाना प्रयोग
है छेड-छाड कर रहा
प्रकृति की नीति नियम मर्यादा से
यदि क्षुब्ध, क्रुद्ध हो गयी प्रकृति
वह भस्मीभूत करेगी सारी दुनिया को"[1]

कविता से स्पष्ट होता है कि मनुष्य ने प्राकृतिक नियमों तथा मर्यादाओं का उल्लंघन किया है। प्रकृति में यह कुवत होती है कि वह सारी दुनिया को भस्मीभूत कर सकती है। कविता एक साथ मनुष्य के पारिस्थितिक अबोध तथा प्रकृति के विराट शक्ति का परिचय कराती है।

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - कल्पान्तर - पृ. 61

आगे कवि लिखते हैं :

"तुम आँखें मूंद रहे प्राकृतिक नियमों से
दे चुका ज्ञान विज्ञान तुम्हें चेतावनियां
हो रही रसायन सृष्टि क्रुद्ध
है गर्म वायु मंडल होता
पृथ्वी का वातावरण-आवरण
विषमय होता जाता है,
हैं बदल रही ऋतुएँ सारी
जल, धूल, धातु, पाषाण, द्रव्य
सागर, हिम, मेघ, वनस्पतियाँ
सब जीव-कोष, भू अंतर तक
रेडियो रश्मियों से सक्रिय होते जाते
यह मनमानी यादि रुकी नहीं
तो पृथ्वी तापग्रस्त होगी
मिट जायेगा जीवन का क्रम इस धरती से।"[1]

युद्ध जन्य पारिस्थितिक संकट को प्रस्तुत करने में धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' भी कुछ हद तक सफल हुआ है। महाभारत युद्ध के संदर्भ में ही कविता का चित्रण हुआ है। युद्ध में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग हुआ था। यहाँ कवि धर्मवीर भाती ने 'परमाणु शस्त्रों' को ब्रह्मास्त्र के नाम से पुकारा है। और इसके चलाने पर क्या दुष्परिणाम निकलता है, कविता इसका संकेत इसप्रकार देती है :

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - कल्पान्तर - पृ. 62-63

"तो आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी।"[1]

परमाणु शस्त्रों का प्रयोग प्रकृति पर्यावरण तथा मनुष्य समाज पर दूरगामी असर छोडता है। ऐसे अस्त्रों के प्रयोग का कुपरिणाम पीढ़ि-दर-पीढ़ि भोगते रहेंगे।

आगे की पंक्तियों में कवि की पर्यावरणीय चेतना जाग उठती है। सूरज का बुझ जाना तथा धरा का बाँझपन इसकी ओर संकेत है :

"ये दोनों ब्रह्मास्त्र अभी नभ में टकरायेंगे
सूरज बुझ जायेगा।
धरा बंजर हो जायेगी।"[2]

इस संदर्भ में शिवमंगलसिंह सुमन की 'वियतनाम' कविता भी बहुत ही उल्लेखनीय है। अमरीका ने वियतनाम पर लगातार युद्ध करने के दुष्परिणामों की ओर कविता ध्यान आकृष्ट करती है :

"धरती में धमक समा गई है
बाँझपन की
गर्भ में कसमसाती फसलों की ऊष्मा
फासिल्स बनती जा रही है

---

1. धर्मवीर भारती - अंधायुग - पृ. 83
2. वही - पृ. 92

वीरान-वीरान-गीरान
इन्सान सावधान !"[1]

इन कविताओं के अध्ययन से यही समझना चाहिए कि युद्ध का प्रभाव केवल मानवराशी पर ही नहीं बल्कि संपूर्ण प्रकृति पर पडता है जिससे पारिस्थितिक तंत्र बिगड जाता है।

2.3 प्रकृति पर मनुष्य का निर्मम हमला

वैज्ञानिक प्रगति तथा औद्योगिकीकरण राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक है। लेकिन उसकी अतिशयता जीवन के लिए तथा पारिस्थितिकी के लिए खतरा बन गयी है। "विज्ञान ने पूरी मानव-सभ्यता को पूँजीवादी-व्यवस्था के क्षेत्र में या खडा किया है। इसके फलस्वरूप प्राकृतिक-स्रोतों के दोहन की सुविधा प्राप्त करके मनुष्य ने अपनी आर्थिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया।"[2] यहाँ नरेश मेहता का यह कथन बहुत ही संगत होगा कि "विज्ञान ने मानवीय और पदार्थ के क्रिया व्यक्तित्वों को स्पर्धा और संघर्ष की स्थिति में खडा कर दिया है। इसका नतीजा यह हुआ कि मनुष्य, प्रकृति और सृष्टि तात्पर्य सत्ता मात्र विनाश के कगार पर पहूँच गयी है।"[3] पूँजीवादी व्यवस्था तथा विज्ञान के बीच का साँठ-गाँठ प्रकृति के लिए खतरा है। हिन्दी के नये कवियों को इसकी सही पहचान है।

---

1. शिवमंगल सिंह सुमन - मिट्टी की बारात - पृ. 105
2. डॉ. देवराज - नयी कविता - पृ. 37
3. नरेश मेहत्ता - काव्यात्मकता का दिक्काल - पृ. 39

प्रकृति पर हो रहे अत्याचारों का तथा प्राकृतिक-स्रोतों के दोहन का चित्रण नयी कविता में यत्र-तत्र मिलता है। गिरिजाकुमार माथुर की 'भीतरी नदी की यात्रा' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है :

> "तुमने बेहिसाब
> चर डाले सुगन्ध के जंगल
> डीफोलिएट झोंक नंगधडंग किये पेड
> ढोक लिया नदियों का पानी
> बना दिया समुद्रों को तेल का कुप्पा
> झीलों को गटर और पोखर
> कारखाने के फुजले का
> तेज भरी हवाओं में गंधक के बादल
> धूप पर इलेक्ट्रोप्लेटिंग
> चांदनी पर डियोडोरेण्ट वार्निश
> सब्जियों का रस
> डौमेक्सीन से गया बस"[1]

अज्ञेय का 'बावरा अहेरी' तथा 'औद्योगिक बस्ती' कविताएँ इस दृष्टि से बहुत ही उल्लेखनीय है। इन कविताओं के माध्यम से कवि यही दर्शाना चाहता है कि विज्ञान ने प्रकृति पर कैसा भीषण आतंक पैदा कर दिया है। 'बावरा अहेरी' की पंक्तियाँ इसी तथ्य का उद्घाटन करती है :

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - भीतरी नदी की यात्रा - पृ. 62

"गोधूली की धूल को, मोटरों के धुएँ को भी
पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोक-खची तन्वि
रूप-रेखा को
और दूर कचरा जलानेवाली कल की उद्‌दंड चिमनियों को जो
धुआँ यों उगलती हैं मानों उसी मात्र से अहेरी को
हरा देंगी।"[1]

प्रकृति पर मनुष्य द्वारा निर्मम हमला आज भी हो रहा है। मनुष्य विज्ञान का सहारा लेकर, विकास के आड़ में प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर रहा है। समकालीन कविता ने मनुष्य द्वारा प्रकृति के शोषण के अन्यान्य पहलुओं पर विचार किया है। आगे के अध्यायों में इसका विस्तृत अध्ययन किये जायेंगे।

2.4 निष्कर्ष

अध्ययन के दौरान यही साबित होता है कि मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों में कालानुसार भिन्नता अवश्य हुई है। इसकी अभिव्यक्ति प्रायः विभिन्न कालों की कविता में हुई हैं। विज्ञान और औद्योगीकरण ने हमारे समाज का आमूल परिवर्तन कर डाला। परिणाम स्वरूप प्रकृति और मानव के आपसी संबंधों में दरारें पैदा हुईं। पहले प्रकृति के प्रति कवि के मन में भय तथा विस्मय का भाव विद्‌यमान था। बाद में यही भाव विज्ञान की सहायता से प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध के रूप में बदल गया। जैसे-जैसे सभ्यता के विकास में मानव आगे बढ़े तैसे-तैसे यह रागात्मक संबंध टूटने लगे। आधुनिक सभ्यता के अंधे अनुकरण में मानव अपना

1. सं.जगदीशगुप्त - कवितान्तर - पृ. 82

विवेक खो डाला। द्वितीय विश्व युद्ध में अणुबम का प्रयोग करके उसने इस बात को साबित भी किया। विज्ञान ने समाज में पूँजीवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा की, जिससे अर्थ मुख्य बन गया। मानव अपने आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रकृति का विवेकहीन दोहन करने लगा। परिणाम स्वरूप बहुत सारे पारिस्थितिक संकट उभर आने लगे। प्रस्तुत अध्याय में शोधार्थी ने लगभग 1980 तक के हिन्दी काव्य के संदर्भ में प्रकृति को केन्द्र में रखकर इन सभी विषयों पर प्रकाश ड़ाला है।

❖❖❖

तीसरा अध्याय

समकालीन कविता में पारिस्थितिकी और मनुष्य का आपसी सरोकार

तीसरा अध्याय
समकालीन कविता में पारिस्थितिकी और मनुष्य का आपसी सरोकार

मानव एवं प्रकृति का संबंध चिरकाल से रहा है। प्रकृति के प्रांगण में ही मानव ने जीवन-यापन शुरू किया था। प्राचीन काल से लेकर हमारे यहाँ की सभी कलाओं में प्रकृति की उपस्थिति अवश्य रही है। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि उस समय के मानव को प्रकृति इतनी लुभावना लगती थी कि उसके अतिरिक्त और किसी चीज़ पर उसकी नज़र नहीं पडी। प्राचीन काव्य से लेकर छायावादी काव्य तक प्रकृति वर्णन के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति के उदाहरण देखने को मिलते हैं। प्रकृति का यह प्रकट प्रभाव समकालीन कविता में भी द्रष्टव्य है। मतलब यह है कि समकालीन कवि भी प्रकृति के सौंदर्य वर्णन से पूर्णतया मुक्त नहीं है। समकालीन कवि एकांत श्रीवास्तव का यह कथन इसका समर्थन करता है : "कविता में जो उपादान काव्यात्मकता को बचाये रखते हैं उनमें प्रकृति प्रमुख है। प्रकृति से जीवन-बोध कम नहीं होता बल्कि तीव्र और गहन रूप में प्रकट होता है।"[1] शायद इसीलिए समकालीन कवि परंपरागत प्रकृति चित्रण से पृथक होने से प्रायः विमुख नज़र आते हैं।

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - कविता का आत्मपक्ष - पृ. 33

फिर भी समय एवं बदलते मानवीय मूल्यों के अनुसार प्रकृति-चित्रण में भी परिवर्तन ज़रूर आया है। प्रकृति के इस बदलते रूप का चित्रण कविता में किस प्रकार हुआ है, उसका कारण क्या है? इस सभी मुद्दों पर भी समकालीन कविता ने विचार किया है। वैसे तो आजकल पारिस्थितिक दृष्टि से इसका अध्ययन हो रहा है। समकालीन कविता ने पारिस्थितिक विमर्श के पारिस्थितिक बोध तथा विभिन्न पारिस्थितिक समस्याओं के चित्रण से इस विषय को व्यापक और गंभीर बनाया है। आगे इसकी विस्तृत चर्चा होगी।

3.1 समकालीन परिवेश में प्रकृति

समकालीन कविता में चित्रित प्रकृति के विभिन्न रूपों को समझने के लिए, समकालीन परिवेश की जानकारी अवश्य है। क्योंकि परिवेश और कविता का अंतः संबन्ध है। यहाँ मनीषा झा का एक कथन जोड़ना चाहती हूँ : "समकालीन विभिन्न परिस्थितियाँ रचनात्मक माहौल के विपरीत रुख वाली हैं। एक ओर तो साँस्कृतिक विकृतीकरण, धार्मिक कूप मंडूकता और संकीर्णता, समाज में बढ़ती मानव हिंसा एवं विखंडता, राजनीतिक अपराधीकरण तथा सामाजिक - राजनीतिक भ्रष्टाचार है तो दूसरी ओर सूचना क्रांति और अत्याधुनिक टेक्नालॉजी का बढ़ता प्रसार, पर्यावरण-प्रदूषण और उसके कारण क्षतिग्रस्त प्रकृति।"[1] अर्थात् समकालीन परिवेश पूरी तरह अमानवीय हो गया है। यह अमानवीय व्यवहार प्रकृति के ऊपर भी हो रहा है। "मनुष्य प्रकृति के साथ वैसा ही व्यवहार करता है - जैसा मनुष्य स्वयं

1. डॉ. मनीषा झा - प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता - पृ. 36

मनुष्य के साथ करता है। प्रकृति को हम बचा नहीं सकते हैं। अगर स्वयं हम एक मनुष्य को बचा नहीं सकते।"[1] इस संदर्भ में लीलाधर जगूड़ी की ये पंक्तियाँ कितना सार्थक लगती है :

"जितनी मात्रा में मनुष्य मरता है
उतनी मात्रा में आत्मा भी मरती है
जितनी मात्रा में जीवन मरता है
उतनी मात्रा में प्रकृति भी मरती है
अपने विरोध के विरोध में।"[2]

अर्थात् मनुष्यता के मरने के साथ-साथ प्रकृति भी मरती रहती है। आज की स्थिति कुछ ऐसी ही है।

3.2 समकालीन कविता और प्रकृति

समकालीन कविता बहुआयामी है। प्रकृति और मनुष्य के बीच के आपसी संबंध में जिसप्रकार का परिवर्तन आया है उसको समकालीन कविता ने अपने बहु आयामी ढाँचे में ढालकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से समकालीन कविता का अध्ययन एक नयेपन की माँग करती है। यह नयेपन समकालीन कविता का प्रकृति केन्द्रित पारिस्थितिक बोध है। देखना चाहिए कि समकालीन परिवेश और परिस्थितियों ने मिलकर कविता में प्रकृति का एक अलग पहचान बनायी है।

---

1. अरुण कमल - हमारा समय और कविता, पक्षधर, वर्ष-3, अंक-8 - पृ. 21
2. लीलाधर जगूड़ी - अनुभव के आकाश में चाँद - पृ. 19-20

समकालीन कविता के केन्द्र में मानवीय जीवन की उपस्थिति रही है। अर्थात् समकालीन कविता में प्रकृति व्यापक जीवन संदर्भों के साथ अवतरित होती है। समकालीन समाज मानवीय संबंधों तथा संवेदनाओं से वंचित है। इसके लिए कई कारण हैं जैसे कि यांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी का विकास, बाज़ार का प्रसार, उपभोक्तावादी संस्कृति, संचार क्रांति, नगरी संस्कृति में जीने की उत्कंठा आदि। इनकी जकड़न में फंसकर मानवीय संवेदनाएँ एवं भावनाएँ नष्ट हो रही हैं। इसके संबंध में मनीषा झा का यह कथन बिलकुल ही सही लगता है : “जीवन पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास मनुष्य के भौतिक स्तर को ऊँचा ज़रूर उठाता है, लेकिन साथ ही उसकी भावशून्यता भी बढ़ती जाती है।”[1] अर्थात् मानवीय जीवन यांत्रिक हो गया है। जैसे कि पहले ही सूचित किया गया है कि मौजूदा परिवेश केवल मनुष्य-विरोधी ही नहीं बल्कि प्रकृति-विरोधी भी है। तब समकालीन कविता मानवीय संबंधों तथा जीवन संदर्भों को प्रकृति के माध्यम से पुनर्जीवित करने का प्रयास करती है जिससे कविता में प्रकृति पुनः जीवंत हो जाती है। एकांत श्रीवास्तव की पंक्तियाँ देखिए :

“माँ खुद भूखी रहकर
बिखेर देती है
चिडियों के लिए दाने
उन्हीं चिडियों में से
एक नन्हीं चिडिया
मेरे सपने में

---

1. डॉ. मनीषा झा - प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता - पृ. 40

बताने चली आयी है माँ का हाल
मुझे बुलाया है
आँगन के चिडियों भरे उदास नीम ने
तुलसी पर झुके
माँ के भीगे हुए चेहरे ने।'[1]

यहाँ कविता में उपस्थित प्रत्येक प्राकृतिक चीज़ कवि को अपनी माँ की याद दिलाती है।

वर्षा के साथ हमेशा हमारा एक आत्मीय संबंध रहा है। वास्तव में आत्मीय भाव से ही मनुष्य मनुष्य बनता है। इब्बार रब्बी की 'वर्षा में भीगकर' कविता देखिए :

"वर्षा में भीगकर
सहज सरल हो गया,
गल गयीं सारी किताबें
मैं मनुष्य हो गया।
खाली-खाली था
जीवन ही जीवन हो गया,
मैं भारी-भारी
हल्का-हल्का हो गया।"[2]

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - अन्न हैं मेरे शब्द - पृ. 51
2. इब्बार रब्बी - लोगबाग - पृ. 13

मानवीय ज़िन्दगी के सबसे खूबसूरत भाव प्रणय को सर्वेश्वरदयाल सक्सेना प्रकृति से जोड़ते हैं। लिखते हैं कि वसंत में तितलियाँ फूलों पर प्रणयगीत रचती हैं। कवि ने फूल और तितली के बीच के प्रणय-वर्णन द्वारा मानवीय प्रेम-भावना को उजागर किया है :

"तितली ने कहा फूल से
मैं तुम्हारे साथ
कितनी भरीपूरी लगती हूँ
और उड गई।"[1]

"उद्‌यान में
उड रही हैं तितलियाँ
वसंत के प्रेम पत्र।"[2]

अरुण कमल की कविताएँ प्रायः जीवन के विभिन्न संदर्भों में प्रकृति को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करती हैं। ज़्यादातर संदर्भों में प्रकृति मानव जीवन की निकट ही रहती है। उनकी कविताएँ प्रकृति और मानव के बीच के आपसी संबंध में मेल बिठाती है। "कवि पेड की शाखा पर पकते हुए फल के माध्यम से रंग-स्वाद-गंध के धरती-आकाश तक फैले अपार विस्तार को देखता है। दरअसल यह प्रकृति के ज़रिए अशेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंधों का प्रतीक है। कवि को

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - जंगल का दर्द - पृ. 87
2. वही - पृ. 87

संघर्षरत वृक्षों का सौंदर्य एक नई दृष्टि देता है।"[1] अरुण कमल की 'जाना है' कविता ऐसे सौंदर्य का उद्घाटन करती है :

"पर आज पहली बार जब देखा है
डाल पर पकते हुए इस फल को
तभी जाना है असली रंग-स्वाद-गन्ध
इस छोटे से फल को
धरती-आकाश तक फैले सम्बन्ध।"[2]

लीलाधर मंड़लोई की कविता 'याद आए पिता' में पेड़ की उपस्थिति अपने पिता के साथ कवि के रागात्मक संबंध को सूचित करती है। 'गूलर का पेड' कवि में पिता का एहसास भरता है :

"मैं बढ रहा था गूलर के उस आकर्षक पेड की स्मित
टकराया एक नुकीले पत्थर से और
उठी रक्त और दर्द की लहर
मैं ने धन्यवाद मे की अपनी आँखें नत
और टिकाके पीठ बैठ गया
याद आए पिता।"[3]

---

1. सं. संतोष तिवारी - अज्ञेय से अरुण कमल तक, भाग 2 - पृ. 213
2. अरुण कमल - अपनी अपनी केवल धार - पृ. 11
3. लीलाधर मंड़लोई - काल बाँका तिरछा - पृ. 25

3.2.1 नॉस्टेल्जिया में प्रकृति की उपस्थिति

प्रकृति का स्मृतिचित्रण समकालीन कविता में अभिव्यक्त प्रकृति का दूसरा रूप है। इसके माध्यम से समकालीन कविता ने प्रकृति चित्रण का अलग रूप सामने रखा है। समकालीन कविता के लिए यह अभिव्यक्ति का एक सशक्त साधन बन गया है। परमानन्द श्रीवास्तव का यह कथन इसका समर्थन करता है - "आज कविता में खंड-खंड स्मृतियाँ हैं जिन्हें महज़ नास्टेल्जिया के खाते में डालना संभव नहीं। स्मृतियाँ भी प्रतिरोध हैं - एक अधिक नैतिक साहसपूर्ण प्रतिरोध...."[1] समकालीन कविता में गृहातुरता जीवन की बहुत सारी जटिल संवेदनाओं तथा भावों से लैस प्रस्तुत होती है। शहरी परिवेश के दमघुट वातावरण से गाँव की गोद में शरण लेना तथा बचपन के प्राकृतिक परिवेश की ओर लौटने की इच्छा इसमें सम्मिलित है।

समकालीन कविता में प्रकृति का स्मृति-चित्रण उतना महज भी नहीं है जितना वह दिखती है। कवि के लिए यह प्रतिरोध का सशक्त माध्यम है। क्योंकि मौजूदा परिवेश में मानव द्वारा प्रकृति का अंधाधुंध दोहन चल रहा है। फलस्वरूप प्रकृति और मानव के बीच का आपसी संबंध टूट गया है। इस भीषण स्थिति में कविता में उसके विरुद्ध प्रतिरोध खड़ा करने के लिए कवि बाध्य हो जाता है। वह स्मृतियों में प्रकृति तथा प्राकृतिक परिवेश को मानवीय जीवन के रागात्मक संबंधों के साथ जोड़कर उसकी आवश्यकता पर ज़ोर देता है। वास्तव में कवि यही चाहता है कि मनुष्य यह समझे कि वह प्रकृति से बहुत दूर चला गया है और यह उसके लिए बहुत खतरनाक होगा। इसलिए प्रकृति की ओर लौटना ज़रूरी हो गई है।

---

1. परमानन्द श्रीवास्तव - कविता का अर्थात् - पृ. 17

समकालीन कविता के लगभग सभी हस्ताक्षरों ने प्रकृति को तथा प्राकृतिक परिवेश को अपनी स्मृतियों में संजोने का बखूबी प्रयास किया है। प्रयाग शुक्ल की 'दूर देश में नदी' कविता में नदी के प्रति कवि की जितनी भी संवेदनाएँ हैं वे उभरकर सामने आती हैं :

"किसी भी नदी के पास
स्मृतियाँ हैं अनेकों।
दिलाती है याद मुझे
देश की नदियों की
नदी दूर देश में।"[1]

विदेश में रहनेवाले कवि को वहाँ की नदी अपने देश की नदियों की याद दिलाती है।

कवि ऐसे परिवेश में जीना चाहता है जो पेड़-पौधे, नदियाँ, झरने, पहाड़, समुद्र तथा हरियाली से भरे हों। इसलिए जब भी वह इन से दूर हो जाता है तो उनका मन उसकी ओर लौटने की इच्छा प्रकट करता है। कवि की यह अदम्य इच्छा समकालीन कविता में कुछ इसप्रकार अभिव्यक्त हुई है :

"तुम्हारे भीतर पेड हैं
घोंसलों वाले।
हरियाली है
मरुथल हैं प्रतीक्षा में

---

1. प्रयाग शुक्ल - अधूरी चीज़ें तमाम - पृ. 27

मेघों की?
समुद्र है?
बहती धारा में
लोगों को लिये जाती
नाव?
कोई गाँव
जहाँ मन हो,
लौटने का?"[1]

विदेश में रहनेवाले कवि की स्थिति यही है तो देश में रहनेवाले कवि को नदी की स्मृतियाँ किन-किन चीज़ों की याद दिलाती हैं आगे देवव्रत जोशी की कविता की पंक्तियाँ देखिए :

"हाँ, पहले-
एक नदी होती थी गाँव में।
शंख-सीपियाँ होतीं
रेत-महल होते थे
नन्हीं इच्छाओं के
दिन, पल-छिन होते थे।"[2]

शहरी जीवन की व्यस्तताओं में भी कवि चाँदनी रात की सौंदर्यानुभूति लेना नहीं भूलता है। क्योंकि यह अनुभूति उसे वर्षों पहले के जंगल की रातों से जोड़ती

---

1. प्रयाग शुक्ल - अधूरी चीज़ें तमाम - पृ. 28
2. देवव्रत जोशी - नदी होती थी, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 26, अंक 124, मार्च-अप्रैल 2006 - पृ. 11

है, लेकिन अब जंगल, झाड़ी की उपस्थिति को लेकर कवि चिंतित है। आलोक धन्वा ने यह चिंता 'सफेद रात' कविता में कुछ इसप्रकार प्रकट की है :

"क्या वे सब अभी तक बचे हुए हैं
पीली मिट्‌टी के रास्ते और खरहे
महोगनी के घने पेड़
तेज़ महक वाली कडी घास
देर तक गोधूली ओस
रखवारे की झोंपडी और
उसके ऊपर सात तारे।"[1]

कवि की यह चिंता उस व्याकुल मन की चिंता है जो प्रकृति के किसी भी अंग को नष्ट होना नहीं चाहती।

प्रायः सभी समकालीन कवि अपने गाँव तथा घर परिवेश से दूर रहते हैं। इसलिए 'घर की ओर वापसी' वे हमेशा कुछ इसतरह महसूस करते हैं :

"बारिश आ चुकी है
और गुलमोहरों में पिछली ऋतु के
आखिरी फूल खिले हैं
ऐसे में
एक धुँधुआती साँझ घर पहूँचना
दिया-बाती के बेर

---

1. सं. विजयकुमार - सदी के अंत में कविता - पृ. 75

एक पुरानी कहानी में
लौटने जैसा है।"[1]

यहाँ बारिश, ऋतुएँ, गुलमोहर, फूल जैसे प्राकृतिक तत्व कवि के घर से जुड़ी हुई यादों को और भी सुनहरा बनाते हैं। मतलब इसके बिना घर की यादें बेरंग लगती हैं। एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में गृहातुरता (नॉस्टेल्जिक) का भाव अंतरनिहित है। परमानन्द श्रीवास्तव के अनुसार "उनके यहाँ 'प्रकृति', 'जलपाखी', 'समुद्र', 'जलवायु', 'पर्यावरण' सिर्फ आत्ममुग्ध करनेवाले दृश्य नहीं हैं बल्कि जब-तब बेचैनी पैदा करनेवाले आत्मवृत्तांत का हिस्सा जान पडते हैं।"[2]

लगभग सभी समकालीन कवियों ने प्रकृति को मानवीय जीवन संदर्भों के साथ तथा गृहातुरता के संदर्भों में प्रस्तुत करके प्रकृति और मानव के बीच के टूटते संबंधों को पुनः जोड़ने की आवश्यकता की माँग की है। प्रकृति की ओर लौटना, प्रकृति और मानव के बीच के सह-संबंधों की आवश्यकता आदि विषयों पर चर्चा करके समकालीन कविता इसप्रकार आगे बढ़ती है। समकालीन कविता की यह यात्रा अब शुद्ध पारिस्थितिक बोध से युक्त कविता में तब्दील हो गयी है। इसमें प्रकृति की चर्चा पारिस्थितिकी के तहत हुई है। इस संवाद में प्रकृति है, मानव है और पारिस्थितिकी भी। यहाँ से समकालीन कविता एक नया मोड़ पकड़ लेती है। समकालीन कविता में पारिस्थितिक विमर्श के अध्ययन की शुरुआत यहीं से होती है। आगे इसका अध्ययन-विश्लेषण का कार्य है।

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - बीज से फूल तक - पृ. 55
2. परमानन्द श्रीवास्तव - कविता का उत्तर जीवन - पृ. 171

3.2.2 समकालीन कविता का पारिस्थितिक बोध

कविता में किसी भी विषय की गहन अभिव्यक्ति जीवन को उसकी समग्रता में देखने की प्रवृत्ति का एक अनिवार्य पक्ष होती है। मानव जीवन की समग्रता का एक अनिवार्य पक्ष प्रकृति से उसके संबंध में निहित है। इसलिए आज पारिस्थितिकी का विषय समकालीन कविता का अहम मुद्‌दा बन गया है। तभी तो मैनेजर पाण्डेय ने यों लिखा है कि - "आज पूँजीवाद का विस्तार प्रकृति और पर्यावरण का विनाश करता हुआ मनुष्य के अस्तित्व का संकट का बन गया है। ऐसे में प्रकृति से मनुष्य के संबंध की चिन्ता मानव समाज के भविष्य की चिन्ता हो गई है।"[1] इसलिए परिस्थितिकी समकालीन कविता का मुख्य विषय बन गयी है।

आज दुनिया अनेक पारिस्थितिक समस्याओं का सामना कर रही है। मनुष्य के अनैतिक क्रियाकलापों से पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ जाता है। "प्रकृति में पूर्वावस्था में स्थापित सभी प्राकृतिक पद्धतियों से टक्कर और छेड़खानी करने का कर्म सबसे पहले मानव ने किया था। इसी क्रम में विकसित अव्यवस्थित प्राकृतिक पद्धतियों से प्राकृतिक परिस्थितियों में संघर्ष होने लगे। धीरे-धीरे यह एक भयावह संकट का रूपधारण लिया। इसी संकट को पारिस्थितिकीजन्य संकट कहा जाने लगा।"[2]

प्रकृति पर मनुष्य का दखलंदाज़ उसके संतुलन बिगड़ने का मुख्य हेतु है। इस पर ध्यान दिए बिना मनुष्य प्रकृति का दोहन करता आ रहा है और इससे प्रकृति

---

1. मैनेजर पाण्डेय - आलोचना की सामाजिकता - पृ. 173
2. लताजोशी - पर्यावरण की राजनीति - पृ. 28

के कई अंश लुप्त हो जाते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत करती हूँ नॉर्वेजियन द्वीप संचय में पाये जानेवाले एक पंछी समूह था पफिन। समुद्र की छोटी-छोटी मछलियाँ खाकर यह जीवन बिताता था। लेकिन जब से स्वार्थी मनुष्य पशुओं का भोजन बनाने के लिए बड़े पैमाने पर इसका शिकार करने लगे। तब से इस पंछी समूह का वंश लुप्त होने लगा। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव में पारिस्थितिक बोध जगाना और अपने अबोध से बाहर निकलना ज़रूरी हो गया है।

हम जानते हैं कि आज साहित्य में, पारिस्थितिकी, पारिस्थितिक दर्शन, पारिस्थितिक बोध, पारिस्थितिक सजगता जैसे विषयों पर खूब चर्चायें हो रही हैं। प्रकृति को केन्द्र में रखकर एक नये पारिस्थितिक बोध को जगाना पारिस्थितिक दर्शन का उद्देश्य है। मनुष्य प्राचीन काल से प्रकृति से एकमेक होकर जी रहा था। "प्रकृति से अपने जीवन का सुर मिलाकर रहने में हमें इसलिए आध्यात्मिक सुख मिलता है कि उससे हमारा जीवन विकसित और पुष्ट होता है।"[1] लेकिन आधुनिक सभ्यता, जो आधुनिकीकरण की उपज भी है, के आगमन से उसमें बदलाव आने लगा। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तहत औद्योगिकीकरण, शहरी सभ्यता, बढ़ती आबादी, विज्ञान के बढ़ते प्रभाव, साम्राज्यवाद, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि ने प्रकृति को उपभोग की वस्तु बना दी। सिर्फ यही नहीं लालच ने प्रकृति तथा पर्यावरण को पूरी तरह प्रदूषित भी कर दिया।

समकालीन कविता इन परिस्थितियों की पहचान गंभीरता से दिलाने का प्रयास करती है। समकालीन कविता का पारिस्थितिक बोध इसी में निहित है कि वह

---

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार - पृ. 26

इन समस्याओं की अभिव्यक्ति देते हुए पाठकों में पारिस्थितिक अवबोध जगाने की जद्दोजहद में लगी हुई हैं।

समकालीन कविता में प्रकृति की भिन्न उपस्थिति शोषण के शिकार के रूप में होगी। इसकी चर्चा आजकल पारिस्थितिकी के संदर्भ में ज़ोरों पर चल रही है। प्रकृति और मानव के बीच के संबंध विच्छेदन के साथ प्रकृति-शोषण की प्रक्रिया भी शुरू होती है। प्रकृति शोषण का रूप लिए, मानव के क्रियाकलापों में अंतरनिहित अमानवीयता को समकालीन कविता ढूँढ़ निकालती है।

समकालीन कविता की सबसे बड़ी खासियत शुद्ध पारिस्थितिक बोध से युक्त कविताएँ हैं। ये कविताएँ प्रकृति और मनुष्य के बीच के सह-संबंधों का टूटना, प्रकृति में मनुष्य की दखलंदाजी, विभिन्न पारिस्थितिक समस्यायें जैसे कि प्रदूषण, प्रकृति शोषण, पारिस्थितिक दुर्घटनाएँ, पारिस्थितिक विस्थापन आदि मुद्दों को केन्द्र में रखती हैं। इन समस्याओं को, विकास परियोजनाओं, वैश्वीकरण, उपभोगवादी संस्कृति, पूँजीवाद आदि के तहत देखने-परखने की आवश्यकता पर भी समकालीन कविता ज़ोर देती है। समकालीन कविताओं के अध्ययन से यही जानकारी मिलती है कि ये कविताएँ पारिस्थितिक विमर्श की आवश्यकता को गंभीरता से लेती है और उसकी सही और सशक्त अभिव्यक्ति भी देती है।

इस अध्याय में मुख्य रूप से प्रदूषण जैसे पारिस्थितिक समस्याओं की अभिव्यक्ति देनेवाली कविताओं पर चर्चा की गयी है। इस चर्चा के पहले पारिस्थितिक बोध संबंधी कविताओं पर चर्चा करनी होगी। अध्ययन से यही पता चलता है कि हिन्दी के लगभग सभी समकालीन कवियों की कविताओं में पारिस्थितिक बोध की

खूब झलक नज़र आती हैं। इन कविताओं के केन्द्र में प्रकृति और पारिस्थितिकी है। आगे इन कविताओं पर विस्तृत चर्चा करूँगी।

गोविन्द मिश्र ने प्रकृति के प्रति मनुष्य के निष्ठुर प्रवृत्तियों को सूचित करते हुए मनुष्य के अकृतज्ञ होने की सच्चाई की ओर इशारा किया है :

"प्रकृति ने हमारी झोली में
क्या-क्या डालना चाहा था।
हम ही अपात्र निकले,
जो अवसर हमने खोया
वह शायद ही खुले
प्रकृति उदार है
पर वह पहचानती भी है
अकृतज्ञों को।"[1]

समकालीन कवि मनुष्य के अकृतज्ञ होने के खिलाफ है। वे प्रकृति के पक्ष में खड़े होकर प्रकृति को आगाह करता है कि मनुष्य पर इतना प्यार मत बरसो। विडम्बना की बात यह है कि मानव को अपने कुकर्मों की पहचान तक नहीं है :

"प्रकृति!
न लुटाओ
अब मनुष्य पर
प्यार इतना!
देख तेरे

---

1. गोविन्द मिश्र - ओ प्रकृति माँ - पृ. 93

रूप अब वह
होता नहीं
हैरान है,
तेरे बदलते
रंग की
उसको नहीं
पहचान है।"[1]

आधुनिक मानव इतना गिर चुका है कि वह प्रकृति को अपने स्वार्थों की पूर्ति का साधन मात्र मानता है। तभी तो समकालीन कविता पारिस्थितिक बोध पर ज़ोर देने का कदम उठाती है।

समकालीन कविता जनता में पारिस्थितिक बोध की अवधारणा की माँग करती है। क्योंकि इस अवबोध के बिना पारिस्थितिक समस्याओं से निपटना संभव नहीं है। इसलिए सबसे पहले हमारे विचार और आचरण में बदलाव लाना होगा। इसी अवबोध से समकालीन कवि देवव्रत जोशी लिखते हैं :

"नदी ही शायद आदमी को
आदमी बनाए हुए हैं
नदी का अर्थ मेरे और तुम्हारे लिए
माँ के अलावा क्या हो सकता है?"[2]

---

1. सुरेशचन्द सर्वहारा - प्रकृति, मधुमति, वर्ष 51, अंक 6-7, जून-जुलाई 2010 - पृ. 79
2. देवव्रत जोशी - नदी का अर्थ, भाषा, वर्ष 49, अंक 3, जनवरी-फरवरी 2010 - पृ. 181

लेकिन आदमी को, आदमी की हैसियत दिलानेवाली इस नदी की बुरी हालत पर आज की कविता रोती है तभी तो वह खुल्लमखुल्ला लिखती है कि तमाम 'नदियों का अंत है" गयी है :

"तमाम नादियों का अंत है
इस सदी में
मुहानों पर घाव - ही - घाव हैं
रिसते हुए
ऑलिव ग्रीन समन्दरों में
यूफ्रेटीज़, टाइग्रिस, गंगा, सरयू
हैरान
बूढी हथेली की रेखाओं की तरह
सूखे पडे हैं पाट।"[1]

अंतिम दो पंक्तियाँ दुनिया भर की नदियों का एक जीता-जागता चित्र ही हमारे सामने रखती हैं। आज दुनिया भर में नदियाँ मृतप्राय हो रही हैं।

प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से चारों ओर की हरियाली गायब हो गयी है। बहुत सारी जैविक संपदाओं की लुटाई हो रही हैं। असंख्य वन्यजीवों तथा वनस्पतियों की प्रजातियाँ लुप्त हो गयी हैं। समकालीन कवि विनय दुबे ने 'युद्ध-एक' में इसकी अभिव्यंजना यों की है :

"नहीं
मैं ने नहीं देखा

---

1. सुदीप बैनर्जी - ज़ख़्मों के कई नाम - पृ. 41

नहीं देखा कोई हिरन
कोई पलाशवन
कोई सुहानी सुबह
और पहाड की गोद में बैठी
कोई तितली
मैं ने नहीं सुनी
वसंत की पदचाप।"[1]

समकालीन कविता के पारिस्थितिक बोध में गहराई और व्यापकता है। समकालीन कवि लिखने की प्रेरणा परिवेश से लेता है। ऐसे जीवन परिवेश से लिखने की ऊर्जा लेता है जहाँ गाँव-खलिहान, खेत, जंगल, नदी, पहाड़ आदि की उपस्थिति होती हैं। कविता में ये सभी प्राकृतिक चीज़ शब्दों का रूप ग्रहण करके नये रंग भरती है। इसलिए कवि के लिए उनका न होना भगविता की भाषा को खोने के समान है लीलाधर मंड़लोई की 'अस्थि भाषा में' कविता इसकी ओर संकेत करती है :

"मेरी अस्थियों में
एक भाषा होगी
गाँव - जवार
खेत - खलिहान
जंगल - महुआर
लोग - बाग
और जीव-जंतुओं से बनी
कि कितना कम है

---

1. विनय दुबे - खलल - पृ. 51

ध्वनि संसार
शब्द संगीत
और स्मृतियों का सच
मैं लिखना चाहता हूँ
उस अस्थिभाषा में रसूल
जिसकी स्याही इधर
सूख-सूख जाती है।"[1]

अर्थात् कवि की अस्थियों में सिर्फ एक ही भाषा होगी जो गाँव, जवार, खेत, खलिहान, जंगल, महुआर लोगबाग और जीव-जंतुओं से बनी है। यह भाषा उनके शब्द ध्वनि और संगीत से लैस होगी। ज़ाहिर है कि कविता भाषा और प्रकृति के बीच के आपसी संबंध को दर्शाती है।

समकालीन कविता में चित्रित प्रकृति और मनुष्य के बीच के टूटते संबंधों का चित्रण वास्तव में यही प्रमाणित करता है कि मानव प्रकृति से बहुत दूर चला गया है। सिर्फ यही नहीं अपनी अमानवीय व्यवहार से मनुष्य प्रकृति का घातक बन गया है। अपने क्रूर अत्याचार के दौरान प्रकृति के किसी भी अंग को वह छोडता नहीं है। पेड़-पौधे, पशु सब के सब उसके शिकार हैं।

समकालीन कवि चन्द्रकांत देवताले ने 'मई की विशाल छाती पर अग्निवृक्ष उडते हैं' कविता में पेडों पर होनेवाले अत्याचारों की ओर इशारा किया है। कवि यही

---

1. लीलाधर मंडलोई - अस्थि भाषा में, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 31, अंक 150, जुलाई-अगस्त 2010 - पृ. 123

कहना चाहता है कि जिसप्रकार मनुष्य की ज़िन्दगी सपनों से भरी रहती है उसी प्रकार पोडों के भी सपने होते हैं। लेकिन निष्ठुर मानव उनके सपनों पर कुल्हाड़ियाँ मार रहा है :

"एक माँ घर के पेड का एक सपना
असंख्य माएँ और धरती पर गाते हुए
पेडों के उतने ही सपने
पर उतने ही कुल्हाडियों के हमले
सपनों की गरदनों पर पेडों के खिलाफ।"[1]

पारिस्थितिक तंत्र में हर एक जीवन का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर रहता है। इसलिए किसी एक का विनाश दूसरे के जीवन पर तथा पारिस्थितिक तंत्र में दूरगामी परिवर्तन ला सकता है। 'फूल वहाँ तक मुरझाया' कविता में विनोदकुमार शुक्ल ने इसी समस्या को उठाया है :

"कटे पेड की दुनिया भी
बेहिसाब बडी
उस दुनिया में
पेड ढूँढते चिडियों के जोडे कई कई
एक खत्म डाल से दूसरी खत्म डाल तक
ज्यों मीलों जाते हवा में ठहर ठहर।"[2]

प्राकृतिक जीवों के साथ मनुष्य का क्रूर व्यवहार दरअसल उसके अस्तित्व के लिए भी खतरा है।

---

1. चन्द्रकांत देवताले - भूखण्ड तप रहा है - पृ. 83
2. विनोदकुमार शुक्ल - वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह - पृ. 46

इस संदर्भ में समकालीन कवि स्वप्निल श्रीवास्तव की ये पंक्तियाँ समीचीन लगती हैं :

"ताज्जुब यह है कि बचाव की इतनी
कोशिशों के बावजूद
न आदमी बचा रहा न जंगल
परिंदों की बात तो बहुत दूर है
सबसे ज़्यादा खतरे में तो आदमी के विचार हैं
यदि वे नहीं बचे तो कुछ भी नहीं।"[1]

स्पष्ट है कि अगर आदमी के विचार में बदलाव नहीं आयेंगे तो हम अपनी प्रकृति तथा पारिस्थितिकी का बचाव नहीं कर पायेंगे अर्थात् ज़रूरत है पारिस्थितिक अवबोध की।

समकालीन कविता पारिस्थितिक बोध से सापेक्ष है। कविता में इसकी अभिव्यक्ति ऋतुओं में आये हुए परिवर्तनों के चित्रण के द्वारा अंकित है। जंगलों की कटाई की वजह से ही जलवायु में परिवर्तन आया है। ऋतुओं में आये हुए अदल-बदल इसका नतीजा है। बसंत त्रिपाठी की 'प्रकृति हमारे लिए' कविता इसी मुद्दे पर आधारित है :

"वह मार्च की बारिश थी
जो हमारे लिए नहीं हुई
मई में सूरज हमारे लिए नहीं तपा

---

1. स्वप्निल श्रीवास्तव - मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए - पृ. 54

कोहरे और हाड कंप ठंड से भी परे हो गए थे हम
अब कैसे लिखें प्रकृति पर कविता!"[1]

लीलाधर मंड़लोई की कविता 'तीतर', तीतर जाति के लुप्त होने की ओर संकेत देती है। गन्ने तथा बाजर के खेतों में प्रायः पाये जानेवाले तीतर पक्षी आजकल गायब सा दिखते हैं :

"और तीतरबाजों का पागल जुनून
कितने कम होते जा रहे हैं अब
और चीक्क के बोल सुनना मुहाल
अब तो बाजे की खेती गायब
और गन्ने की खेती भी इतनी कम
कहाँ होंगे वे अब?"[2]

कवि पूछते हैं कि अगर गन्ने तथा बाजरे के खेत नहीं रह गया है तो तीतर कहाँ होंगे? पारिस्थितिक तंत्र बिगड़ जने की ओर ही कवि इशारा करते हैं।

पारिस्थितिक समस्याओं से जूझते जूझते दुनिया और जटिल बनती जा रही है। ऐसे एक माहौल में जीते हुए, हम सपने में भी यह विश्वास नहीं रख सकते हैं कि नदियाँ हमारे लिए बहती रहेगी या पहाड़ हमारे लिए झुकते रहेंगे। वास्तव में यह स्वार्थी मानव के लिए समकालीन कविता की एक चेतावनी है जो पंकज चतुर्वेदी की 'इतना सहज नहीं है' कविता में यों अभिव्यक्त हुई है :

---

1. बसंत त्रिपाठी - प्रकृति हमारे लिए, पक्षधर, वर्ष 3, अंक 7, जनवरी 2009 - पृ. 180
2. लीलाधर मंडलोई - तीतर, आलोचना त्रैमासिक, सहस्राब्दि अंक 37, अप्रैल-जून 2010 - पृ. 88

"इतना सहज नहीं है विश्व
कि झरने झरते रहें
पहाड कभी झुके ही नहीं
नदी आये और कहे
कि मैं हमेशा बहूँगी तुम्हारे साथ।"[1]

पेड़ों के दर्द समझने की संवेदनात्मक क्षमता समकालीन कविता की अलग पहचान है। पेड़ों के दर्द में छिपे भय की अभिव्यक्ति वास्तव में समकालीन कविता के पारिस्थितिक बोध का निदर्शन है। मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति कविता में हमेशा होती रही है। पेड़ों का दर्द समझने की तथा उसे शब्दबद्ध करने की प्रवृत्ति कविता में इसलिए नवीन प्रतीत होती है :

"यह जो एक पेड है पृथ्वी पर
इसकी पत्ती में सिहरन है
सिहरन में भय है।"[2]

विनय दुबे की 'यह जो एक पेड हैं कविता की ये पंक्तियाँ एक नये भावबोध को प्रकट करती हैं जो पारिस्थितिक बोध के संदर्भ में अधिक विचारणीय और गंभीर बन जाता है।

समकालीन कविता के अध्ययन से यही पता चलता है कि पेड़ों के संबंध में बहुत सारी कविताएँ लिखी गयी हैं। समकालीन कवि विमलकुमार और लीलाधर जगूड़ी ने पेड़ को समय और इतिहास के साथ जोड़कर देखने-परखने का कार्य किया

---

1. पंकज चतुर्वेदी - एक संपूर्णता के लिए - पृ. 77
2. सं. विजयकुमार - सदी के अंत में कविता - पृ. 86

है। विमलकुमार ने वृक्ष के ऐतिहासिक महत्व का उद्‌घोषणा करते हुए चिरन्तन काल से लेकर वृक्ष और मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध रहा है उसको दर्शाया है। जिस तरह मनुष्य के जीवन में वृक्ष की उपस्थिति रहा है उसीप्रकार कविता में भी स्मृतियों में तथा बिंब-प्रतीकों के रूप में उसकी हाज़िरी रही है। वृक्ष की महनीयता की उद्‌घोषणा करनेवाली 'वृक्ष और इतिहास' शीर्षक कविता वास्तव में समकालीन कविता का पारिस्थितिक बोध का उत्तम निदर्शन है :

"वृक्ष को जानना
अपने समय के इतिहास को जानना होता है
इस लिहाज से आप कह सकते हैं
आप किसी वृक्ष को नहीं, एक युग के
इतिहास को देख रहे हैं
वृक्ष का मुरझाना
इतिहास को देख रहे हैं
वृक्ष का मुरझाना
इतिहास का मुरझाना भी होता है।"[1]

लिलाधर जगूड़ी की कविता 'न होने का होना' भी पेड़ के माध्यम से मानवीय जीवन के ऐतिहासिक संदर्भो का विश्लेषण करती है :

"न होने के बाद के होने से शुरू होता है कि पेड
एक पेड से शुरू होती है समय की उम्र
एक उम्र में पेड का होना मुझे किसी मोड का होना लगता है।"[2]

---

1. विमलकुमार - पानी का दुखडा - पृ. 82-83
2. लीलाधर जगूडी - अनुभव के आकाश में चाँद - पृ. 29

'एक हरी टहनी पर' कविता में एकान्त श्रीवास्तव ने मिट्टी, पानी, वायु की महत्ता की उद्घोषणा की है। प्राकृतिक चीज़ें कवि में पारिस्थितिक बोध जगाने में कहाँ तक सफल हुई हैं कविता में देखिए :

"एक हरी टहनी पर
मैं खिला
मैं ने चलना सीखा
और कुछ रास्ते मेरे इंतज़ार में बिछ गए
मैं ने खाना सीखा
और वृक्षों ने बचाए रखा
मेरे हिस्से के पकते फलों को
दुनिया की तमाम नदियों में
बहता रहा मेरे हिस्से का पानी
प्यास लगने पर जिसे मैं पी सकता था
थोडी-सी हवा मेरे लिए बही
कुछ बादल बरसे
थोडा-सा आकाश मिला
थोडी-सी धूप।"[1]

समकालीन कविता के पारिस्थितिक बोध की संक्षिप्त और ठोस अभिव्यक्ति सुहैल अख्तर की 'बचाना है' कविता में देख सकते हैं। पेड़-पौधे, जीव-जंतु, मिट्टी, पानी, वायु की रक्षा के लिए मनुष्य की, उसकी कोमल भावनाओं की, तथा मनुष्यता

1. एकान्त श्रीवास्तव - मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद - पृ. 29

की कामना करनेवाली यह कविता इस तरह समकालीन कविता की बुलंद आवाज़ बनती है :

"बचना है मुझे
गिलहरियों को
गिलहरियों के लिए फल
फलों और पत्तों के लिए पेड
पेडों के लिए मिट्टी
मिट्टियों में नमी
और नमी के लिए
पृथ्वी के नीचे बहता पानी
जिसे बडी तेज़ी से
पीते जा रहे हैं ट्यूबवेल"[1]

कवि स्वच्छ पर्यावरण की कामना में तितलियों के लिए फलों के रस, फूलों के लिए पौधे, पौधों के लिए बगीचे, और बगीचे के लिए थोडी-सी खुली जगह बचानाा चाहता है। वैसे तो बड़ी-बड़ी इमारतों के कारण आजकल खुली जगह ही नहीं दिखाई देती। कवि की अनगिनत चाहतों में पक्षियों के लिए घोंसले, उनके उड़ान के लिए खुला आकाश और स्वच्छ हवा भरी रहती है। लेकिन वह यह भी जानता है कि कारखानों की चिमनियाँ और वाहनों के धुएँ उनके मार्ग में अवरोध पैदा करती हैं। संकल्प और यथार्थ में अंतर्विरोध होते हुए भी कवि अंततः अपने सपनों को साकार कराने का उद्घोष करता है :

1. सुहैल अख्तर - बचाना है, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 28 अंक 136, मार्च-अप्रैल 2010 - पृ. 93-94

"बचाना है मुझे
मनुष्य को
उसकी सहजता को
उसकी सरलता को
उसकी कोमलता को
उसकी हँसी और खुशी को
उसके दृढ़ संकल्प को
उसकी आँखों में आशा को
उसके ह्दय में प्यार और विश्वास को
उसके मान और सम्मान को
यानी उसकी मनुष्यता को।"[1]

इसके अलावा विनोदकुमार शुक्ल की 'जो मेरे घर कभी नहीं आयेंगे', नीलेश रघुवंशी की 'सौ बरस का पेड', अशोक वाजपेयी की 'पेड के पीछे आदमी', 'वृक्ष', 'वह पृथ्वी', 'तोतों से बची पृथ्वी', राजेश जोशी की धूप घड़ी, 'पेड क्या करता है', 'पहाड', भवानिप्रसाद मिश्र की 'एक वृक्ष', बलदेव वंशी की 'आदि पर्व' आदि ऐसी कुछ कविताएँ हैं जो पारिस्तितिक बोध की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण रही हैं। पाठकों में पारिस्थितिक बोध की अवधारणा जगाने के लिए ये कविताएँ काफी सहायक भी लगती हैं।

समकालीन कवि प्रेमशंकर रघुवंशी ने लिखा है कि "मिट्टी को हाथ में लेते ही / सौंधी गंध के साथ / महसूसता रहा / धरती, पहाड, जंगल, आकाश / और

1. सुहैल अख्तर - बचाना है, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 28, अंक 136, मार्च-अप्रैल 2010 - पृ. 94, 95

ब्रह्मांड होते / अपने अस्तित्व का विस्तार।"[1] अर्थात ब्रह्माण्ड का विस्तार धरती, पहाड, जंगल, आकाश आदि से ही होता है। लेकिन ब्रह्माण्ड का विस्तार करनेवाले ये फूल, पत्तियाँ, पेड़, पौधे, चिड़ियाँ, नदियाँ, जंगल, झरने आज केवल कविता में ही नज़र आते हैं। ये सभी प्राकृतिक चीज़ें पारिस्थितिक तंत्र में अपने अस्तित्व के लिए कराह रही हैं। रामकालीन कवि विनय दुबे की 'रोज़ रोज़' कविता इस भीषण अवस्था को पकडने में सक्षम हुई हैं :

"अब नहीं बोलेंगे कभी
कविता में
हमारी कविता में चिडिया और बच्चे
मरे जा चुके हैं पटापट"[2]

समकालीन कविता इस मुद्दे को विस्तृत दायरा देने के प्रयास में लगी हैं। इसके माध्यम से पारिस्थितिक बोध जगाने का कार्य ही कवि करता है। वास्तव में ये समकालीन कविता की सबसे बड़ी जोखिम का काम भी है। फिर भी बड़े ही दायित्व के साथ समकालीन कविता ने इस जोखिम को उठाया है।

3.3 समकालीन कविता में प्रदूषण की अभिव्यक्ति

पर्यावरण प्रदूषण आज की दुनिया की सबसे ज्वलंत समस्या है। मानव और पारिस्थितिकी का आपसी संबन्ध होने के कारण पारिस्थितिकी में जितने भी

---

1. प्रेमशंकर रघुवंशी - नर्मदा की लहरों से - पृ. 140
2. विनय दुबे - खलल - पृ. 69

परिवर्तन होते हैं उनका सीधा प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण और शहरीकरण से प्रदूषण की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। जनसंख्या बढ़ने से वाहनों तथा उद्योगों की संख्या बढ़ी जिससे कई प्रकार के प्रदूषण की समस्यायें उठ खडी हुई हैं। अत्यधिक शहरीकरण की प्रवृत्ति के कारण शहरों में आबादी बढ़ती जा रही हैं जिससे मल-मूत्र सफाई तथा निस्तारण की समस्या अबाध गति से बढ़ रही है। भगवत रावत की 'वह तो अच्छा हुआ', विनय दुबे की 'रोज़ रोज' जैसी कविताएँ प्रदूषित शहरी जीवन परिस्थितियों का खुला चित्रण करती हैं। प्रेमशंकर रघुवंशी की 'अपने-अपने ठॉव' कविता शहरी जीवन की गंदगी भरे दमघुटे वातावरण का खुला दस्तावेज़ है :

"और किस छोर से दिखाऊँ शहर
कि जहाँ पानी को तरसते लोगों को
नलों पर देख सूख न जाए नदी
गटरों की बदबू से
मूर्च्छित न हो जाए खेतों की महक
सटककर गिर न पडे
सडकों के दचकों से आँगन की जोति
और टूटकर कुचल न जाए
चौखट की वंदनवार भीड में।"[1]

1. प्रेमशंकर रघुवंशी - नर्मदा की लहरों से - पृ. 107

3.3.1 समकालीन कविता में नदी प्रदूषण की समस्या

आगे, जलप्रदूषण पर आधारित समकालीन कविताओं का अध्ययन-विश्लेषण है। अधिकतर कविताएँ नदी प्रदूषण पर ही आधारित हैं। ज्ञानेन्द्रपति की 'नदी और साबुन', 'नगर की आँखों में बसी है असी', पंकज चतुर्वेदी की 'एक समुद्र भी था', सुदीप बैनर्जी की 'तमाम नदियों का अंत है', राजेन्द्र उपाध्याय की 'गंगा केवल एक नदी का नाम नहीं', सुरेशचन्द्र सर्वहारा की 'हे गंगे' जैसी कविताएँ जल प्रदूषण की भीषण स्थिति पर अवगाहन प्रकट करती हैं।

कारखानों से निकलनेवाले विषैले पदार्थों से प्रदूषित गंगा नदी का चित्रण 'नदी और साबुन' कविता में मिलता है। कवि लिखते हैं कि :

"आह ! लेकिन
स्वार्थी कारखानों का तेजाबी पेशाब झेलते
बैंगनी हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा।"[1]

शुभ्र रंगोवाली गंगा के पानी को ज़हरीले प्रदूषकों ने बैंगनी करा दिया है। दूसरी कविता 'नगर की आँखों में बसी है असी' में उन्होंने 'असी' के नदी से नाला बनने की ओर इशारा किया है :

"असी
वही - वाराणसी की वरुणा का विपरीत ध्रुव
वही असी जो नदी से नाला हुई है

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - गंगातट - पृ. 20

जलपक्षियों ने त्याग दिया है जिसे
भूल गया है नगर जिसे एक नदी के रूप में
एक सीमेंट की नाली में बहती जाती है जो मौन, मुर्दार
एक नामशेष नदी।"[1]

पंकज चतुर्वेदी की 'एक समुद्र भी था' कविता में कचरा और गंदगी से प्रदूषित नदी का चित्रण मिलती है :

"यहाँ एक नदी थी
जो अब मैली हो गई है
क्योंकि हम उसमें
कचरा डाल आते हैं।"[2]

नदी प्रदूषण पर आधारित राजेन्द्र उपाध्याय की एक सशक्त अभिव्यक्ति है 'गंगा केवल एक नदी का नाम नहीं' कविता। कवि के लिए गंगा केवल एक नदी का नाम नहीं है बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। जिस गंगा के पानी को हर घर में संजोकर रखते थे, पीढियों तक हमारे घर की जड़ों को सींचते थे और जिसके घाटों पर स्वर्ग दिखता था उसी गंगा की आज की बुरी हालत पर कवि रो उठते हैं :

हम अपने अमृत को जहर में बदल रहे हैं
अब हमारे लिए यह जीवनदायिनी
काल प्रवाहिनी, कर्मनाश नदी

1. ज्ञानेन्द्रपति - गंगातट - पृ. 53
2. पंकज चतुर्वेदी - एक संपूर्णता के लिए - पृ. 87

माँ नहीं
सिर्फ कूड़ा बहानेवाली गंदी नाली है
जिसमें हमारे शहर की गंदगी
जली-फुंकी लाशें
और हमारे लाशें
और हमारे आत्मीयों की अर्थियाँ
बेरोक-टोक बहायी जाती हैं।
यह कौन मेरी गंगा में जहर खोल रहा है।"[1]

सुरेशचन्द्र सर्वहारा की कविता 'हे गंगे' मनुष्य का अकृतज्ञ होकर गंगा नदी को प्रदूषित करने के खिलाफ कवि का बुलंद आवाज़ है। यह कविता कवि ने गंगा की तरफ़ से ही लिखी है :

"कितना वेदनाद्र है गंगे तुम्हारा मन
अकृतज्ञ मानव पर
कितना खिन्न होता है तुम्हारा मन
जब देखती हो
अपनी लहरों पर
तैरती अस्थि कंकालों को
होती होगी आत्मा दुःखी
जब प्रदूषण कर देता है
तुम्हारे शुद्ध अस्तित्व को विकृत।"[2]

---

1. राजेन्द्र उपाध्याय - खिडकी के टूटे हुए शीशे में - पृ. 24
2. सुरेशचन्द्र सर्वहारा - हे गंगे, मधुमति, वर्ष 51, अंक 6-7, जून-जुलाई 2010 - पृ. 89

औद्योगिकीकरण के कारण गंगा नदी पूरी तरह प्रदूषित हो गयी है। अब इसके जल को पीने योग्य बनाने के लिए करोड़ों रुपये खर्च करने पड रहे हैं। देखना चाहिए कि गंगा के किनारे लगभग 30 से अधिक अत्यधिक आबादीवाले शहर स्थित है। इन शहरों के औद्योगिक अवशिष्ट गंगा नदी में प्रवाहित किये जा रहे हैं। गंगा के प्रदूषण में सर्वाधिक योगदान उत्तरप्रदेश का है जिसके सर्वाधिक औद्योगिक शहर कानपुर के चमड़े-कपड़े व अन्य उद्‌योगों के अवशिष्टों के दुष्प्रभाव से कानपुर में गंगा का पारदर्शी जल भी काला हो गया है। समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति ने इसलिए तो लिखा है 'बैंगनी' हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा। गंगोत्री से लेकर वाराणसी तक के बीच में लगभग 1200 औद्योगिक नाले गंगा में गिरते हैं। 'असी' नदी को नाला बनाना इसका कुपरिणाम था।

गंगा की भांति यमुना की भी यही स्थिति है। औद्योगिक अवशेषों और नगरों की विभिन्न प्रकार के उत्सर्गों के कारण यमुना का जल प्रदूषित हुआ है। चंबल नदी का भी यही हाल है। पास ही स्थित उद्‌योग अपने उत्पादन में मैंगनीज का उपयोग करके उसे नदी में छोडकर जल को प्रदूषित कर रहे हैं। आज कल भारत की हर एक नदी की नियति यही रही है।

3.3.2 वायुप्रदूषण तथा तद्‌जनित पारिस्थितिक समस्यायें

वायु प्रदूषण का सबसे अधिक प्रभाव वनस्पतियों पर ही पडता है। वायु प्रदूषण के कारण वनस्पति की भौतिक तथा रसायनिक क्रियाओं में अपकर्ष का प्रारम्भ हो चुका है। ज्ञानेन्द्रपति ने 'धुएँ के पेड की तरह उगी है' कविता में औद्योगिक

काखानों से निकलनेवाले धुएं से पीडित वृक्ष का चित्रण किया है। खुद पेड ही चिमनी बनकर कविता में खडा होता है :

"धुएँ के पेड की तरह उगी है
उस पार वहाँ एक चिमनी
पेडों की हरित पट्‌टी के पीछे
पेड बनी
खडी है एक चिमनी
धुआँ उगलती।"[1]

वायु प्रदूषण के कारण पेडों के पास भी ऑक्सीजन नहीं बचा है। वे भी स्वच्छ वायु के लिए तरस रहे है। 'पेडों की आवाज़' कविता सचमुच में पेड़ों की इस कारुणिक स्थिति का खुला दस्तावेज़ है :

"पर यह सच है
कि पेडों के पास नहीं बची है अक्सीजन
वे धरती पर चेतावनी की तरह खडे हैं
और अब इन दिनों
कोई नहीं सुनता पेडों की आवाज़"[2]

राजेश जोशी की कविता 'हवा' रसायनिक कारखानों से उठती ज़हरीली गैसों से हवा किसप्रकार प्रदूषित होती है उसकी ओर इशारा करती है। यह कविता भोपाल गैस ट्रैजडी पर आधारित है :

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - गंगातट - पृ. 49
2. भगवत रावत - सच पूछो तो - पृ. 19

“हवा को डस लिया है
किसी करात ने
या कौडिया साँप ने
लहर मारता है जहर
थरथराता है रह-रहकर
हवा का बदन।”[1]

डॉ. सदाशिव श्रोत्रिय ने सीमेन्ट फैक्टरी द्वारा होनेवाली वायु प्रदूषण पर कविता लिखी है। प्रदूषण के कंचुल में फँसे एक गाँव का चित्रण इसमें हुआ है। प्रदूषण से वातावरण किसप्रकार मैले हो गये है, कविता में इसकी अभिव्यक्ति देखिए :

“धूल ढका चाँद
धूल ढका शुक्र तारा
धूल से आच्छादित सारा
नीला आकाश
धूल खाते
टटके फूल, पत्तियाँ
तालाब, खेत - हरियाली।
धूल में उडान भरते पक्षी
धूल में विचरते ग्राम्य चौपाये
धूल में ही जीते, साँस लेते
हम, हमारे बच्चे-बच्चियाँ।

---

1. राजेश जोशी - धूप घड़ी - पृ. 186

एक के सीमेन्ट की
अनवरत गिरती धूल में
दबकर लुप्त होता धीरे-धीरे
अपना गाँव”[1]

कविता, प्रदूषण से वातावरण किस प्रकार मैले हो जाती है उसका संकेत देती है। पूरा का पूरा गाँव धूल से भरा हुआ है। धूल में जीने और साँस लेने के लिए अभिशप्त लोगों की स्थिति की ओर कविता संकेत देती है।

सुरेशचन्द्र सर्वहारा की ‘पेड’ कविता मानव द्वारा किये जानेवाली वायु प्रदूषण की समस्या को प्रस्तुत करती है :

“मानव उत्सर्जित
विष वायु पीकर
हो गए
स्याह तन
अपने आप पेड।”[1]

समकालीन कविता ने विश्व-तापन की समस्या को बड़े ही गंभीरतापूर्वक लिया है और उसकी सशक्त अभिव्यक्ति भी दी है। राजेन्द्र सारथी और राघवेन्द्र ने अपनी कविताओं के ज़रिये इस समस्या को पाठकों के सम्मुख रखा है। राजेन्द्र सारथी की कविता देखिए :

---

1. डॉ. सदाशिव श्रोत्रिय - सीमेन्ट फैक्टरी के पास का गाँव, मधुमति, वर्ष 51, अंक 6-7, जून-जुलाई 2010 - पृ. 12
2. सुरेशचन्द्र सर्वहारा - पेड, मधुमति, वर्ष 51, अंक 6-7, जून-जुलाई 2010 - पृ. 80

"वह देखो भुकुटियाँ तनी है तापमान
हरी-भरी धरती की कोख में उतर रही है प्रचंड आग
सूखी आँखों से धरती ताक रही है आसमान
तरस रही हैं उसकी आँखें रिमझिम देखने को, तरबतर होने को
असंख्य बीज जल गए हैं उसकी कोख में
आंचल में दूध नहीं
सूख गए हैं फसलों के अनन्य दानें
पत्थर हुई धरती की देह
बिछा गया है मरुस्थल
हवा के पंखों पर बैठ, उतर रही है नूतन बीमारियाँ
जन-जीवन में उथल-पुथल
भूख खाने लगी है असंख्य जीवन
कीडे-मकोडों-सी
टप-टप खत्म हो रही है मानव ज़िंदगियाँ।"[1]

विश्व तापन के पारिस्थितिक प्रभाव और मानवीय त्रासदी की ओर ही कविता इसारा करती है।

विश्व-तापन की समस्या से निपटने के लिए, उसका समाधान ढूँढने के लिए विश्व-भर के नेता कोपन हैगन में इकट्ठे हुए हैं लेकिन इधर आदमी प्यास से मर रहे हैं। राघवेन्द्र की कविता 'बदलते बख्त की बयार' इस अंतर्विरोध को दर्शाती है :

---

1. राजेन्द्र सारथी - बहुत भयावह दिखता है आनेवाला कल, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 28, अंक 136, मार्च-अप्रैल 2008 - पृ. 133

"मतीरे से बुझाता है प्यास
रेगिस्तान का आदमी
जीता है पचास डिग्री तापमान में
बाडमेर का आदमी
सुनो
तमाम दुनिया के नेता
इकट्ठे हैं कोपनहैगन में
बढ़ते ताप के डायनोसर से।"[1]

कविता से स्पष्ट होता है कि दुनिया के हर आदमी बढ़ते तापमान की समस्या से जूझ रहे हैं।

वायु के तापमान में वृद्धि के कारण ग्लेशियरों के पिघलने की समस्या उठ खडी हुई है जिसकी वजह से कुछ नदियों के जलस्तर में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। यह भूमि के उपजाऊ भाग को पानि के साथ बहाकर मृदा विनाश को बढावा दे रही है। राघवेन्द्र के 'पहाड खुश है' कविता इस समस्या को इसप्रकार प्रस्तुत करती है :

"पिघल जायेंगे ग्लेशियर
उफन आयेगा समुद्र
तटीय शहरों की होगी
जल समाधि।"[2]

---

1. राघवेन्द्र - बदलते बख्ते की बयार, मधुमति - वर्ष 50, अंक 3, मार्च 2010 - पृ. 25
2. राघवेन्द्र - पहाड खुश है, मधुमति, वर्ष 50, अंक 3, मार्च 2010 - पृ. 24

लगभग इसकी समान अभिव्यक्ति राजेन्द्र सारथी के 'बहुत भयावह दिखता है आनेवाला कल' में भी नज़र आती है :

> "पिघल गई है ग्लेशियरों की हिमता
> छर-छर हुई निजता
> पहाडों से उतरे धवल नद अजगर से
> थर-थर - धड-धड निनाद गर्जन
> रौद्र रूप से
> जैसे निगलेंगे समष्टि को।"[1]

उसी प्रकार ओज़ोन परत का छेदीकरण भी वायुप्रदूषण का परिणाम है। मदन कश्यप की कविता 'पृथ्वी दिवस 1991' में ओजोन परत की क्षति का एक छोटा सा जिक्र हुआ है :

> "जिनकी आकांक्षाएँ छेद रही हैं
> ओजोन की रक्षा-परत"[2]

अम्ल वर्षा या तेजाबी वर्षा जैसी पारिस्थितिक समस्या का उद्‌घाटन ज्ञानेन्द्रपति और मदन कश्यप की कविताओं में हुआ है। ज्ञानेन्द्रपति ने युद्ध से जन्मे पारिस्थितिक संकट के संदर्भ में इस समस्या का उल्लेख किया है। युद्ध में प्रयुक्त हथियारों से विषैले रसायनों का निर्वासन होता है जिससे वायु प्रदूषित हो जाती है। अम्ल वर्षा इसका परिणाम होता है। कविता में इसकी प्रस्तुति देखिए :

---

1. राजेन्द्र सारथी - बहुत भयावह दिखता है आनेवाला कल, समकालीन भारतीय साहित्य वर्ष 28, अंक 136, मार्च-अप्रैल 2008 - पृ. 133
2. मदन कश्यप - लेकिन उदास है पृथ्वी - पृ. 99

"काली वर्षा! एसिड वर्षा
आसमान रोता है काले आँसू तेजाबी आँसू
युद्ध का धुआँ आकाश के अन्तस में भरा हुआ है।"[1]

मदन कश्यप की प्रस्तुत पंक्तियाँ भी अम्लवर्षा की समस्या की ओर इशारा करती हैं :

"पूरी वसुधा की हरियाली
अम्ल मेघ बनकर बरसती है जिनकी लालसा।"[2]

मोटे तौर पर देखने पर समकालीन कविता में वायु प्रदूषण तथा उससे होनेवाले पारिस्थितिक संकटों का बारीकी से अभिव्यक्ति हुई है। चर्चित कविताएँ वायु प्रदूषण की भीषण परिस्थितियों से अवगत हो जाने का संदेश भी देती हैं।

3.3.3 मिट्टी प्रदूषण की समस्या

समकालीन कविता ने मिट्टी प्रदूषण की समस्या को गंभीरता से उठाया है। मिट्टी के प्रदूषण के कारणों को खोजते-खोजते समकालीन कविता मिट्टी की बाँझ होने की दयनीय दृश्य को पाठकों के सम्मुख रखती है। यह बहुत ही भीषण स्थिति है जिससे हम अब तक पूरी तरह वाकिफ़ नहीं है। 'बाँझ मिट्टी पर एक भी बीज नहीं उगेगा' नंद चतुर्वेदी की 'दुनिया बदलने की कोशिश' कविता की यह पंक्ति समकालीन कविता की प्रतिबद्धता का ज्वलंत मिसाल है। मिट्टी प्रदूषण की समस्या

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 102
2. मदन कश्यप - लेकिन उदास है पृथ्वी - पृ. 100

इसमें स्पष्ट नज़र आती है। समकालीन कवि बलदेव वंशी और उमाशंकर चौधरी की कविताओं में भी इस समस्या की सही और सशक्त प्रस्तुति हुई हैं।

बलदेव वंशी की कविता 'कूडा, कचरा और कोंपलें' मिट्टी प्रदूषण की विभीषिका की ओर संकेत देती है। महानगर में रहनेवाले लोग अपने घरेलू कूडा-करकट तथा गंदगी को मिट्टी में फेंक देते हैं। इसमें पॉलिथीन जैसे अनेक हानिकारक पदार्थ भी शामिल है जो मिट्टी तथा वायु के लिए बहुत ही हानिकारक है। कविता में इसका चित्रण देखिए :

"बहुत सी चीज़ें थीं वहाँ
मिट्टी के ढेर के नीचे, दबीं
वर्षों से, समय की परतों को
हटाने पर देखा-
महानगरीय कचरे में
पंच महाभूतों के ऐसे-ऐसे सम्मिश्रण
नए सभ्य उत्पाद-
और पॉलिथीन
धरती पचा नहीं पाई
इस बार। इत्ते वर्षों बाद भी
असंमंजस, असमर्थता, अपमान में
अपना धरती होने का धर्म
निभा नहीं पाई......"[1]

---

1. बलदेव वंशी - कूडा कचरा और कोंपलें, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 28, अंक 138, जुलाई-अगस्त 2008 - पृ. 147

पॉलिथीन जैसे हानिकारक चीज़ों को पचाने में धरती असमर्थ है। यह पदार्थ कभी भी सडते नहीं। इसप्रकार पॉलिथीन वायु तथा मिट्टी को प्रदूषित करता है। प्रदूषण को बढ़ाने में पॉलिथीन सबसे बडा कारक हो गया है। इसके उपयोग में सावधानी बरतने की आवश्यकता पारिस्थतिकीय दृष्टि से समय की माँग बन गयी है।

मिट्टी प्रदूषण का सबसे अधिक कुप्रभाव खेती पर ही पड़ता है। हरित क्रांति के दौरान अधिक पैदावर की लक्ष्य-पूर्ति के लिए बहुत सारे रसायनिक खादों तथा कीटनाशकों का प्रयोग किया था। समकालीन कवि उमाशंकर चौधरी की कविता में इसकी अभिव्यक्तियों हुई है :

> “सुबह-सुबह अखबार के पन्नों पर
> जिन अखबार के पन्नों पर ले जाते हैं
> अपने खेत पर वे,
> कीटनाशक।
> ताकि लहलहा सके उनकी पैदावर।”[1]

हरित क्रांति के दौरान खाद्य के क्षेत्र में हमारे देश ने कामयाबी तो हासिल की। लेकिन लम्बे अर्से के बाद अब हम इस भयानक तथ्य का सामना कर रहे हैं कि हमारी मिट्टी बंजर बनती जा रही है। मिट्टी अपनी उर्वरता से वंचित हो रही है। उमाशंकर चौधरी की दूसरी कविता ‘किसान बैठा है खेत की आड पर’ में इस समस्या का उद्घाटन हुआ है :

---

1. उमाशंकर चौधरी - कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे - पृ. 44

"इस मिट्टी से क्यों नहीं आती अब
सौंधी खुशबू?
क्यों नहीं चरने के लिए घुसते हैं जानवर अब
इस खेत में?
कि क्या वाकई उसके करने से कुछ हो पाएगा
इस खेत का?"[1]

पारिस्थितिक दृष्टि से हरित क्रांति आन्दोलन गलत साबित हो रहा है। विकल्प के तौर पर आजकल कृषि के क्षेत्र में जैविक खादों के प्रयोग पर ज़ोर दे रहे हैं ताकि इससे मिट्टी की उर्वरता टिक सकें।

3.3.4 परमाण्विक प्रदूषण की समस्या

फिलहाल भारत में अब तक कोई परमाण्विक दुर्घटना घटित नहीं हुई है। लेकिन भारत ने दो बार परमाणु परीक्षण किये हैं। सन् 1998 में तत्कालीन भारत सरकार ने राजस्थान के पोखरान में अणुपरीक्षण किया था। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत परमाणुशक्ति संपन्न राष्ट्र साबित हुए। लेकिन उससे उत्पन्न पारिस्थितिक संकटों को अब तक हम पहचान नहीं पाये हैं। समकालीन कवि लाल्टू पेशे से वैज्ञानिक होते हुए भी उसके मानवीय तथा पारिस्थितिक पहलुओं विचार करने में हिचकते नहीं। 'पोखरान 1998' में इसका खुलकर चित्रण हुआ है :

"गर्म हवाओं में उठती-बैठती वह
कीडे चुगती है

---

1. उमाशंकर चौधरी - कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे - पृ. 47

बच्चे उसकी गंध पाते ही
लाल-लाल मुँह खोले चीं-चीं चिल्लाते हैं
....
मृत्यु की सुन्दरता को उन्होंने नहीं देखा
सेकण्डों में विस्फोट और एक लाख डिग्री ताप
का सूरज उन्होंने नहीं देखा
उन्होंने नहीं देखा कि सुन्दर मर रहा है
लगातार भूख, गरीबी और अवबूझी चाहतों से।"[1]

कविता से ज़ाहिर होता है परमाणविक प्रदूषण प्रकृति, पारिस्थितिकी तथा मनुष्य के लिए खतरनाक है।

3.3.5 भोपाल गैस त्रासदी और समकालीन कविता

सन् 1984 की भोपाल गैस ट्राजडी में बहुत सारे लोगों की मृत्यु हो गयी थी और हज़ारों लोग अपंग हुए थे। इस पारिस्थितिक दुर्घटना के पच्चीस साल गुज़र गये हैं। अब भी वहाँ के लोग कई तरह की बीमारियों से पीडित हैं, बच्चे अपंग पैदा हो रहे हैं। दुर्घटना के शिकार हुए लोगों को सरकार की तरफ से न्याय भी नहीं मिला है।

हिन्दी के लगभग सभी समकालीन कवियों ने इस दुर्घटना पर करार निन्दा प्रकट की है। इसके खिलाफ अपनी प्रतिक्रिया भी जतायी है। विनय दुबे की 'ढाई बजे', अर्चना वर्मा की 'भोपाल 1984' राजेश जोशी की 'कुछ दिनों बाद', 'कोई

1. लाल्टू - लोग ही चुनेंगे रंग - पृ. 107

नहीं रोता', 'हवा', 'वृक्षों का प्रार्थना गीत एक', 'वृक्षों का प्रार्थना गीत दो', इस शहर को छोडकर, 'मेरे शहर का नाम', 'बसन्त 1985' जैसी कविताएँ इस दुर्घटना का तथा इससे वहाँ के लोगों में फैले तनाव, संघर्ष तथा विसंगतियों का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

अर्चना वर्मा की कविता 'भोपाल 84' भोपाल गैस ट्रैजडी का दारुण दृश्य प्रस्तुत करती है। कविता, रासायनिक प्रदूषण से प्रकृति, पर्यावरण तथा मानवीय ज़िन्दगी पर पहुँचानेवाली बाधाओं और व्यथाओं की ओर संकेत देती हैं :

"अब यहाँ
कोई अंकुर
नहीं सुगबुगाएगा
नहीं आएगा
पंखों को चीरकर ताप,
जिन्दगी तो पहले भी तुम्हारी थी।
अब, हमारे दाह का उत्सव भी
तुम्हारे घर
जन्म की तरह मनाया जाएगा।"[1]

विनय दुबे की 'ढाई बजे' कविता इस दुर्घटना का प्रभाव वहाँ के परिवेश पर किसप्रकार पडा है उसकी ओर संकेत देती है। वास्तव में यह कविता कवि की प्रतिबद्धता का ज्वलंत मिसाल है :

---

1. अर्चना वर्मा - लौटा है विजेता - पृ. 83

"प्रिय उदय
वहाँ
रात में ढाई कैसे बजते हैं
दिल्ली में लिखना
ठीक ढाई बजे रात में
क्या वहाँ लगती हैं ठंड तुम्हें
दिसम्बर की
चलते-चलते रुक जाती है हवा
भूँकते हुए कुत्ते
लडती आपस में बिल्लियाँ
हो जाते हैं क्या अचानक खामोश
वहाँ ढाई कैसे बजते हैं रात में
मेरे दोस्त लिखना
सोते हुए बच्चे
क्या चीख कर उठ बैठते हैं
औरतें अचानक उठकर
कुछ सूँघने लगती हैं क्या?"[1]

कविता के ज़रिए परिवेश के ड़रावने दृश्यों से पाठक अवगत हो जाता है।

राजेश जोशी की भोपाल गैस ट्रैजडी के आधार पर लिखी गयी कविताएं 'वृक्षों का प्रार्थना गीत एक', 'वृक्षों का प्रार्थना गीत दो' रासायनिक प्रदूषण से पीड़ित पेड़ों का चित्रण करती हैं। कविता वास्तव में मानव राशि की ओर वृक्षों का प्रार्थना गीत है :

---

1. विनय दुबे - खलल - पृ. 66

"हमें उस लिया है एक विषैली रात ने
मत छुओ, हमें मत छुओ बसन्त !"[1]

'वृक्षों का प्रार्थनागीत' : दो से भी पूरे परिवेश का भयानक चित्र सामने आता है :

"हमारे स्वप्न में अब कोई जगह नहीं
फलों और फूलों से लदे होने के
स्वप्न के लिए
अब हमारी रात में हमारी नींद में
सिर्फ मृत्यु घूमती है नंगे पाँव
दौडते भागते हाँफते
असमय मरते हैं बच्चे औरतें पुरुष"[2]

संक्षेप में कहें तो प्रदूषण की समस्या आज दुनिया की सबसे बडी पारिस्थितिक समस्या बन गयी है। समकालीन कविता की तरफ से प्रदूषण संबन्धी विभिन्न समस्याओं को तथा मानव तथा पारिस्थितिकी पर इसके दूरगामी प्रभाव को प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास हुआ है। समकालीन कवि इस प्रयास को अपना दायित्व मानता है। बढ़ते प्रदूषण की समस्या से बचने के लिए हर एक नागरिक में पारिस्थितिक बोध जगाने की आवश्यकता है।

---

1. राजेश जोशी - धूप घड़ी - पृ. 187
2. वही - पृ. 188

3.3.6 समकालीन कविता में बाढ़ और सूखेपन का चित्रण

मनुष्य की गतिविधियाँ, जैसे वनों का सफाया तथा पर्यावरण-प्रदूषण के कारण बाढ़ का प्रकोप बढता है। समकालीन कवि एकांत श्रीवास्तव ने 'बांगला देश' कविता में बाढ़ से होनेवाली मानवीय त्रासदियों की इशारा किया है :

"हमारे घर समुद्र में बह गए
हमारी नावों समुद्र में डूब गईं
हर जगह
हर जगह
हर जगह उफन रहा है समुद्र
हमारे आँगन में समुद्र का झाग
हमारे सपनों में समुद्र की रेत
अभागे वृक्ष हैं हम
बह गई
जिनके जडों की मिट्‌टी।"[1]

बलदेव वंशी की 'बाढ़ में घिरे हुए' कविता बिहार में सन् 1975 में हुए बाढ़ का चित्रण प्रस्तुत करती है।

"यही वही नगर - प्रान्त है
जहाँ कुछ माह पहले आंधी-तूफान :
व्याप्त थे आँसू रोदन और नारे
वहीं अब सुरसा-मुखी सैलाब फैला है

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - मिट्‌टी से कहूँगा धन्यवाद - पृ. 17

यह आंचल अब मैला नहीं रहा
गलकर फट गया है
और नंगी लाशें तैर आयी है ऊपर
यहाँ कौवे-चीलें सक्रिय हैं जलजन्तु
दुर्गंध और महामारी
बेकारी की तरह फैल गयी है।"[1]

राजेन्द्र सारथी की कविता 'बहुत भयावह दिखता है आनेवाला कल' कविता में बाढ़ का चित्रण मानव सभ्यता के ऊपर विजय प्राप्त प्राकृतिक शक्ति के रूप में हुआ है :

"धरती पर हुआ जल प्लावन
झील-तालाब, नदी-नाले हुए एकाकार
बाढ ने ली अँगडाई
डूब-डूब उतरा रहे हैं मानव सभ्यता के घरौंदे
सभ्य मानव बस्तियों की जल-निकासी व्यवस्था हुई ठप।"[2]

इन कविताओं के अध्ययन से यही मालूम होता है कि समकालीन कविता में बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोपों की अभिव्यक्ति केवल एक विषय के तौर पर नहीं हुई है बल्कि पारिस्थितिक दृष्टि से उनके दूरगामी परिणाम मानव-समाज पर किस हद तक पड सकता है उसे दर्शाना भी है।

---

1. बलदेव वंशी - अंधेरे के बावजूद - पृ. 70-71
2. राजेन्द्र सारथी - बहुत भयावह दिखता है आनेवाला कल, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 28, अंक 136, मार्च-अप्रैल 2008

समकालीन कविताओं के अध्ययन से यही पता चलता है कि पारिस्थितिकीय समस्याओं में सबसे सशक्त अभिव्यक्ति सूखे पर हुई है। राजेश जोशी, ज्ञानेन्द्रपति, एकांत श्रीवास्तव, प्रेमशंकर शुक्ल, लिलाधर जगूड़ी, पंकज चतुर्वेदी, विनोदकुमार शुक्ल, मदन कश्यप, जितेन्द्र श्रीवास्तव जैसे समकालीन हस्ताक्षरों ने सूखेपन की समस्या को समकालीन कविता के अहम मुद्दे के रूप में प्रस्तुत किया है। इनकी कविताएँ सूखेपन की समस्या का प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव पूरे पारिस्थितिक-तंत्र में तथा मानव समाज पर किसप्रकार पडता है उसकी ओर भी संकेत करती हैं।

प्रेमशंकर शुक्ल की कविता 'सूखी झील' में कवि ने भारत की सूखी जा रही प्रत्येक झीलों की ओर इशारा किया है। कवि लिखते हैं कि जिस झील का पानी पूरे शहर का व्यास मिटाता था आज वही झील खुद पानी के लिए तरस रही है :

"बहुत सूख गई है झील
तल की दरारों का अँधेरा
रात के पाँव में गडता है
जो झील का पानी
पालता था पूरा शहर
वही झील आज
अपनी प्यास में छटपटाती है
उछलती लहरें बीत गईं
और बचा हुआ पानी
गूँगा हो गया है!"[1]

---

1. प्रेमशंकर शुक्ल, सूखी झील, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 30, अंक 146, नवंबर-दिसंबर 2009 - पृ. 162

सूखेपन का सबसे अधिक प्रभाव खेतीबाडी पर पड़ती है। राजेश जोशी की कविता 'उमस' में इसकी अभिव्यक्ति गंभीरता से हुई है। आषाढ़ का महीना है, खेतों में हल चल शुरू हुआ था। लेकिन वर्षा के अभाव के कारण कृषि पर भारी असर पड रहा है :

"आषाढ़ के बादल बिना बरसे ही इस बार
उत्तर भारत से फरार हो गए थे
मनसून से पहले की फुहारें भीं भी इन इलाकों में नहीं पडी थी
और चौपट हो चुकी थी सोयाबीन की सारी फसल
जिन खेतों के पास नाले या नहरें थीं
वहीं बुआई हुई थी और भूले भटके कहीं-कहीं कुछ हरियाली
दिख जाती थी
ज़्यादातर खेतों में हल चल चुका था पर बीज नहीं छींटे गए थे।"[1]

भले ही तालाब सूख गया हो फिर भी सुखे हुए तालाब जन जीवन का हिस्सा किसप्रकार बनता है राजेश जोशी की कविता 'किस्सा एक तालाब का' उसको दर्शाते हैं। सूखे हुए तालाब लोगों के लिए मेला की जगह बन जाता है। लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं, गाना सुनते हैं, तरह तरह की मिट्ठाइयों की बिक्रि होती है। इसकी चर्चा अखबार में भी छपी जाती है। यहाँ तालाब अपना प्राकृतिक अस्तित्व खो रहा है। मनुष्य द्वारा दिये गये नये अस्तित्व को स्वीकारने के लिए वह बाध्य बन जाता है। विडम्बना की बात यह है कि मनुष्य उस सच्चाई से विमुख होकर उस तालाब का मज़ा उठा रहा है :

1. राजेश जोशी - चाँद की वर्तनी - पृ. 21

"अखबार में तालाब के लगातार सूखते चले जाने के
कुछ रंगीन चित्र थे
हाय : एक पराए शहर के प्लेटफार्म पर इस दृश्य ने
मुझे कहीं का नहीं छोडा
....
तालाब उस जज़ीरे तक सूख चुका था
और दूर तक पपडाई हुई ज़मीन नज़र आ रही थी चित्र में
लोग पैदल चलकर जा रहे थे उस टाप तक
एक मेला-सा लगा था सूखे तालाब में
तले हुए पापड और हलुआ बिकता था
नातिया कव्वाली गाई जा रही थी मज़ार के पास
अखबार में तफसील से बयान किया गया था सब कुछ।"[1]

एकान्त श्रीवास्तव में 'सूखा' कविता में सूखेपन का हाहाकार का चित्रण बहुत ही मार्मिक ढ़ंग से किया है। कविता कवि के निजी अनुभव से जुडी हुई है। एक बार कवि के गाँव में अकाल पडा। गाँव के तालाब सूख गये, नदियाँ सूख गयीं। वर्षा न होने से धान के पौधे खेतों में ही सूख गए थे। फ़सल नष्ट हो गई और भयानक अकाल पडा। इसके संबंध में कवि ने खुत लिखा है : "एक बार वर्षा नहीं हुई। गाँव में अकाल पड गया। मेला उस वर्ष भी लगा मगर फीका-फीका सा। उजाड-सा। लोग बहुत कम आए। जेबें ही खाली थीं। उस बार का मेला घूमना भुलाया नहीं जा सकता। उस अनुभव ने मुझे बहुत आहत किया। बहुत बाद में वह अनुभव मेरी कविता में आया।"[2] सूखे से जुड़ी हुई अपनी उन यादों को कवि ने यों संजोया है:

---

1. राजेश जोशी - चाँद की वर्तनी - पृ. 26
2. एकान्त श्रीवास्तव - वागर्थ अंक 162 जनवरी 2009 - पृ. 79

"इस बार मेले में
पहुँचने की ललक से पहले पहुँच गयी
लौटने की थकान
एक खाली कटोरे के सन्नाटे में
डूबती रही मेले की गूँज
सिर्फ सूखा टहलता रहा
इस बार मेले में।"[1]

लीलाधर जगूड़ी की 'बाज़ार में', 'बसंत आया', पंकज चतुर्वेदी की 'मेरे आसपास', ज्ञानेन्द्रपति की 'सूखे से जिनका सामना' जितेन्द्र श्रीवास्तव की 'सूखा', 'सबसे बडा दुःख', विनोदकुमार शुक्ल की 'सूखा कुआँ तो मृत है', 'एक सूखी नदी' मदन कश्यप की 'चिडियों का क्या' जैसी कविताओं में भी इस समस्या की गंभीर तथा सघन अभिव्यक्ति महसूस कर सकते हैं। समकालीन कवि इन सभी समस्याओं को देखकर भविष्य के प्रति काफी चिंतित है। शायद इसीलिए राजेन्द्र सारथी ने लिखा होगा कि "डरावना दिखता है भूमंडल का भविष्य / धुँधला..... भुतहा....../ सहमें हैं वैज्ञानिक और पर्यावरणविद / महँगा सिद्ध हो रहा है प्रकृति के ऋतुचक्र से खिलवाड।"[2] ज़हारि है कि सूखेपन की समस्या को गंभीर पारिस्थिति संकट के रूप में प्रस्तुत करने में समकालीन कविता सक्षम हुई है।

---

1. एकांत श्रीवास्तव - अन्न हैं मेरे शब्द - पृ. 14
2. राजेन्द्र सारथी - बहुत भयावह दिखता है आनेवाला कल, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 28, अंक 136, मार्च-अप्रैल 2008 - पृ. 133

3.4 निष्कर्ष

कविता और प्रकृति के बीच का संबंध हमेशा रहा है। समकालीन कविता परिवेश की सभी विडंबनाओं के बावजूद, जो प्रायः प्रकृति विरोधी है उसके विपरीत रुख पकड़ने में काफ़ी सक्षम और आतुर दिखती है। एक ऐसी दुनिया जहाँ मनुष्यता की छोटी सी गुंजाइश तक नहीं रह गयी है वहाँ प्रकृति के प्रति सौम्य व्यवहार कैसे उम्मीद कर सकती है? यह सवाल समकालीन कविता का अहम मुद्दा है। समकालीन कविता हमें इस तथ्य की ओर ले जाती है कि मनुष्यता को बचाये रखना प्रकृति की रक्षा करने का पहला कदम है। इस दायित्व को निभाते हुए समकालीन कविता प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप प्रस्तुत करती हैं। समकालीन कवि कहीं प्रकृति को मानवीय जीवन के रागात्म संबंधों के साथ पिरोता है तो कहीं गृहातुरता में प्रकृति और प्राकृतिक परिवेश की ओर लौटाता है। लेकिन समकालीन कविता की सबसे बड़ी खासियत उसमें निहित पारिस्थितिक बोध है। प्रकृति, पारिस्थितिकी और मनुष्य के बीच के आपसी तालमेल की आवश्यकता पर समकालीन कविता ज़ोर देती है। हिन्दी के लगभग सभी समकालीन कवियों ने इस उद्यम में अपनी सही भागिदारी निभायी है। दूसरी ओर इस अध्याय में विभिन्न पारिस्थितिक समस्याओं पर चर्चा की गयी है। प्रदूषण की समस्या की समकालीन कविता में सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। मिट्टी, पानी और वायु को प्रदूषित करने के विरोध में समकालीन कविता आवाज़ उठाती है। प्रदूषण मनुष्य निर्मित अधिक है प्रकृति, पारिस्थितिकी और मानव पर इसका बुरा असर पड़ रहा है। समकालीन कविता इन तथ्यों की ओर भी पाठकों का ध्यान खींचती है।

❖❖❖

चौथा अध्याय

समकालीन कविता में पारिस्थितिक शोषण के विभिन्न आयाम

चौथा अध्याय
समकालीन कविता में पारिस्थितिक शोषण के विभिन्न आयाम

समकालीन कविता में अभिव्यक्त पारिस्थितिक शोषण के विभिन्न आयामों को मौजूदा परिस्थितियों के साथ जोडकर देखने परखने की आवश्यकता है। समकालीन परिस्थितियाँ मनुष्यता के खिलाफ़ है इसलिए महज है प्रकृति के खिलाफ़ भी। भूमंडलीकरण तथा उसके तहत उपजी पूँजीवादी-बाज़ारवादी उपभोगवादी संस्कृति की मिलीभगत ने प्रकृति तथा पर्यावरण के शोषण में कोई कदर नहीं छोडा है। समकालीन कविता इन मुद्दों पर विचार-विमर्श करते हुए प्रकृति और पारिस्थितिकी के ध्वंस का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करती है। आज की कविता इन तमाम सीमाओं के बावजूद हर घटना को तुरंत दर्ज करना चाहती है। पारिस्थितिक समस्याओं तथा पर्यावरण चेतना से युक्त कविताओं का सृजन इसका नतीजा है। खगेन्द्र ठाकुर ने लिखा है "आज की हिन्दी कविता का परिदृश्य विशाल है, शायद पहले की कविताओं से कुछ ज़्यादा ही। उसमें जो वैश्विक संवेदना अभिव्यक्त हुई है और हो रही है, वह एक तरफ़ समस्त मानवता की विरासत से जुडी हुई है तो दूसरी तरफ़ साम्राज्यवादी वित्तीय पूँजी से त्रस्त भारतीय जनता की सर्जनात्मक चेतना की बेचैनी को व्यक्त करने की तडप से। आज की हिन्दी कविता, जो कुछ मानवीय है उसे निगल जाने की वैश्वीकरण की सुरसा की हवस से बचाने का रचनात्मक और

साँस्कृतिक अभियान का अंग है।"[1] प्रकृति शोषण की प्रक्रिया को बढ़ावा देते हुए वैज्ञानिक-तकनीकी - प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल पूँजीवादी साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा हो रहा है। एक ओर तो ये देश अपने वर्चस्व को बरकरार रखने के लिए तीसरी दुनिया के देशों के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा कर रहे हैं तो दूसरी ओर वैश्विक संस्कृति के फैलाव से इन देशों की संस्कृति अपसंस्कृति में तब्दील हो रही है।

भूमंडलीकरण के दौर में प्राकृतिक चीज़ों का केवल उपयोग ही नहीं बल्कि उपभोग हो रहा है। साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा मुक्त व्यापार प्रणाली की शुरुआत इसलिए की गई थी। उन्होंने मुद्रा तथा व्यापार की नीतियों के सभी नियंत्रणों को हटा दिया। परिणामतः अन्य चीज़ों की तरह प्राकृतिक चीज़ों के उत्पादन और विपणन भी बडे पैमाने पर होने लगे। अर्थात् पूँजीवाद, भूमण्डलीकरण और उपभोक्तावाद के सम्मिलित रूप प्रकृति का शोषण लगातार कर रहे हैं। पूरी दुनिया इस भूमंडलीकृत व्यवस्था में तडप रही है। ये परिस्थितियाँ प्रकृति और मानव के बीच के सहज संबंधों में दरारें पैदा करती हैं।

समकालीन कविता मौजूदा समस्याओं को प्रस्तुत करने में सक्षम दिखती है। काफी हद तक इन समस्याओं के विरोध में प्रतिक्रिया जताने में सफल भी हुई है। इसका श्रेय समकालीन कवि को प्राप्त है। क्योंकि कवि जो है अपने समय और समाज के साथ सार्थक संबंध स्थापित करते हुए कवि कर्म के दायित्व का परिचय कराते हैं। समकालीन कवि इसी दायित्व को निभाते हुए प्रकृति के साथ आज के मानव का कैसा और क्या संबंध रहा है उसका नतीजा क्या है इन सवालों का जवाब

---

1. सं. मानिक बच्छावत - 'समकालीन सृजन' कविता इस समय - विशेषांक - पृ. 22

ढूँढते हैं। ऐसा करते हुए वे प्रकृति शोषण के तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुन्ध दोहन के अनेकानेक आयामों को प्रश्नांकित करते हैं।

इस अध्याय में इन सभी मुद्दों पर विचार-विमर्श करने का प्रयास मैं ने किया है। समकालीन कविता यह साबित करती है कि कविता अपने समय और समाज की समस्याओं से सक्रिय ढंग से प्रतिक्रिया दर्ज करती है। काफी हद तक समस्याओं को प्रस्तुत करने में सक्षम भी दिखती है। इसका श्रेय समकालीन कवि को प्राप्त है। क्योंकि वे अपने समय और समाज के साथ सार्थक संबंध जोडते हुए कवि-कर्म के दायित्व का परिचय कराते हैं। यह प्रकृति किस प्रकार की है और उस प्रकृति के साथ मानव का क्या संबंध है और उनका कारण क्या रहा है? इन सभी सवालों का जवाब ढूँढते हुए प्रकृति शोषण के तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुन्ध दोहन के अनेकानेक आयामों को समकालीन कविता प्रश्नांकित करती है।

4.1 भूमंडलीकरण, उपभोगवाद तथा बाज़ारवाद की मिलीभगत

भूमंडलीकरण ने हमारे निजी तथा सामूहिक जीवन के किसी भी पक्ष को अछूता नहीं छोडा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों के लिए खतरनाक साबित हो रही है। क्योंकि भूमंडलीकरण के तहत इन देशों के प्राकृतिक संपदा का अंधाधुन्ध दोहन हो रहा है। भूमंडलीकरण, साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा औपनिवेशिक वर्चस्व बनाये रखने के लिए तीसरी दुनिया के देशों पर बिछा गया जाल है। इस जाल में भारत जैसे सभी विकासशील देश फंस चुके हैं। विख्यात लेखक न्युगी वा थ्योंगो ने इसकी ओर संकेत देकर लिखा है "यह बात निर्विवाद रूप

से सत्य है कि चाहे जिस रूप में भी साम्राज्यवाद हो, उसका उद्देश्य अपने खुद के देशों में तथा अन्य देशों और क्षेत्रों में उत्पादन, संपत्ति के वितरण और विनिमय की समूची प्रणाली पर पूरी तरह अपना अस्तित्व स्थापित करना, उसका प्रबंधन करना और उसे अपने नियंत्रण में लेना होता है।"[1]

1980-1990 के दशक में एक नयी किस्म की, धनी देशों के वर्चस्व को बरकरार और मज़बूत रखनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की शुरुआत हुई। इस नयी व्यवस्था के मुख्य बिन्दु थे मुक्त नियंत्रणहीन व्यापार, मुद्रा तथा पूँजी बाज़ारों पर से सब नियन्त्रणों की समाप्ति। इस ज़माने का सबसे बडा शाप आर्थिक विकास पर आधारित भूमंडलीकरण है। कमल नयन काबरा ने इस पर अपना मंतव्य प्रकट किया है - "इस विकासकरण की वास्तविक परिणति आधे-अधूरे, आंशिक, असमानता-वर्द्धक, साँस्कृतिक सर्जनात्मकता तथा विविधता निवारक, सामरिक लोगों की आजीविका तथा खाद्य असुरक्षा और लोकतंत्र के बढ़ते खोखलेपन आदि के रूप में हुई।"[2] अर्थात् भूमंडलीकरण का प्रभाव मानव जीवन के सभी पक्षों पर पडा है।

भूमंडलीकरण के सवाल पर चल रहे विमर्श का एक मुख्य मुद्दा है भूमंडलीकरण और विकास का आपसी संबंध। इस विकास प्रक्रिया के तहत जन्मी मुख्य पारिस्थितिक समस्या है स्थानीय प्राकृतिक परिवेश तथा पारिस्थितिकी का ध्वंस। इस तरह के विकास के विरोध में समकालीन कवि की काव्यात्मक प्रतिक्रिया

---

1. न्युगी व थ्योंगा - औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति - पृ. 57
2. कमल नयन काबरा - भूमंडलीकरण विचार, नीतियाँ और विकल्प - पृ. 64

उसकी पारिस्थितिक चेतना का निदर्शन कराती है। पूरे भारत के प्रतिबद्ध साहित्यकारों ने इस भूमंडलीकृत विकासकरण के विरोध में आवाज़ उठायी है। अपना विरोध प्रकट करते हुए यू.आर. अनन्तमूर्ति ने लिखा है - "मैं भूमंडलीकरण का कट्टर विरोधी हूँ क्योंकि वह समानता के आधार पर नहीं खडा है। स्थानीय पवित्रता को बचाये रखने के लिए भूमंडलीकरण प्रक्रिया का विरोध करना आत्यंत आवश्यक है।"[1] हिन्दी के जाने माने लेखक मानिक बच्छावत ने लिखा है - "पश्चिम से नव औपनिवेशिक प्रभाव आ रहे हैं। वे विकास, गतिशीलता और उदारीकरण की पहचान बने हुए हैं। वे आभास देते हैं विश्व-व्यापकता का और साँस्कृतिक होने का और हर जगह अनुकरणीय होने का। वे बहुत-सी देशज और प्राकृतिक चीज़ों को नष्ट कर देना चाहते हैं। कविता भी उसमें शामिल है।"[2] इन तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद समकालीन कविता अपने युगीन दायित्व को निभाते हुए, मानवीय संवेदना, संबंधों और प्रकृति के पक्ष में अद्भुत तेज के साथ खडी है। अर्थात् मनुष्यता के, प्रकृति के बचाव के लिए कविता अब भी जीवंत है। समकालीन कविता की यह लडाई असल में कवि की जद्दोजहद का परिणाम है। इस जोखिम प्रयास में हिन्दी के सभी प्रतिबद्ध कवि-कुमार अंबुज, ऋतुराज, हेमन्त कुकरेती, ज्ञानेन्द्रपति, अनिलकुमार गंगल, गगन गिल, आलोक धन्वा, स्वप्निल श्रीवास्तव, मंगलेश डबराल, प्रेमशंकर शुक्ल, एकांत श्रीवास्तव आदि ने मिलकर भूमंडलीकरण तथा उससे उपज बाजारवाद और उपभोक्तावाद के खिलाफ़ अपना बुलन्द आवाज़ व्यक्त किये हैं। कुमार अंबुज

1. संकलन एवं संपादन - नन्दकुमार हेगडे, प्रो. नूरजहाँ बेगम, किसप्रकार की है यह भारतीयता, परिशिष्ट - पृ. 135
2. सं. मानिक बच्छावत - समकालीन सृजन, कविता इस समय - पृ. 10-11

की 'आयुर्वेद', तुषार धवल की 'शहर में', ऋतुराज की 'हवा पानी', 'फूल और तितलियाँ', आलोक धन्वा की 'दुनिया रोज़ बनती है', सुदीप बैनर्जी की 'भूमंडलीकरण इस भोपाल में', हेमन्त कुकरेती की 'नदी की ढूँढ', चन्द्रकान्त देवताले की 'इस शाही हाडतोडती दिनचर्या में', स्वप्निल श्रीवास्तव की 'सब कुछ है बाज़ार', इब्बार रब्बी की 'सौ वर्ष पहले', रघुवीर सहाय की 'मनुष्य-मछली-युद्ध', अनिलकुमार गंगल की 'भेडिया हंस रहा है', ज्ञानेन्द्रपति की 'अधरात-घास-गन्ध', 'आज़ादी-उर्फ - गुलामी', 'दिनान्त पर आलु', 'टेडी बियर में बचे हुए शब्द', 'प्लास्टिक के सुग्गे', ए. अरविन्दाक्षन की 'नदी', 'अफसोस', 'पेरियार का पानी', प्रेमशंकर शुक्ल की 'बाज़ार, मंगलेश डबराल की 'फल', राजेश जोशी की 'यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है', एकांत श्रीवास्तव की 'ठण्डे पानी की मशीन', 'कन्हार', 'हस्ताक्षर' जैसी कविताएँ समकालीन कवि के इस प्रयास का फल हैं। इन कविताओं में प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध दोहन का तथा पर्यावरण ध्वंस के जीवंत दृश्यों का अनावरण हुआ है। ये दृश्य पाठकों के मन में पारिस्थितिकीय चेतना जगाने में पर्याप्त सिद्ध होते हैं। समकालीन कविता की सार्थकता और सफलता भी यही है। इसके साथ समकालीन कविता उन तथ्यों का भी उत्घाटन करती है कि वर्तमान माहौल में मानवीय मूल्य खारिज किया जा रहा है। उनकी पुनःप्रतिष्ठा प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के बचाव के लिए अनिवार्य है। समकालीन कवि प्रकृति और मनुष्य के बीच के टूटते-बिखरते संबंधों का तथा प्रकृति शोषण का चित्रण खुलकर इसलिए करते हैं ताकि मनुष्य की बर्बरता का पर्दाफाश हो जायें।

भूमंडलीकरण के चलते, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों की बिक्री आम बात बन गयी है। हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर ये लोग कब्जा कर रहे हैं। प्राकृतिक स्रोतों में 'पानी' का ही सबसे अधिक शोषण हो रहा है। कोकाकोला, मैकडोनॉल्ड जैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारे देश के पानी की लुटाई के तेज़ रफ्तार में है। केरल के प्लाच्चिमडा में, तमिलनाडू के शिवगंगा में ये कंपनियाँ पानी की जितनी लूट कर रही हैं मानो वहाँ के लोग पीने के लिए तडप रहे हैं। यह स्थानीय क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के कुछ उदाहरण हैं। विडम्बना की बात यह है कि सत्ता की सहमति से ही जनता तथा प्रकृति के खिलाफ़ यह अन्याय हो रहा है। यहाँ तक कि हमारे देश की नदियों की बिक्री के लिए भी ये लोग तैयार हो गये हैं। छत्तीसगढ़ में शिवनाथ नदी की तथा केरल में पेरियार की बिक्री का जो षड्यंत्र हुआ था, इसके ज्वलंत मिसाल हैं। ए. अरविन्दाक्षन के 'अफसोस', 'नदी', 'पेरियार का पानी' जैसी कविताएँ इस सच्चाई का पर्दाफाश करती हैं। सुन्दरलाल बहुगुणा के अनुसार नदी अपने आप में एक पूरा पारिस्थितिक तंत्र है जिसका लगाव केवल मनुष्य से नहीं बल्कि उनमें जीवित अनेक जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों से भी हैं। इसलिए नदी की बिक्री से एक पूरा पारिस्थितिक तंत्र ही बिगाड़ा जाता है। नदी एक संस्कृति है, जीवन धारा है जिसका संबंध मानव के अतीत, वर्तमान और भविष्य से है। यही नदी का इतिहास है। लेकिन समकालीन संदर्भ में नदी के इतिहास का कायापलट हुआ है। अब हम नदी की बिक्री का इतिहास रच रहे हैं। समकालीन कविता में इसका संकेत यों मिलता है :

"नदियाँ
हर युग में इतिहास रचती थीं
अब भी रचती हैं
नदियों की बिक्री के इस जमाने में
इतिहास को तनिक बदल दिया गया है।"[1]

हाल ही में छत्तीसगढ़ के शिवनाथ नदी से जुड़ी हुई मसला पूरे भारत में कोहल्ला मचाया था। केरल में भी पेरियार नदी की बिक्री का षड्यंत्र हुआ था। लेकिन यहाँ के प्रबुद्ध जनता, पारिस्थितिक कार्यकर्ताओं तथा बुद्धिजीवियों ने मिलकर इसका सक्रिय विरोध किया। सत्ता को, समझौते में हार का सामना करना पडा। ए. अरविन्दाक्षन ने इस साज़िश के खिलाफ़ अपना प्रतिरोध व्यक्त किया है :

"अजीब खबरें
सब कहीं।
कल की खबर एकदम अज़ीब
पेरियार का पानी बिक रहा है।
पेरियार हमें सहेजकर बहती है
पेरियार हमारे लिए नदी नहीं
मेरा हृदय काँप उठता है
माँ का पानी भी बिका सकता है?"[2]

नदी को माँ की हैसियत देना या उसे माँ समझना भारतीय संस्कृति की विशेषता है। आदमी यहाँ ऐसी माताओं की बिक्री कर रहा है।

1. ए. अरविन्दाक्षन - आसपास - पृ. 15
2. वही - पृ. 23

पानी के ऊपर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कब्ज़े की ओर रघुवीर सहाय ने इशारा किया है। पानी के यथार्थ मालिक इनके गुलाम हो गये हैं। तब सवाल उठता है कि हमारी मिट्टी, पानी, बयार का असली हकदार कौन है?

> "जो पानी के मालिक हैं
> भारत पर उनका कब्जा है
> जहाँ न दें पानी वाँ सूखा है
> जहाँ दे वहाँ सब्ज़ा है।"[1]

भूमंड़लीकरण के बढ़ते प्रभाव ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ को और तेज़ कर दिया। परिणामतः स्वदेशी उत्पादन एवं स्वदेशी पूँजी का पलायन हो रहे हैं। पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा विश्व भर के प्राकृतिक संसाधनों की लुटाई हो रही है। विख्यात लेखक न्गुगी वा थ्योंगो ने लिखा है "इन साम्राज्यवादी पूँजीवादी देश विश्व के बहुत अधिक संसाधनों का उपभोग करते हैं। यह समूह केवल अपने पास के पर्यावरण पर ही निर्भर नहीं रह गया है। यह तो दूर-दूर तक दुनिया भर के प्राकृतिक संसाधनों की खुली लूट करने लगा है।"[2] जैसे कि पहले सूचित किया है कि मैकडोन्लड, कोकाकोला की कंपनियाँ तीसरी दुनिया के देशों के जल संसाधन पर कब्ज़ा ज़माने की होड़ में है।

साम्राज्यवादी ताकतों ने हमारी जड़ी-बूटियों पर भी कब्जा कर लिया है। इस सच्चाई का उत्थान कुमार अंबुज ने 'आयुर्वेद' कविता में किया है। शीर्षक से

---

1. रघुवीर सहाय - पानी पानी, नया ज्ञानोदय अंक 21 नवंबर 2004 - पृ. 102
2. न्गुगी वा थ्योंगा - औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति - पृ. 64

पता चलता है कि कविता हमारी परंपरागत चिकित्सा प्रणाली की ओर संकेत करती है। इस चिकित्सा प्रणाली में रोग निवारण के लिए जड़ी बूटियाँ जाती हैं। विदेशी कंपनियों ने इन जड़ी-बूटियों पर पेटेन्ट लगाया है। "विकसित देश अपने यहाँ जैविक सम्पदा को समाप्त कर दरिद्र देशों की जैविक सम्पदा को मानव जाति का सामूहिक स्रोत मान रहे हैं। किन्तु ये ही स्रोत वैज्ञानिक अनुसंधान के पश्चात् बहुराष्ट्रीय निगमों की बपौती बन जाते हैं और विकासशील देशों को अपने ही पौधों पर किये गये प्रयोगों पर शोध के बाद बनी दवाओं पर शुल्क देना पड़ता है। जैसेकि भारत में औषधियों के रूप में सदियों से काम आ रही हल्दी तुलसी तथा नीम पर अमरीकी कम्पनियाँ अपना पेटेन्ट करा रही है।"[1] ये जड़ी बूटियाँ अब हमारे घर परिवेश से गायब सी हो गयी हैं -

"हर्ट, बहेडा, आँवला, सौंठ, तुलसी, पीपल
पर्यावरण ही आयुर्वेद
जो डूब रहा है सभ्यता के उत्तर औद्योगिक समुद्र में
विस्मृति की सीमा पर खडा है अनुपान भेद का ज्ञान
वंशलोचन, पारद, शिलजीत, भृंग, महासुदर्शन
तेजोमय रूप सभी
डूबते हुए अधैर्य के पोखर में गिरते हुए पूँजी के गर्त में
अब कोई नहीं पहचानता जडी-बूटियाँ
जो कहते हैं कि हम पहचानते हैं - वे उद्योग हैं
शहद बनाती हैं मधुमक्खियाँ
और कंपनियों के डंक!"[1]

---

1. विनयकुमार - पर्यावरणीय समस्यायें और समाधान - पृ. 232
2. कुमार अंबुज - अनन्तिम - पृ. 30

हमारे लौकिक अधिकारों में पीने का पानी महत्वपूर्ण है। लेकिन भारत के हर इलाके में पेयजल की समस्या गंभीर है। केरल के प्लाच्चिमडा, तमिलनाडू की शिवगंगा, वाराणसी की मेहदीगंज में पीने के पानी के लिए लोगों ने आन्दोलन चलाया था। पानी और हवा पर किसी और का कब्जा मानवता के प्रति अपराध है। असल में बहुराष्ट्रीय कंपनियों से हमारे भूगर्भ के पानी का सौदा करनेवाले, जनता के अधिकारों पर हमला कर रहे हैं। राजस्थान में खेती के लिए पानी की माँग करनेवाले किसानों को पुलिस ने गोली से उड़ा दिया था। यहाँ इस समाज में आदमी पानी माँगने के जुर्म में मारा जाता है।

ऋतुराज ने लिखा है "जिनकी हवा होती है। वे पानी पर भी अपना अधिकार कर लेते हैं। नजाने कहाँ से छिपकर अचानक उनके पास।"[1] समान अभिव्यक्ति आलोक धन्वा की 'नदियाँ' कविता में भी हुई है। भारत की श्रेष्ठ नदियाँ महानन्दा, रावी, झेलम, गंगा गोदावरी, नर्मदा के शोषण का ब्योरा कविता में मिलता है :

"इछामती और मेघना
महानन्दा
रावी और झेलम
गंगा गोदावरी
नर्मदा और घाघरा
नाम लेते हुए भी तकलीफ़ होती है
जितनी वे रास्ते में आ जाती हैं
और उस समय भी दिमाग

1. ऋतुराज - आशा नाम नदी - पृ. 19

कितना कम पास जा पाता है
दिमाग तो भर रहता है
लुटेरों के बाज़ार के ज़ोर से।"[1]

इब्बार रब्बी ने 'सौ वर्ष पहले' के माध्यम से समकालीन कविता की दीर्घदर्शिता का परिचय कराया है। कविता में पेड़-पौधों तथा हरियाली से भरपूर प्रकृति का वर्णन है जो प्रायः भविष्य में बच्चों के लिए अनजान बनेगा। भूमंडलीकरण तथा उपभोगवाद के शिकंजे में पड़े समाज के आगे की नियति की ओर कवि इशारा करते हैं -

"पिता, क्या है पेड?
क्यों हैं फूल?
क्या है शाखा?
बैंक की शाखा पर
कैसे पड़ता था झूला?
बेटी बेटी पेड़
वनस्पति का स्तंभ
हरी-हरी लंबाई
वनस्पति क्या पिता?
वनस्पति हरी-हरी हरीतिमा
उस पर शाखाएँ पत्तियाँ
और फूल जैसे हम
और हमारे हाथ और पाँव

1. आलोक धन्वा - दुनिया रोज़ बनती है - पृ. 16

बहुत-बहुत सारे हाथ और पाँव।
पर पिता, हम तो हैं
हाड - मांस के
क्या है हरापन?
क्या है हवा?
जंगल क्या था?"[1]

उपभोगवाद, पूँजीवादी-साम्राज्यवादी सांस्कृतिक अभियान का अभिन्न अंग है। असल में यह भौतिक सुखों के पीछे की एक अंधी दौड़ है। इसने समाज की मूल्यहीनता तथा विचारधारा के अन्त की घोषणा की है। यह साम्राज्यवादी - पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यन्त कारगर अस्त्र है। भूमंड़लीकरण और उपभोगवाद के अंतःसंबन्ध को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामकली शराफ ने लिखा है "आज के भूमंड़लीकरण के दौर में अर्थ व्यवस्था के समान स्थितियों की घोषणा के तहत भारतीय अर्थ-व्यवस्था को विश्व-पूँजीवाद का एक हिस्सा बना देने का मुखर प्रयत्न जारी है, आज की कविता की कुछ विशिष्टताओं का सीधा संबंध उपभोक्तवाद से उत्पन्न होनेवाले संकट से है। इसमें जहाँ एक ओर आदिम काल से लेकर आज तक प्रकृति के प्रति मनुष्य का इन्द्रियजन्य उदात्त सौंदर्य-बोध संवेदनाओं और सहज मानवीय रिश्तों और सामाजिक आस्थाओं के लिए संघर्ष का भाव है, वहाँ दूसरी ओर आज की स्थितियों की विषमता से पलायन कर जडों की ओर लौटने की पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति है।"[2] जैसे कि तीसरे अध्याय में सूचित किया था कि समकालीन कविता में

1. इब्बार रब्बी - वर्षा में भीगकर - पृ. 66
2. डॉ. रामकली सराफ - समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ - पृ. 316-317

प्रकृति की ओर लौटने की प्रवृत्ति की भरमार है। समकालीन कवि के प्रकृति के प्रति इस रुख में भी भूमंड़लीकरण और उपभोगवाद का प्रभाव देख सकते हैं।

उपभोगवादी संस्कृति ने बाज़ारवाद को विस्तृत बनाया। इसके कारण वस्तुओं के प्रति हमारे मन में लालसा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। नयी चीज़ों के उपभोग ने नई जीवन-शैली के साथ-साथ नई चेतना को भी जन्म दिया। इस आर्थिक-व्यवस्था में मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। प्रकृति और पर्यावरण के प्रति चिंता भी न के बराबर है। मनुष्य अधिक स्वार्थी और उपभोगवादी बन गया है। प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है : "आज आत्यंतिक स्वार्थ ने मनुष्य के चारों ओर ऐसे निष्करुण और निर्लज्ज संसार की सृष्टि कर दी है जिसने प्रकृति के भौतिक अस्तित्व को विनाश के कगार पर पहूँचा दिया है।" इसलिए समकालीन कवि, अपनी बुनियादी ज़रूरतों की माँग करनेवाली जनता की ज़ुबान बनकर उनके अधिकारों के प्रति उन्हें सजग कराता है :

"हमको अक्षर नहीं दिया है
हमको पानी नहीं दिया
पानी नहीं दिया तो समझो
हमको बानी नहीं दिया है
अपना पानी
अपनी बनी हिन्दुस्तानी
बच्चा बच्चा माँग रहा है।"[1]

1. रघुवीर सहाय - पानी, पानी, नया ज्ञानोदय, अंक 21, नवंबर 2004 - पृ. 102

कवि मनुष्यता के, प्रकृति के पक्षधर हैं। इसलिए जनता के साथ खड़े होकर वे साम्राज्यवादी ताकतों का विरोध करते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो समकालीन कविता में प्रकृति की ओर लौटने की प्रवृत्ति उपभोगवाद से जन्मी संवेदनशून्य मानवीय मूल्यों के विरोध में हुआ है ऐसा मानना चाहिए।

उपभोगवादी समाज में वस्तुओं के उपयोगिता मूल्य नहीं बल्कि उपभोग का मूल्य तोला जाता है। वर्तमान समाज बड़ी आसानी से पूँजीवाद की कृत्रिम ज़रूरतों के मनोवैज्ञानिक जाल में फँस जाता है। बात यह है कि उपभोक्ता की अभिरुचियों, हितों और ज़रूरतों से उपभोग वस्तुओं का कोई संबंध नहीं है। क्योंकि उपभोक्ता की रुचि और हित बाज़ार ही तय करता है। बाज़ार के बढ़ते प्रभाव को रेखांकित करते हुए समकालीन कवि ने लिखा है कि "मनुष्य के अभ्युदय के साथ / जन्मा था बाज़ार / उस समय मनुष्य ने बनाया था, बाज़ार को / अपनी ज़रूरत की तरह / अब बाज़ार बनाता है / मनुष्य को बाज़ार की ज़रूरत की तरह / पहले था मनुष्य का वर्चस्व / अब वर्चस्व है बाज़ार का।"[1] ज़ाहिर है कि बाज़ार और मनुष्य के बीच का संबंध प्राचीन काल से रहा है। तब मनुष्य बाज़ार पर हावी था। लेकिन आज बाज़ार मनुष्य पर हावी है।

उपभोगवाद और बाज़ारवाद ने मिलकर प्राकृतिक चीज़ों के नैसर्गिक अस्तित्व को तोड़कर उन्हें नये रूप में तब्दील कर लिया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इस व्यापार तंत्र का पर्दाफाश राजेश जोशी ने कविता में यों किया है :

---

1. मरुधर मृदुल - बाज़ार, मधुमति, वर्ष 51, अंक 6-7, जन-जुलाई 2010 - पृ. 76

"मैं कहता हूँ बहुत हानिकारक है
व्यक्ति के लिए नहीं पूरे देश के लिए हानिकारक है
दिनोंदिन बढ़ते जाना अमेरिका का दबाव राष्ट्रवाद का नया उफान
वित्त पूँजी का प्रपंच बजरंगियों का उत्पात बहुराष्ट्रीय कंपनियों का
लगातार फैलता जाल।"[1]

प्रेमशंकर शुक्ल ने 'नये बाज़ार' में बाज़ार रूपी इस जाल में मानव मस्तिष्क का प्रदूषण किस तरह हो रहा है उस समस्या का उल्लेख किया है। इससे बचना उतना आसान काम नहीं है जितना हम सोचते हैं :

"नया बाज़ार है
बेच रहा है
आवश्यकता और चीज़ें साथ
धकियाता बढ़ रहा आगे
आँखों में झोंक रहा इम्पोंटेंड धूल
चकाचौंध है जिसमें चहुँ ओर
नया बाज़ार है
महीन चतुराई से कर रहा मिलावट
हमारे मस्तिष्क में।"[2]

भूमंड़लीकरण और उदारीकरण के तहत भारतीय आर्थिक नीति में भारी परिवर्तन लाया गया इस नयी आर्थिक नीति के अनुसार भारत को निजी क्षेत्रमय

---

1. राजेश जोशी - चाँद की वर्तनी - पृ. 91
2. प्रेमशंकर शुक्ल - कुछ आकाश - पृ. 45

बनाने का अभियान चलाना पड़ा। परिणामतः सार्वजनिक क्षेत्रों की पूँजी लुटा दी गयी और उपभोगवादी संस्कृति का विस्फोट हुआ। बाज़ारी ताकतों की पैरवी हुई। उपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा वैश्विक स्तर पर यही फैलाया जाता है कि 'कल्याणकारी आर्थिक दर्शन' के बगैर विकास संभव नहीं, तथा लोकतंत्र का विकास संभव नहीं। साथ ही यह भी फैलाया जा रहा है कि जीवन की गुणवत्ता के लिए यह अपरिहार्य है। पर अब तक के अनुभव और वर्तमान परिस्थितियों से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि कल्याणकारी अर्थ व्यवस्था जैसी कोई चीज़ नहीं है। बावजूद इसके अर्थ का वितरण असमान ढंग से हो रहा है। पूँजी चंद लोगों के हाथ में ही बटोरती है। गरीबी और निर्धनता बढ़ती जा रही है।

भूमंडलीकरण और उदारीकरण की इस तरह की नीति ने पर्यावरण का हरण कर दिया। जंगल काटते जा रहे हैं, भूमि बंजर बनाया जा रहा है। इन सभी के पीछे वे ही लोग हैं जिन्होंने साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का सूत्रपात किया था। इन्होंने ही नव उपनिवेशवाद को जन्म दिया है। इसका सबसे नवीनतम व विकसित शस्त्र है भूमंड़लीकरण। भारत समेत तीसरी दुनिया के देशों में भूमंड़लीकरण, उदारीकरण और बाज़ारवाद की दस वर्षीय बरसात के बावजूद उनकी दुनिया सुखाग्रस्त हो रही है। जिसका प्रभाव प्रकृति और पर्यावरण पर भी पड़ रहा है।

भूमंड़लीकरण से जुडी हुई इन तमाम बातों को पारिस्थितिकीय दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास समकालीन कविता द्वारा संपन्न हो रहा है। बाज़ारीकरण की अमानवीयता का ज़िक्र स्वप्निल श्रीवास्तव ने 'सब कुछ है बाज़ार' में किया है। माहौल कुछ ऐसा है कि यहाँ सब कुछ खरीदने की चीज़ में तब्दील हो गये हैं।

इसलिए तो उन्होंने लिखा है कि "यहाँ अनाज और सब्जी से लेकर / मानव अंग तक खरीद पर।"[1] वर्तमान समाज अमानवीय बनता जा रहा है।

'आज़ादी उर्फ गुलामी' में ज्ञानेन्द्रपति ने बाज़ारीकरण की खिल्ली उठायी है। आज़ादी के पच्चास वर्षकांड में लिखी गयी कविता बाज़ारीकरण के मायालोक में डूबे भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती है :

"आज़ादी के गोल्डन जुबली साल में
आज़ादी का मतलब है
बाज़ार से अपनी पसन्द की चीज चुनने की आजादी
और आपकी पसन्द
वे तय करते हैं
जिनके पास उपकरणों का कायाबल
विज्ञापनों का मायाबल।"[2]

कविता से स्पष्ट होता है कि हमारी आज़ादी की संकल्पना चीज़ों के गुलाम होने की आज़ादी में परिवर्तित हो गयी है।

बाज़ारीकरण को बढ़ावा देनेवाले बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हमारे पेड़-पौधे, मिट्टी, पानी, बयार सबके सब अपने कब्ज़े में कर लिया है। मूल्यों और अवमूल्यों के बीच के द्वन्द के सांप्रत में ऑवले, नीम, आम, गुलर, पीपल जैसी प्रजातियों का शोषण तथा उपभोग व्यापक स्तर पर इनके विनाश का कारण बन रहे हैं। हमारे देश

1. स्वप्निल श्रीवास्तव - मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए - पृ. 34
2. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 123

की समृद्धि तथा मिट्टी की उर्वरता इन्हीं पेड़-पौधों में परिलक्षित हैं जो धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही हैं। ज्ञानेन्द्रपति की 'दिनान्त पर आलू' कविता इस समस्या का उद्घाटन यों करती है :

"आँवले और नीम
आम और अर्जुन तो क्या
गूलर और पीपल और बरगद तक
टेह रहे हैं घुटने
इन आक्रान्ताओं के आगे
कट रहे हट रहे
चिरायु पेड गतायु हो रहे
मूल्यों का अमूल्यों का मोल-भाव हो रहा
लोकतन्त्र-लोभतन्त्र
यह उपजाऊ देश बहुराष्ट्रीय कंपनियों का चरागाह बन रहा
डिब्बाबन्द खाद्य-निर्माता कम्पनियाँ
बढे हुए किसानों को पिछडे हुए अनाज उगाने देंगी कब तक?
अनन्य अन्त।"[1]

बाज़ारीकरण की दुनिया में जीव-जन्तु चीज़ों में तब्दील हो रहे हैं। सचमुच यह इनके, हमारे जीवन से दूर होने की ओर एवं इनके साथ मनुष्य के आत्मीय संबन्ध के खोने की ओर संकेत है। खिलौने के रूप में इनके साथ संबन्ध स्थापित करना दरअसल उपभोगवादी संस्कृति के प्रभाव का विपाक है। 'टेडी बियर में बचे हुए भालू' में ज्ञानेन्द्रपति ने इस सच्चाई का उद्घाटन किया है :

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 135

"बच्चियाँ जब
अपने टेडी बियर को छाती से चिपकाए
दुलार रही होंगी
छीज रहे भारतीय जंगलों में
और खोजी दलों और अनुसंधान-स्टेशनों के
 कचरालय बने जा रहे ध्रुवीय प्रदेशों में
बेमौत मारे जा रहे होंगे भालू
काले भालू और भूरे भालू।"[1]

'नदी और साबुन' में कवि ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों की पूँजी संजोने की चाल का पर्दाफाश किया है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने हमारे देश की नदी के नाम को भी बिकाऊ बना दिया है। गंगा नदी को भारतीय पवित्र मानते हैं तथा उसके पानी में स्नान करने से मुक्ति मिलेगी ऐसा विश्वास करते हैं। गंगा साबुन बनाकर भारतीय जनता के उन विश्वासों का लाभ उठाया जा रहा है :

"वह एक साबुन है
साबुन की एक साबुत बट्टी
रैपर से खुलकर
प्रस्तुत पडी
जल डूबी घाट-सीढ़ी से ऊपर
सूखी घाट-सीढी पर
एक नीली साबुन बट्टी

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 151

वह एक बहुराष्ट्रीय कंपनी का
बहुप्रचारित साबुन है।"[1]

आगे कवि, 'गंगा साबुन' को पूँजीवाद की बिटिया कहते हैं जिसे असली गंगा ड़रती है :

"पहाड की बेटी वह एक
दुखियारी महतारी है गंगा
उसका जी काँपता है डर से
उसकी प्रतिद्वंदी हथेली-भर की वह जो साबुन की टिकिया है
इजारेदार पूँजीवाद की बिटिया है।"[2]

कविता ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विपणन तंत्र का पोल खोलकर रखा है। पॉलिथीन कविता में कवि पॉलिथिन को पूँजीवाद की त्वचा कहा गया है। पॉलिथीन पर्यावरण को प्रदूषित करता है। आज इसकी फैलाव महानगर से गाँव तक हो गया है। कवि के मत में पॉलिथीन हमारे समय की सभ्यता का पर्याय है :

"चिरजीवा मरजीवा पालिथिन!
हमारे समय की सभ्यता का पर्याय है
हमारे समय की सभ्यता का दूसरा नाम है - पालिथिन
इसने नियुक्त किया है कितने ही लोगों को
अपनी बेच-खरीद में
....

1. ज्ञानेन्द्रपति - गंगातट - पृ. 20
2. वही - पृ. 22

पालिथिन - पूँजीवाद की त्वचा है
यहाँ से वहाँ तक
गाँव से महानगर तक।"[1]

उपभोगवादी- बाज़ारवादी संस्कृति का सबसे बड़ा प्रमाण है पानी का बेचना और खरीदना। पानी जैसे सुलभ प्राकृतिक संसाधन का बोतल में बंद करके बेचना असल में हमारी संस्कृति पर वार करने के समान है। 'ठण्डे पानी की मशीन' के माध्यम से एकांत श्रीवास्तव इसी तथ्य का उद्‌घाटन करना चाहते हैं :

"दिल्ली के एक चौराहे पर
मैं उसे देखकर डर गया
कि जो आकाश से बरसता है बेमोल
जो नदियों में बहता है खुले आम
तो अब यह पानी भी बिकाऊ हो गया
बाज़ार में।"[2]

ठण्डे पानी जो स्वतः नदी, झरने, तालाबों से प्राप्त था आजकल वह मशीनों (कूलर) से मिल रहा है। कविता हमारे जीवन में हर कहीं व्याप्त यांत्रिक सभ्यता की ओर इशारा करती है। वैसे तो इस यंत्र सभ्यता के प्रति सावधान बरतने की बात बरसों पहले गाँधीजी ने हिन्द स्वराज में उठायी थी।

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - गंगातट - पृ. 96
2. एकांत श्रीवास्तव - बीज से फूल तक - पृ. 44

संक्षेप में देखा जाए तो आज की पूँजीवादी, उपभोगवादी, बाज़ारवादी संस्कृति में प्रकृति का बेहिसाब शोषण हो रहा है। इस देश की आम जनता इन साम्राज्यवादी ताकतों के शिकंजे में पिसती जा रही है। समकालीन कवि और कविता प्रकृति और पारिस्थितिकी के खिलाफ़ इनके साँठ-गाँठ की पहचान दिलाने की कोशिश में हैं। इस प्रयास में वे, इन ताकतों के मुखौटे को चीरकर फेंक देते हैं और उनकी असलिया को पाठकों के सम्मुख रखते हैं। एकान्त श्रीवास्तव ने सही कहा है : एक 'हस्ताक्षर' करने से हमारी धरती नीली हो जाती है चाँद बुझ जाता है नदियाँ सूख जाती हैं और हर-भरे खेत अदृश्य हो जाते हैं।

गौर करने की बात यह है कि भूमंड़लीकरण के प्रभाव और मनुष्य की उपयोगितावादी नज़रिये ने मनुष्य से प्रकृति के प्रति उनकी कोमल तथा आत्मीय भावनाओं को छीन लिया है। प्रकृति के प्रति मनुष्य के दानवीय रुख का कारण भी शायद यही है।

4.2 विकास परियोजनाएँ और प्रकृति शोषण

भूमंड़लीकरण से जुड़े हुए विमर्श का एक मुख्य मुद्‌दा भूमंड़लीकरण और विकास का आपसी संबंध और उससे जन्मी परिस्थितिक समस्यायें हैं। विकास शब्द को पूँजीवाद ने हड़प लिया है और यह शब्द पूँजीवादी विकास की विचारधारात्मक अभिव्यक्ति बन गया है। इसलिए विकास परियोजनाओं पर विचार विमर्श करते वक्त विश्वव्यापी पूँजीवाद और भूमंडलीकरण के तहत इसे देखने-परखने की आवश्यकता है। एक तरफ औद्योगिक कारखाने, बाँध, फ्लैट, बडी-बडी इमारतें

बड़ी-बड़ी गाडियां हमारे सभ्यता का निशान बन रहे हैं तो दूसरी तरफ़ ये हमारी प्रकृति तथा पारिस्थितिकी में गड़बड़ी पैदा कर रहे हैं। जनसंख्या की भीषण वृद्धि के साथ-साथ मकान खेती, इँधन आदि के लिए जंगलों का सफाया हो रहा है। नई-नई मशीनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है जिससे प्रकृति और पर्यावरण अप्राकृतिक होता जा रहा है।

विकास की मूल अवधारणाएँ बदल गयी हैं इसलिए विकास के मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। आज विकास की अवधारणाएँ प्रकृति और पारिस्थितिकी के साथ समञ्जस्य स्थापित करने के बजाय उसके विरोध में उनके विनाश का कारण बन गयी हैं। विकास की अवधारणा अब प्रकृति की आक्रामक लूट में परिणित हो गयी है। विकास का मानवीय संबन्ध दिन-ब-दिन बदलता जा रहा है।

विकास जनहित तथा पर्यावरण को ध्यान में रखकर होना चाहिए। भारत एक विकासशील देश है। बढ़ती आबादी की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु तथा गरीबी को मिटाने के लिए विकास के पथ पर हमें आगे बढ़ना ही है। इसलिए विकास प्रक्रिया में हमारी निर्धनता बेरोज़गारी और पर्यावरण को ध्यान में रखना अनिवार्य है। लेकिन भारत अनियंत्रित विकास का मार्ग अपनाकर प्रकृति का अंधाधुन्ध दोहन और पर्यावरण का प्रदूषण कर रहा है। आजकल के सभी विकास कार्यक्रम लोभ एवं लाभ पर मात्र टिके हुए हैं। ये पारिस्थितिकी तथा मनुष्य के लिए खतरनाक साबित हो रहे हैं। कोई भी विकास योजना बनाते समय उस स्थान पर जहाँ वह लागू होती है वहाँ की स्थिति, बनावट तथा पारिस्थितिकी का गहन अध्ययन करना चाहिए। इसके विपरीत बिना सोचे-समझे, करने से आज हम

प्राकृतिक आपदाएँ तथा प्रदूषण जैसी परिस्थितिक आफ़तों का सामना कर रहे हैं। समकालीन कविता विकास जन्मी इन परिस्थितिक समस्याओं को गंभीरता के साथ देखती करती है। नक्ल शुक्ल की 'जंगल से उडता हवाई जहाज़', नागार्जुन की 'दरख्तों की सघन बगीची', दिविक रमेश की 'जंगल और पेड', निलय उपाध्याय की 'भूमिगत आग', मदन कश्यप की 'आदमी लीलती हैं खानें'। ऋतुराज की 'तृष्णतरंगकुला', एकान्त श्रवास्तव की 'नक्शे में ढूँढो' वह गाँव, बलदेव वंशी की, 'कच्ची मिट्टी की दीवारें' जैसी कविताओं का अध्ययन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

4.2.1 यातायात

यातायात के नाम पर मनुष्य प्रकृति तथा पारिस्थितिकी में हस्तक्षेप कर रहा है। विकसित देशों के स्तर तक पहूँचने के लिए यातायात के क्षेत्र में जो विकास-कार्य हो रहे हैं उससे हमारी वन संपदा को काफी क्षति पहूँची है। यातायात की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए जंगलों की व्यापक सफाई हो रही हैं। ट्रक और गडियों के लिए सडकें बनाती जा रही हैं। विकास के पथ पर अग्रसर होते हुए भारतीय गाँव के इन परिवर्तनों का सूक्ष्मांकन नवल शुक्ल ने जंगल से उडता हवाई जहाज में बेहद खूबसूरती के साथ किया है :

"यह सडक मेरे पिता ने बनायी है
सडक पर चलते हैं ट्रक और गाडियाँ
उनके आने की आवाज़
हम बहुत पहले सुन लेते हैं
कतार में, सडक के नीचे चलते हैं।

यहाँ गाँव वालों न ही गाडे हैं
ये बिजली के खम्बे
....
फिर बिजली के पम्प मिले थे बैंक से।"[1]

विकास परियोजनाओं का सबसे अधिक भुक्तभोगी आदिवासी समूह हैं। 'देश हित' के लिए इन्हें सबकुछ त्यागना पड़ता है। उन्हें उनकी जड़ों से उखाड़कर फेंक रहे हैं। ऐसी घटनाओं में उनके साथ देनेवाले बहुत कम लोग होते हैं। लेकिन अब वे खुद बोलने लगे हैं। कम-से-कम उनमें यह परिबोधन तो आया है कि उनके साथ शोषण और अन्याय हो रहा है। जंगल उनके जीवन का आधार है। इसलिए जंगल की कटाई के विरोध में वे एकजुट होकर खडे होते हैं। समकालीन कविता इस सच्चाई से वाकिफ़ है। नागार्जुन की 'दरख्तों की सघन बगीची' कविता इस दृष्टि से बहुत प्रासंगिक लगती है :

"कारखाने के नाम पर
पिछले दस पन्द्रह साल के अन्दर
हमारे सारे जंगल हम से
छीन लिए हैं उन लोगों ने
सफेद पोशा बाबू लोगों ने
कहीं का न रहने दिया हमें
आज हम पूरी तरह उनके गुलाम हैं।"[2]

---

1. नवल शुक्ल - दसों दिशाओं में - पृ. 58
2. नागार्जुन - पुरानी जूतियों की कोरस - पृ. 41

कभी-कभार ऐसा भी होता है कि पूँजीवादी ताकतें अपने फायदेमंद के लिए उन्हीं के बीच के लोगों को खरीद लेती हैं। उनके बीच फूट डालती हैं और चंद लोगों को अपने वश में लाती हैं और खुद के लोगों के खिलाफ़ में उन्हें भडकाती हैं। इसप्रकार उनके संघर्षों को ये शक्तियाँ नाकामायाबी में परिणित करती हैं। नाइजीरीया के पारिस्थितिक कार्यकर्ता केनसारोविवा और उनके सहयोगियों के साथ भी यही हुआ था। और आज भी उनकी यह कूटनीति ज़ारी है।

विकास के दौरान यातायात तथा बिजली की सुविधाएँ जंगली इलाकों तक पहूँच गयी हैं। सुविधा भोगी जीवन बिताने की लालसा अपने प्राकृतिक पर्यावरण के अदल-बदल के लिए यहाँ के लोगों को उकसाती रहती है। इसकी पूर्ति के लिए बैंकों द्वारा से उन्हें आर्थिक सहायता भी दी जाती है। उनकी इस साजिश में आदिवासी समूह फँस जाता है।

आजकल हमारे चारों ओर कंक्रीट की इमारतें ही दिखाई देती हैं। पहले-पहल मात्र शहर में इसकी भरमार होती थी। अब इसकी तेज़ रफ्तार गाँव की ओर भी हो रही है। ईंट, पत्थर, मिट्टी से बनी मकान अब नहीं रहे। अब इस क्षेत्र में नये नये तकनीकों का इस्तेमाल हो रहा है। इसके फलस्वरूप बडी-बडी इमारतें, पाँच सितोर होटेल, शॉपिङ मॉल्स, औद्योगिक कारखाने, कार्यालय, फ्लैट आदि हमारे भौतिक विकास के मान-दण्ड बन गये हैं। दिविक रमेश की 'जंगल और पेड' कविता इस विषय पर कुछ इसप्रकार टिप्पणी करती है :

1. सं. मानिकबच्छावत - समकालीन सृजन, कविता इस समय - पृ. 242

"इमारत के ऊपर इमारत
खाई के नीचे खाई
दूर-दूर तक फैला कंक्रीट का जंगल।"[1]

आगे की पंक्तियों में कवि प्रकृति से एकमेक होती ज़िन्दगी एवं सिमेंट से मुक्त ज़िन्दगी पर उम्मीद रखते हैं -

"आएगा एक दिन ऐसा आएगा
जब हमें हमारी ज़मीन मिलेगी वापस
सीमेंट की टंकी में पानी पीती चिडिया से
कह पीपल की फूटती जड़ ने।"[1]

पेड़-पौधों से भरपूर स्वच्छ प्राकृतिक वातावरण का कंक्रीट जंगलों में परिणत होना भौतिक विकास की दृष्टि से उन्नति का परिचायक है। फिर भी इससे पारिस्थितिक समस्यायें पैदा हो रही हैं। विडंबना की बात यह है कि इन सभी बातों मानव अंजान नज़र आता है। उदाहरण के लिए आँगन में कंक्रीट तथा टाइल्स बिछानना उसके पारिस्थितिक अबोध के अलावा और कुछ नहीं है।

4.2.2 खुदाई की समस्या

खुदाई के विकास से जुड़ी हुई एक अन्य मुद्दा है। प्राकृतिक स्रोतों का अंधाधुन्ध दोहन प्रकृति, पर्यावरण तथा मनुष्य के लिए खतरनाक़ साबित हो रहा है। समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर मदन कश्यप ने खुदाई से जुड़ी हुई मानवीय

---

1. सं. मानिकबच्छावत - समकालीन सृजन, कविता इस समय - पृ. 242

त्रासदी और पारिस्थितिकीय संकट का चित्रण किया है। आज कितने भी खदान हैं सभी से खनिज पदार्थों को निकाले जाते हैं जिसके कारण कचरे का ढ़ेर लग रहा है जो मनुष्य, जीव तथा पेड-पौधों के लिए हानिकारक होता है। इस तरह इन खदानों से पर्यावरण बहुत प्रदूषित हो रहा है। झारखंड के सिंहभूम जिले के जादूगोडा में यूरेनियम की खानों के कारण धूल-कण दूर-दूर तक उड रहे हैं जिससे साँसों की बीमारी हो रही है। यूरेनियम का इतना अधिक प्रभाव है कि वहाँ के आदिवासी महिलाओं का गर्भपात हो रहा है, बच्चे अपंग पैदा हो रहे हैं इस क्षेत्र के सारे वृक्ष, घास कट चुके हैं। धुल कण नदियों, खेतों, झीलों में गाद के रूप में जमा होने के कारण बाढ़ें आ रही हैं। मिट्‌टी, वायु जल प्रदूषण भी बढ़े हैं।

मदन कश्यप ने 'आदमी लीलती हैं खानें' कविता में कोयला खदानों में बंद ज़िन्दगी जीने के लिए अभिशप्त कोयले खनिकों के त्रासद जीवन को दर्शाया है।

आदमी को लीलती हैं खानें
ऐसे ही नहीं रतन उंडेलती है यह रत्नगर्भा
कितनी-कितनी ज़िन्दगियाँ दफन हो जाती हैं
इनकी छाती में सेंघ लगाते-लगाते।"[1]

कविता से खानों में दफन हो जानेवाले आदमी की ज़िन्दगी का जिक्र तो मिलता है साथ ही अपने फायदे-मंद के लिए औज़ार के ज़रिए पृथ्वी पर प्रहार करनेवाले मनुष्य के बुरे व्यवहार पर भी संकेत मिलती है। इसकी समान अभिव्यक्ति अनवर सुहैल की 'कोयला खदान का अँधेरा' में भी हुई है। निलय उपाध्याय की

1. मदन कश्यप - लेकिन उदास है पृथ्वी - पृ. 87

'भूमिगत आग' का विषय भी कोयले खादान से जुडा हुआ है। कविता मनुष्य और प्राकृतिक संसाधन दोनों को शोषण करनेवाली विकास नीतियों पर प्रश्न चिह्न लगाती है :

"भीतर
बहुत भीतर लगी है आग
सुलग रहे हैं कोयले
वर्षों की बन्द खान
चानक पर हिल रही है 'डोली' की रस्सी
जैसे पुकार रही हो ब्लास्ट करने
कोयला काटने और उठाने वालों को
....
कोई है अभी धरती के भीतर
हिल रही है डोली की रस्सी
कोई ब्लास्ट कस रहा है कोयले के पहाड।"[1]

संक्षेप में कहें तो सुदाई से पर्यावरण तथा मनुष्य दोनों पर बुरा असर पड़ता है। खुदाई से प्रदूषण की समस्या उठ खडी होती है, जो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक साबित हो रही है। सिर्फ यही नहीं, गहरी सुदाई के कारण प्रतिवर्ष 600 कोड टन मिट्टी का क्षरण होती है।

4.2.3 बाँध परियोजनाएँ

देश की आज़ादी के बाद बढ़ती जनसंख्या तथा सामान्य जन की बढती आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, जिसमें सिंचाई के साधन एवं बिजली की आपूर्ति सबसे

1. निलय उपाध्याय - अकेले घर हुसैन का - पृ. 26

प्रमुख थी, बडे-बडे बाँध एवं जल विद्युत-परमाणु शक्ति केन्द्र की स्थापना भी बडी मात्रा में हुई। लेकिन सालों बाद इन विकास परियोजनाओं का नतीजा पर्यावरण प्रदूषण तथा पारिस्थितिक असंतुलन की समस्या के रूप में उभरकर आने लगा है। वनों का विनाश, कृषि क्षेत्र एवं जंगलों का पानी में डूब जाना, ज़मीन का धंसना, जन सामान्य का पलायन (विस्थापन), प्राकृतिक असंतुलन के तहत अचानक बाढ़ का आ जाना आदि उनमें प्रमुख हैं। इसलिए पर्यावरण एवं जनहानी को देखते हुए पर्यावरण वैज्ञानिक इन परियोजनाओं का ज़ोरदार ढ़ंग से विरोध कर रहे हैं।

बाँध परियोजनाओं का एक लंबा पुराना इतिहास रहा है। मेसापोट्टामिया में इसकी शुरुआत हुई थी। उस ज़माने में लकडी और मिट्टी से बाँध बनाते थे। मिश्र, चीन तथा मध्य अमरीका का सभ्यताओं में इसप्रकार के बाँधों का निर्माण होते थे। सन् 1950-1970 के बीच वैश्विक स्तर पर लगभग 1000 आधुनिक बाँधों के निर्माण का कार्य सफल हुए हैं, ऐसा माना जाता है। 1990 में आकर यह हर साल लगभग 2000 बाँधों की निर्मिति में परिणित हो गयी। करीब 12000 से अधिक बाँधों का निर्माण अब भी चालू है। दिलचस्प की बात है कि विकसित देश अब बड़े बाँधों के प्रति उतनी रुचि नहीं रखते। लेकिन अविकसित देश इसमें लगातार बने हुए हैं। विश्व-बैंक, अन्तर्देशीय मुद्राकोष जैसे अंतराष्ट्रीय वित्तीय संस्थान इन देशों को आर्थिक सहायता दे रहे हैं। यह उनकी साजिश है ताकि ये देश उनके कर्ज़दार बने रहें जिससे वे उन पर अपनी आर्थिक नीतियाँ थोप सकते हैं।

बाँध निर्माण के प्रारम्भिक दौर में समाज के सभी क्षेत्रों के विद्वानों द्वारा उसकी प्रशंसा होती थी। उस ज़माने में हर देश बड़े बांधों को अपनी शान शौकत का

प्रतीक मानते थे। बिजली का उत्पादन, सिंचाई, पेयजल जैसे कई उद्देश्यों की पूर्ति इनसे तो होती है। दूसरी ओर यह नदी के सहज बहाव में अवरोध पैदा करता है। पारिस्थितिक तंत्र को बिगाड देता है। इसका प्रभाव बाँध-क्षेत्र के लोगों पर भी पडता है।

विकास के पथ पर चलते हुए छोटे-बड़े बाँधों का निर्माण हमारे देश के पिछडे जनविभाग का हाशिएकरण कर रहा है। यह हाशिएकरण असल में चंद लोगों के भोगविलास के लिए होता है। इस विषय के संबन्ध में सुन्दरलाल बहुगुणा का विचार देखिए : "बडे बाँध जलाशयों से लाभ केवल संपन्न वर्गों को मिलता है और उसकी कीमत चुकानी पड़ती है सबसे गरीब लोगों को, जो बेघरबार हो जाते हैं। सबसे अधिक उपजाऊ घाटियाँ डूब जाती है और इन सबसे अधिक इतिहास, संस्कृति, बहुमूल्य परंपराएं और स्मारक समाप्त हो जाते हैं।"[1]

समकालीन कविता बाँध परियोजनाओं से जुड़ी हुई पारिस्थितिक समस्याओं का खुलकर चित्रण करती है। इस दृष्टि से ॠतुराज की 'सिर्फ बचाव में', एकांत श्रीवास्तव की नक्शे में ढूँढो गाँव', तुमने दे दी गोली, राज्यवर्द्धन की 'नदी आदमखोर हो गई है' जैसी कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

जनवरी 2011 के 'हंस' में प्रकाशित राज्यवर्द्धन की कविता 'नदी आदमखोर हो गई है' बाँधों के निर्माण से नदी के विनाशकारी रूप लेने की बात की ओर संकेत करती है। कविता नदी को केन्द्र में रखकर दो ज़माने की चर्चा करती है। पहले तो नदी में बाढ़ आती थी स्वाभाविक रूप से। इस बाढ़ से उस साल की

---

1. सुन्दरलाल बहुगुणा - धरती की पुकार - पृ. 65

फसल दुगुनी होती थी। नदी में बाँध बनायी गयी है तब से नदी का रुख बदल गयी है। वह आक्रामक रवैया अपना रही है जो मानव को कभी न खत्म होने वाली पीड़ा देती है :

"अब कहती है मां
जब से नदी पर बना है बाँध
तब से नदी
सुंदरवन के बाघ की तरह
आदमघोर हो गई है
रात-बेरात
भयानक करती है हमला
और खा जाती है - जन-माल को
और दे जाती है टीस-जीवन भर के लिए!"[1]

बाँधों के निर्माण में सत्ता के साथ इंजनीयरों और पूँजीपतियों की मिली भगत हमेशा होती ही है। ऋतुराज की बहुत अच्छी कविता है 'तृष्णातरंगकुलता' जिसमें उन्होंने इनके षड्यंत्र का पर्दाफाश किया गया है। अपने ही देश के प्राकृतिक संसाधनों को लुटाने के वास्ते ये लोग हाथ में हाथ मिलाते हैं :

"इंजीनियरों को पता है कि बाँध का पानी
किस जगह से टूटता है
ज़मीन कहाँ पोली है और प्यासी
चूस लेती है सारा पानी
पहले भी इंजीनियरों को पता था और उस ठेकेदार को भी।"[2]

---

1. राज्यवर्द्धन - नदी आदमखोर हो गई है - हंस वर्ष 25, अंक 6, जनवरी 2011 - पृ. 51
2. ऋतुराज - आशा नाम नदी - पृ. 75

इंजीनियरों, तकनीक विदों तथा ठेकेदारों की सहभागिता से बाँध बनता है। लेकिन आमतौर पर ये लोग अपने देश के प्रति वफादार नहीं होते हैं। अर्थ कमाने की लालसा में ये लोग अपने ज्ञान का गलत इस्तेमाल करते हैं। इनके निर्माण में सही तकनीक का प्रयोग न होने के कारण इनकी आयु भी संकट में पड़ती है। बाँध बनाने के बाद मर्म्मत के लिए खर्च होता ही है। समकालीन कवि की दृष्टि इन तमाम मुद्दों पर पड़ी है :

"दोनों ने आस्था और झूठ को एक साथ जाना था
मौज उडाई थी बाँध की पाल पर
लेकिन अब इंजीनियर उत्साहित होकर
बाँध की मर्म्मत करवा रहे हैं।"[1]

बाँधों से अनगिनत पारिस्थितिक समस्यायें उठ खड़ी होती हैं। सर्वप्रथम बात यह है कि इन परियोजनाओं से जैव संपदा का विनाश होता है। दूसरी समस्या विस्थापन की है। इससे बाँध क्षेत्रों के लोगों का प्राकृतिक आवास तथा जीवन-यापन का मार्ग नष्ट होता है। याने कि ये लोग शारीरिक, मानसिक तथा भौतिक स्तर पर विस्थापन का शिकार बन जाते हैं। ज़्यादातर बाँध भूकंप संभावित क्षेत्रों में स्थित है इसलिए ये कभी भी टूट सकते हैं। इससे होनेवाले पारिस्थितिक विनाश तथा मनुष्य की हानि का अंदाज़ा तक नहीं लगाये जा सकते। ये सब बड़े-बाँध उठाते गंभीर प्रश्नों की ओर संकेत करते हैं।

तुषार धवल की 'जिलावन का देस' (डूबी हुई टिहरी के नाम) कविता बाँधों से गाँवों के उजड जाने की और संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र बिगड जाने की ओर संकेत

---

1. ऋतुराज - आशा नाम नदी - पृ. 75

करती है। उत्तराखण्ड के टिहरी जिले में सन् 1972 ई. में भगीरथी तथा भीलांगना नदियों के नीचे गंगा नदी के संगम पर बाँध बनाने की परियोजना उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई विभाग को सौंप दी गयी थी। लेकिन प्रस्तुत योजना के खिलाफ़ सुन्दरलाल बहुगुणा के नेतृत्व में डुबकी क्षेत्र के लोगों ने संघर्ष किया। अब भी यह संघर्ष ज़ारी है। डुबकी क्षेत्र के इन लोगों की यातना पूर्ण संघर्ष का जीवंत चित्रण कविता में यों अभिव्यक्त हुआ है :

"एक मैना
न जाने कहाँ चली गई है
अपना जंगल ढूँढने
यह जिलावतनों का देस है
हमने यहाँ सोना बोया और
बंजर काटा
हम लौट लौट जाते हैं नीद में
जहाँ की हवा हमारे नाम से बुलाती है
जो मिट्‌टी हमारे बचपन की सखी है
जाने कहाँ खो गए सब
कहाँ चले गए
वहाँ से भी जहाँ घर था उनका
परिवर्तन सख्त हाथों से
उनके चेहरे पोंछ गया
सब सपाट
अब पुलों से सडकें कट रही हैं
यह जिलावतनों का देस है

जहाँ हम किसी तरह टिके हुए हैं
फिसलती रेत में घर बनाते।"[1]

भारत आज दुनिया का तीसरा सबसे बडा बाँध-निर्माता देश होने का दावा करता है। केन्द्रीय जल आयोग के मुताबिक, हमारे यहाँ 3600 बाँध ऐसे हैं जो बडे बाँधों की श्रेणी में आते हैं, इनमें से 3300 का निर्माण आज़ादी के बाद हुआ है। करीब 1000 और निर्माणधीन है। फिर भी हमारे बीस करोडों लोगों को पीने का पानी नहीं और साठ करोड लोगों के पास बुनियादी शौच-सफाई की व्यवस्था नहीं। अरुंधति रॉय ने सही कहा है कि "बडे बाँधों की शुरुआत अच्छी थी लेकिन उनका नतीजा बुरा निकला। एक ज़माना था जब वे हर किसी के चाहत थे - साम्यवादी, पूँजीवादी, ईसाई, मुसलमान, हिंदू, बौद्ध। एक ज़माना था जब बड़े बाँधों पर कविता की जाती थी। अब नहीं। सारी दुनिया में बड़े बाँधों के विरुद्ध एक आन्दोलन जोर पकड रहा है।"[2] ये किसान को मार रहा है। गरीबों से पानी, ज़मीन और सिंचाई छीनकर उन्हें विस्थापित कर रहे हैं। इसलिए बाँधों के निर्माण में और अधिक सावधानी बरतनी चाहिए ताकि यह पारिस्थितिकी तथा मनुष्य की सुरक्षा के लिए खतरनाक न साबित हो जाए।

4.2.4 पारिस्थितिक विस्थापन

पहले ही सूचित किया था कि बाँध परियोजनाएँ लाभदायक होने के बावजूद हमारे लिए विनाशक विवादास्पद तथा साबित हो रही हैं। जैसे कि बाँधों के निर्माण

1. तुषार धवल - पहर यह बेपहर का - पृ. 54-55
2. अरुंधती रॉय - बहुजन हिताय - पृ. 15

में दूरदर्शिता के अभाव के कारण तथा प्रकृति के साथ समञ्जस्य स्थापित न करने के कारण ये हमेशा जनहितों से कोसों दूर रहती है। इसके लिए राजनीतिज्ञ, इंजिनीयर तथा तकनीक विद् समान ढंग से ज़िम्मेदार हैं। पारिस्थितिक विस्थापन की समस्या इसीलिए आज की अहम मुद्दा बन गयी है।

कानूनी तौर पर यही बताया जाता है कि सार्वजनिक परियोजनाएँ लागू करते वक्त मानवीय तथा पर्यावरणीय पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए। और यह भी सूचित किया है कि इसकी क्रियान्विति वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर होनी चाहिए। लेकिन सच्चाई इससे कोसों दूर है - "परियोजनाओं के अध्ययन से जो तथ्य निकलते हैं उससे यही आभास होता है कि इसप्रकार की परियोजनाओं में मानवीय तथा पर्यावरणीय मूल्यों की कोई कीमत नहीं है और चंद लोगों की भौतिक आर्थिक तथा राजनीतिक लाभ को महत्व दिया जाता है।"[1]

भारतीय सामाजिक संस्थान (Indian Social Institute) के अनुसार भारत में बाँध परियोजनाओं के नाम पर लगभग 140 लाख लोगों को अपने प्राकृतिक परिवेश से धकेल दिया गया है। इस अध्ययन के 18 साल गुज़र गए हैं। इतने सालों के अंतरगत विस्थापितों की संख्या में वृद्धि ज़रूर हुई है। यह दुनिया भर की त्रासद कहानी बनती जा रही है। चीन, वियतनाम, ब्रज़ील, फीलिप्पेन्स, आफ्रिकी देश, भारत सब कहीं विस्थापित होनेवालों की संख्या दिन ब दिन बढ़ती जा रही है। संघर्ष और प्रतिरोध के बावजूद यहाँ के लोगों को सत्ता और पूँजीपतियों के सामने

---

1. लता जोशी - पर्यावरण की राजनीति - पृ. 118

घुटनें टेकना पडा। फिर भी दुनिया भर में इस प्रकार के पारिस्थितिक जन आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहे हैं।

पारिस्थितिक विस्थापन का सबसे बड़ा शिकार आदिवासी लोग है। आदिवासी लोग भारत की आबादी का आठ फीसदी हैं। विस्थापितों में बड़ी प्रतिशत आदिवासी लोग है। उसके बाद दलित लोग आते हैं। मेधा पाटकर को उद्धृत करते हुए अरुंधती रॉय लिखती हैं कि "भारत के सबसे गरीब लोग उसके सबसे अमीर लोगों की जीवन-शैली के लिए सब्सिडी दे रहे हैं। इनके बारे में कोई भी नहीं सोचता है। लाखों-करोडों विस्थापित लोगों का अब कोई वजूद नहीं है। मेधा पाटकर ने लिखा है कि नर्मदा सागर परियोजना से विस्थापित होनेवालों में 100% आदिवासी हैं।"[1]

ऋतुराज ने 'तृष्णातरंगकुला' में इस समस्या की स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है। बाँधों के निर्माण के कारण अपने जीवन परिवेश से दफा हो जाने के लिए अभिशप्त भील जनजातियों के टूटे सपनों में कोई हरियाली नहीं दिखती है :

"भीलों का क्या होगा
वे दुःखी हैं कि अगर बाँध भरा रहेगा तो वे खेती-
नहीं कर सकेंगे
अब कभी टोपे मचान हरियाली रसों की नशीली-
खुशबू नहीं होगी।"[2]

---

1. अरुंधती रॉय - बहुजन हिताय - पृ. 18
2. ऋतुराज - आशा नाम नदी - पृ. 75

भील जनजाति, बाँधों की वजह से अपने रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से, जीवन यापन से, प्राकृतिक परिवेश से बेदखल हो गया है। 'भीलों का क्या होगा?' सवाल असल में भीलों के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगता है जो अंततः अमानवीयता का भाव ग्रहण करके पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होता है। पंकज चतुर्वेदी की 'उत्तराखण्ड के लिए' पारिस्थितिक विस्थापन की त्रासदी का बेबाक वर्णन करती है। नदियों, पहाडों तथा जंगलों को विनष्ट कर आदमी की ज़िन्दगी कैसे सुरक्षित रहेगी? कवि यही पूछना चाहते है :

"नदियाँ अपना जल
पहाड़ अपनी ऊँचाई खो रहे थे
आदमी की आखिरी तकलीफ यह थी
कि जहाँ रोटी नहीं थी
वहाँ फिर कोई सौंदर्य भी नहीं था
इसलिए पत्नियों से उनके पति
माँ-बाप से उनके बेटे बिछुड रहे थे
परिवारों से उनकी कमाई छिन रही थी
जैसे जंगलों में पेड काटे जा रहे थे
जैसे उन स्त्रियों के साथ बलात्कार हो रहा था
सिर्फ इसलिए कि वे स्त्रियाँ थीं
और पहाडों का हाल कह सकने के लिए
देश की राजधानी आ रही थी
और इसके लिए
यह भी उन्हें सहना पडा।"[1]

1. पंकज चतुर्वेदी - एक संपूर्णता के लिए - पृ. 86

एक ओर तो विस्थापन की त्रासदी को वे झेल रहे हैं तो दूसरी तरफ उन्हें सत्ता के अत्याचारों को भी सहना पड़ता है। एकान्त श्रीवास्तव ने विस्थापन की समस्या को सरदार सरोवर बाँध परियोजना के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। कविता का प्रेरणास्रोत नर्मदा बचाओ आन्दोलन है :

"नक्शे में ढूँढो हमारे दर्द का रंग
हमारे चार-गाँव की वनस्पतियाँ
इस ऋतु में खिलने वाले फूल
और बोलने वाली चिडियों के नाम नक्शे में ढूँढो
नक्शे में ढूँढो धूल-धूसरित रास्ते
जिन पर चलकर हम बडे हुए
बगीचे आम के
खेत - खलिहान
और दियों की उजास में नहाई कच्ची दहलीज़ें।"[1]

कविता के केन्द्र में महाराष्ट्र का भणिबेली गाँव है जो सरदार बाँध परियोजना के तहत डुबकी क्षेत्र के अंतरगत आने वाला है। यकीनन यह गाँव भारत के उन तमाम गाँवों का प्रतिनिधि है जो विकास के नाम पर अपने भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिवेश से गायब होने के लिए अभिशप्त है। इसीलिए तो कवि ने लिखा है :

"नक्शे में ढूँढो नर्मदा
और पानी में डूबते मेधा पाटकर के स्वप्न

1. एकान्त श्रीवास्तव - मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद - पृ. 80

नक्शे में ढूँढो वह गाँव
जिसका नाम मणिबेली हो।"[1]

विस्थापन की समस्या अन्य कई कारणों से भी उत्पन्न होती है। मुख्यतया अणुपरीक्षण तथा खनन इसके जिम्मेदार हैं। भारत आणविक शक्ति संपन्न राष्ट्र बनने की होड में हुआ है। इस होड़ में अणुपरीक्षण एवं उसका प्रयोग भी किया गया। सन् 1998 में भारत ने पोखरान में परमाणु परीक्षण किया। वहाँ की प्रकृति तथा पर्यावरण पर इसने गहरा असर छोड़ा पोखरान अणु परीक्षण की विभीषिका का चित्रण समकालीन कवि लाल्टू ने किया है :

"डरी-डरी आँखें पूछती हैं
इतनी गर्मी पोखरान की वजह से तो नहीं
गर्मी पोखरान की वजह से - नहीं होती
पोखरान तो टूटे हुए सौ मकानों और
वहाँ से बेघर लोगों का नाम है
उनको गर्मी दिखलाने का हक नहीं।"[2]

हज़ारों लोगों को बेघर करते तथा उनकी ज़िन्दगी की तबाही के लिए जिम्मेदार अणु परीक्षण का विरोध करते हुए लाल्टू जनता के पक्ष में खडे होते हैं। खुदाई से उद्भूत पारिस्थितिक विस्थापन के भी लोग भुक्तभोगी रह चुके हैं। यहाँ भी शोषण के शिकार आदिवासी लोग ही हैं। इसका जिक्र निलय उपाध्याय ने 'भूमिगत आग' में किया है। प्रस्तुत कविता खनन के विभिन्न पारिस्थितिक आघातों की ओर

1. एकान्त श्रीवास्तव - मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद - पृ. 80
2. लाल्टू - लोग ही चुनेंगे रंग - पृ. 107

पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती है। खनन के कारण वहाँ के मूल निवासी भील जन जाति गायब हो गयी है :

> "जंगल की रगों में गूँजते
> आदिवासी.......... भील.......
> कहाँ........ कहाँ गए सब के सब"[1]

मोटे तौर पर देखे तो विस्थापन की समस्या मूल रूप से विकास परियोजनाओं की दुष्परिणिति है। इसे झेलना हाशिएकृत लोगों की नियति बन गयी है। यह भी सही है कि विकास का अधिकतर लाभ ऊपरी स्तर के लोग ही उठाते हैं। एक अन्य पहलू पारिस्थितिक असंतुलन से जुडी हुई है। आज की विकास संबंधी अवधारणाएँ हमारी जैविक संपदा को मिटा नहीं है। इसलिए समकालीन कवि विवश है क्योंकि जहाँ मनुष्य खिलौने की तरह टूट रही हैं वहाँ कुछ लोग विकास की बात कर रहे हैं। लेकिन समकालीन कवि पहचानता है कि विकास विनाश का पर्याय है :

4.3 तकनीकी विकास एवं पारिस्थितिकी

दुनिया आज तकनीकी नियतिवाद के शिकार बन गयी है। टिकाऊ विकास की अवधारणा में तकनीकी विकास को बहुत महत्व दिया जाता है। तकनोलॉजी का जन्मदाता मनुष्य तय करता है, इसका उपयोग कहाँ, कब और कैसे किया जाए। सभ्यता के विकास के साथ साथ तकनोलॉजी और मनुष्य के बीच के संबंधों में बदलाव ज़रूर आया है। इसकी चरम अवस्था है तकनोलॉजी का बहुआयामी प्रयोग। विकास तकनोलॉजी, युद्ध तकनोलॉजी, परमाणु तकनॉलाजी, जैविक तकनोलॉजी

---

1. निलय उपाध्याय - अकेला घर हुसैन का - पृ. 26

के भिन्न प्रकार व्यक्ति, समाज, राज्य, देश, पर्यावरण सबके लिए ख़तरनाक साबित हो रहे हैं।

समकालीन कविता में यंत्र तकनीकी की बढ़ोत्तरी का खुलकर चित्रण हुआ है। बलदेव वंशी की 'उपनगर में वापसी' और 'कच्ची मिट्टी की दीवारें' जिनका प्रकाशन क्रमशः 1998 और 2008 में हुई, इस मुद्दे को एकदम नवीन ढंग से प्रस्तुत करती है। धरती तथा मिट्टी पर घोर वार करने वाले बुलडोज़र यंत्र का उल्लेख 'उपनागर में वापसी' में हुआ है तो दस साल बाद लिखी गयी दूसरी कविता में भी 'बुलड़ोज़र' ही केन्द्रीय पात्र है। दस सालों के भीतर उसके कर्म क्षेत्र में आए भारी परिवर्तन को कविता प्रस्तुत करती है :

"बुलडोज़र से गिराई जाती कच्ची दीवारें...
दीवारों को मिट्टी
मिट्टी को धूल बनते देख याद आया-
कि कैसे चली जा रही हैं दीवारें, छतें, कच्ची
धूल-सनी, अध बनी
शहरों - नगरों की ओर मूँह किए
आधुनिक तकनीक का कमाल है।"[1]

आजकल गाँव जंगल, पहाड़, घाटियाँ सब के सब बुलड़ोज़र से डरने लगे हैं। शायद इसीलिए प्रो. हरिमोहन ने लिखा होगा कि "चारागाह, उपजाऊ घाटियाँ और जंगल शीघ्र ही आरियों और बुलडोज़रों (मिट्टी हटानेवाली मशीन) की बलि

1. बलदेव वंशी - कच्ची मिट्टी की दीवारें - समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 28, अंक 28, जुलाई-अगस्त 2008 - पृ. 146

चढ़ जायेंगे। कुछ चुनिन्दा लोगों के लालच के लिए हमारी पौराणिक संपत्ति एक दर्दनाक इतिहास बनकर रह जायेगी।"[1] ज्ञानेन्द्रपति ने भी इस तरह के विकास तकनीकों के प्रयोगों पर अपना चिन्तन प्रकट किया है। उनका विचार 'आदिवासी गाँव से गुज़रती सडक' कविता में मिलता है। कविता में आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखा है। यंत्रों की दखलंदाज़ी उनकी प्राकृतिक आवास व्यवस्था में कैसे हेर-फेर पैदा करती है इसका विवरण कविता में देखिए :

"अगली सुबहों में
भारवाही वाहन
रिगें क्रेनें
चौडे पंजर की ट्रकें लगे ट्रैक्टर
बसें कारें हाकिम डुक्काम
आए तमाम
इस मिट्टी की छाती से।"[1]

तकनीकी के विनाशकारी कारनामों का ब्योरा 'पेडों के माध्यम' से कविता में उभरकर आया है। दिविक रमेश की इस कविता में पड़े अपना दर्द बाँट रहा है :

"अपने पूरे वैभव के साथ
गा रहा है पेड
श्रोताओं के नाम पर
जंगल है बियाबान

1. प्रो. हरिमोहन - मानवाधिकार और पर्यावरण संतुलन - पृ. 116
2. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 21

प्रविधि और वैज्ञानिक सभ्यता के
हाहाकार का।"[1]

तकनीकी विकास से भौतिक सुख-सुविधाओं की बहुत सारी चीज़ें हमें उपलब्ध हुई है। लेकिन इसका नकारात्मक पक्ष पारिस्थितिकी के गंभीर संकट में डालना है।

4.3.1 जैव प्रौद्योगिकी और पारिस्थितिकी की समस्या

समकालीन कविता ने जैव-प्रौद्योगिकी के पारिस्थितिक प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए उनके विभिन्न पहलुओं पर विचार प्रकट किया है। जैव प्रौद्योगिकी का नियंत्रण बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ करती हैं। उत्पादन में वृद्धि तथा खाद्य सुरक्षा के बहाने वे भारत जैसे देशों में जीनांतरित बीज को भेज देती हैं। इस तरह बीज का नियंत्रण एवं संपूर्ण खेती पर कब्ज़ा करना वे चाहती हैं। इससे समकालीन कवि वाकिफ़ है। ज्ञानेन्द्रपति 'बीज व्यथा' में जीनांतरित बीजों की दास्तान द्वारा खेती तथा किसान पर होनेवाले इसके दुष्परिणामों से हमें अवगत कराते हैं -

"सुदूर पच्छिम जो पुरातन मायावी स्वर्ग का है अधुनातन प्रतिरूप
नन्दनवन अनिन्द्य
जहाँ से निकलकर
आते हैं वे पुष्ट संकर बीज
भारत के खेतों पर छा जाने।"[1]

---

1. सं. मानिक बच्छावत - समकालीन सृजन कविता इस समय - पृ. 292
2. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 169

एक ओर ये बीज, हमारे परंपरागत बीजों का स्थान हड़प लेते हैं तो दूसरी ओर इसके उपयोग में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के ज़हरीले संयन्त्रों की तकनीक का आयात भी किया जाता है। आजकल खेती के क्षेत्र में बयोतकनीक से निर्मित जीनांतरित बीजों का व्यापार और विपणन व्यापक स्तर पर हो रहा है। दरअसल यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों का साज़िश है जिसके तहत बीजों का उत्पादन और विपणन का स्वामित्व केवल उनके पास ही होते है। इनके मूल्य भी वे ही तय करते हैं। फलतः भारतीय किसान दुःविधा में पड़ जाते हैं। ऐसे बीजों के इस्तेमाल के लिए वे बाध्य हो जाते हैं। ज्ञानेन्द्रपति ने 'बीज व्यथा' में हमारे परंपरागत बीजों के नष्ट हो जाने के प्रति गहरा दुःख व्यक्त किया है। परिस्थितिकी के साथ सामंजस्य रखनेवाले बीजों का स्थान संकर बीजों ने हड़प लिया है। विडंबना की बात है कि हमारी मिट्टी से जन्मे इन बीजों का तर्पण, इसी मिट्टी में हो रही है :

"वे बीज
भारत भूमि के अद्भुत जीवन-स्फुलिंग
अन्नात्मा अनन्य
जो यहाँ बस बहुत बूढे किसानों की स्मृति में बचे हुए हैं
दिनोंदिन धुंधलाते - दूर से दूरतर
खोए जाते निर्जल अतीत में
जाते-जाते हमें सजल आँखों से देखते हैं
कि वहाँ हमारी भी आँखें जल
कि उन्हें बस अँजुरी-भर ही जल चाहिए था जीते जी सिंचन के लिए
और अब तर्पण के लिए"[1]

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 170

भारत भूमि के अन्नात्मा, हमारे अद्‌भुत जीवन-स्फुलिंग का वाहक - अद्‌भुत अनन्य बीज अब मात्र चंद बूढ़े किसानों की स्मृति में ही बचे हुए हैं। कविता में एक ओर, कवि ने हमारे परंपरागत बीजों के नष्ट हो जाने के प्रति दुःख व्यक्त किया है तो दूसरी ओर इन 'आधुनिक पुष्ट दुष्ट संकर बीजों के आयेग में सतर्क हो जाने की चेतावनी भी दी है।

4.4 खेतीबाड़ी से जुड़ी हुई पारिस्थितिक समस्यायें

तकनीकी का कुप्रभाव खेती के क्षेत्र में भी पडा है। मुख्यतय खेती के क्षेत्र में प्रयुक्त तकनीक किसानों के लिए महंगे साबित हो रहे हैं। दूसरी समस्या कृषि भूमि का अभाव है। कृषि-भूमि किसानों से हड़प किये जा रहे हैं। परिणामस्वरूप लगभग 40 करोड किसान विस्थापन की समस्या से जूझ रहे हैं। समकालीन कविता खेतिहर और पारिस्तितिकी के अंतःसंबंध को दर्शाते हुए इस क्षेत्र में होनेवाले परिवर्तनों का प्रकृति तथा मनुष्य पर उसके प्रभाव का खुलकर चित्रण करती है। भगवत रावत की 'पेडों की आवाज़', विजयशंकर चतुर्वेदी की 'कपास के पौधे', नीलेश रघुवंशी की 'विज्ञापन में किसान', लीलाधर जगूड़ी की 'कोई नहीं जानता', उमाशंकर चौधरी की 'किसान की आत्महत्या भी मृत्यु है'। ए.अरविन्दाक्षन की 'किसान आत्महत्या क्यों करते हैं' जैसी कविताओं का अध्ययन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

खेती-खेतिहर हमारी ज़िन्दगी से गायब होते जा रहे हैं। जो किसान यहाँ बचे हुए हैं वे बाज़ार की कूटनीतियों से वंचित होकर आत्महत्या कर रहे हैं। हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक शंभूनाथ ने इस समस्या को गंभीरता के साथ देखा है और अपना

मत यों प्रकट किया है : "भारत के कुछ राज्यों में किसान आत्महत्यायें कर रहे हैं। एक जीवनदाता आत्महन्ता बनने के लिए विवश हो गया है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, हरियाणा, पंजाब, आन्ध्रप्रदेश जैसे प्रदेशों में किसान आत्महन्त हो चुका हैं। यह सब भूमंडलीकरण एवं आर्थिक सुधारों के बाद हुआ है।" उमाशंकर चौधरी ने 'किसान की आत्महत्या भी मृत्यु है' कविता में इस समस्या का पर्दाफाश किया है। हम इन बातों से अच्छी तरह वाकिफ़ है कि हमारा देश कृषि प्रधान है और इस देश के किसान हमारे अन्नदाता है। लेकिन विकास की अंधी दौड़ ने यहाँ किसानों की मृत्यु रचा रही है :

"इतिहास में यह समय
जितना विकास के लिए दर्ज होगा
उसके अधिक होगा अपनी विडम्बनों के लिए
और बारी उन विडम्बनाओं की पडताल की आएगी
तब जो सबसे ऊपर आएगा, उसमें होगा
अखबार में छपी किसानों की आत्महत्या का खबर
और यह कृषि प्रधान देश।"[1]

समकालीन कविता की प्रतिबद्धता इसमें है कि वह किसानों के साथ होनवाले शोषणों से वाकिफ़ है। इसलिए किसानों की आत्महत्या की खबर, उनके अस्तित्व के बारे में सोचने के लिए उन्हें विवश कराती है। उनकी विवशता, किसानों की आत्महत्या पर इस प्रकार लिखने के लिए उन्हें बाध्य करता है कि आन्ध्रप्रदेश का किसान / जब आत्महत्या करता है / तब कर्नाटक का किसान / अपनी बीवी को

1. उमाशंकर चौधरी - कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे - पृ. 43

गले से लगाते हुए / अपना अन्तिम निर्णय लेता है / 'कल की सुबह हम नहीं देखेंगे' / अपने-अपने गाँवों में / ये किसान खत्म होते जाते हैं।"[1] कवि का संकेत पूरे भारत में किसानों की जो बदहालत है उसकी ओर है।

आजकल जो है खेती के क्षेत्र में महंगी मशीनों और कृषि रसायनों के इस्तेमाल के लिए किसानों को मज़बूर किया जा रहा है। ज़ाहिर है कि मुनाफ़ाखोरों द्वारा किसानों का लाभ उठाया जाता है। इसके लिए वे महंगी मशीनों और कीटनाशकों के प्रयोग का तंत्र अपनाते है और किसानों के अज्ञान का फायदा उठाते हैं। लीलाधर मंडलोई ने 'शर्मनाक' कविता द्वारा किसान विरोधी इस अर्थ-व्यवस्था की खिल्ली उठायी है :

"मैं 1991 के अखबार में
पढ़ रहा हूँ यह खबर
एक एकड कपास की
उत्पादन लागत 2500
और आज 2010 में
यह भयानक खबर
कि विदर्भ में
किसान आत्महत्या को विवश
कि लागत
13500 रुपए प्रति एकड
और खेत उदास

1. ए. अरविन्दाक्षन - आसपास - पृ. 11

सरकार बी.टी. कपास के समर्थन में
इस हद तक पागल
कि भूल गई
अपने खेत
अपने किसान
यहाँ तक आत्महत्या के आँकडे
जो किसी भी सरकार के वास्ते शर्मनाक।"[1]

खेती के क्षेत्र में जीनांतरित बीजों का उपयोग ने भारतीय किसानों के लिए चुनौती खड़ा कर दिया है। इसकी पारिस्थितिक कुप्रभावों की ओर पहले अध्याय में सूचित किया था।

संक्षेप में देखा जाए तो यही समझना चाहिए मौजूदा परिवेश किसान और खेती के खिलाफ़ है। वर्तमान आर्थिक नीतियाँ पूँजी बटोरने की ओर रफ़्तार है। वहाँ किसान के दर्द और मुश्किलों के बारे में सोचनेवाला कोई प्रशासन नहीं। हमारे किसान एक ओर आर्थिक संकट से गुज़र रहे हैं तो दूसरी ओर खेती के क्षेत्र में अनेक पारिस्थितिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं। उमाशंकर चौधरी ने ठीक ही लिखा है कि अब हमारी मिट्टी से सौंधी खुशबू नहीं आती और हमारे खेतों में चरने के लिए जानवर नहीं आते। वाकई कुछ करने से उसका कुछ हो पाएगा यह भी पता नहीं। मिट्टी की उर्वरता का नष्ट होना, जलस्रोतों का सूखना, विस्थापन की समस्या, जीनांतरित बीजों का इस्तेमाल, जैसे अनगिनत पारिस्थितिक संकटों से गुज़रना भारतीय किसान की नियति बन गयी है।

---

1. लीलाधर मंड़लोई - समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 31, अंक 150, जुलाई-अगस्त 2010 - पृ. 122

4.5 प्रकृति पर मनुष्य की दखलंदाज़ी

मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए निरंतर संघर्ष करता आया है। उसका यह संघर्ष प्रकृति के साथ भी होता रहा है। विकास में प्रकृति का सहयोग उसे सदैव प्राप्त था। प्रकृति के साथ समाज की अंतर्क्रिया इतना व्यापक है कि उससे समूची मानव जाति प्रभावित होती है। मनुष्य को प्रकृति पर अनोखा अधिकार प्राप्त कराने में वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज के तथाकथित विकास ने प्रकृति पर अंतहीन अतिक्रमण का, अविवेकपूर्ण दोहन का, प्रकृति के फेर-बदल का युद्ध छेडकर रखा है।

प्रकृति में मनुष्य के हस्तक्षेप का ठोस सबूत है जंगलातों की व्यापक कटाई। इसका नतीजा है अनगिनत विरले वन्य जीवों की वंशलुप्ति, अनेक प्राणियों के प्राकृतिक आवास का ध्वंस, असंख्य उद्‌भिज्जों की जड़ें खोना आदि। समकालीन कविता में प्रकृति की व्यापक उपस्थिति असल में मनुष्य द्वारा प्रकृति के शोषण के विरोध में कवि की प्रतिक्रिया के तौर पर हुई है। उनका संघर्ष प्रकृति के साथ होने वाले अन्याय के विरुद्ध है। इस सच्चाई से गुज़रते कवि प्रकृति शोषण के अन्यत्र रूपों से अवगत है। समकालीन कवि का उद्देश्य पाठकों में पारिस्थितिकीय बोध जगाने का है।

नवल शुक्ल ने 'धरती से विदा' में इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है कि प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के उलटफेर ने असंख्य पारिस्थितिक समस्याओं को जन्म दिया है। कविता में ये समस्यायें कुछ इस तरह उभरकर आती हैं :

"बहुत कम हो रही है
पीने के पानी तक का अकाल
धरती कम हो रही है
और हमारे वायुमंडल का विस्तार
पेड-पौधे कम हो रहे हैं
कम हो रही हैं ऋतुएँ
लुप्त प्राय हो गयी कुछ नदियाँ, कुछ फूल, कुछ जीव।
दूर क्षितिज पर दिखाई देता है उनका झुंड
धरती से विदा ले रहे हैं उन सबके
धीरे-धीरे काँपते हुए हाथ।"[1]

पानी, धरती, वायु, पेड़-पौधे, नदियाँ, फूल-फल जैसी प्राकृतिक चीज़ों के दुर्लभ होने की स्थिति की ओर कविता हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।

रामदरश मिश्र की 'चिडिया' कविता प्रकृति में मनुष्य की दखलंदाज़ी का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करती है। कविता में चिड़िया मनुष्य की मनुष्यता के लिए चुनौती खड़ी करती है। कवि पूछते हैं कि एक मासूम चिड़िया का घोंसला उजाडकर आखिर यह मनुष्य क्या हासिल करता है?

"चिडिया उडती हुई कहीं से आई
बहुत देर तक इधर-उधर भटकती हुई
अपना घोंसला खोजती रही
फिर थककर एक जली हुई डाल पर बैठ गई

---

1. नवल शुक्ल - दसों दिशाओं में - पृ. 83

और सोचने लगी
आज जंगल में कोई आदमी आया था क्या?"[1]

जंगल में मनुष्य के पाँव पड़ते हैं जंगली जीव आशंका से थिर उठते हैं। उनका डर है कि कहीं वे उनके घर को तबाह तो नहीं करेंगे। असलीयत इससे कोसों दूर भी तो नहीं है जो कविता से स्पष्ट भी होता है। जाने अनजाने में किसी भी निरीह प्राणी के प्राकृतिक आवास को मिटाने का अधिकार मनुष्य को नहीं है। पवन करण ने शायद इसीलिए लिखा होगा कि धरती पर 'मनुष्य' नहीं 'लोग' बढ़ रहे हैं :

"सिर्फ पेड नहीं लगातार जंगल कट रहे हैं
और मनुष्य नहीं धरती पर लोग बढ़ रहे हैं।"[2]

भगवत रावत ने 'इन दिनों में' काटे जा चुके जंगल के बीच एक वृक्ष आत्मा का बयान प्रस्तुत किया है। यह वृक्ष मनुष्य के, उसकी मनुष्यता के खिलाफ बयान देता है। पारिस्थितिक तंत्र में हर एक जीव एक दूसरे पर परस्परावलंबित है। किसी एक का विनाश दूसरों पर असर ज़रूर छोड़ता है। विनोदकुमार शुक्ल ने 'फूल वहाँ तक मुरझाया' में इसी तथ्य का उद्घाटन किया है। कविता पेड़ों की कटाई से बेघर हुए चिडिया का दुःखडा सुनाती है :

"कटे पेड की दुनिया भी
बेहिसाब बडी
उस दुनिया में

---

1. रामदरश मिश्र - नदी बहती है - पृ. 70
2. पवन करण - इस तरह मैं - पृ. 108

पेड ढूँढते चिडियों के जोडे कई कई
एक खत्म डाल से दूसरी खत्म डाल तक
ज्यों मीले जाते हवा में ठहर ठहर।"[1]

समान अभिव्यक्ति गंगा प्रसाद विमल ने 'सूखा' में भी दी है। मनुष्य द्वारा जंगल के बेहिसाब शोषण का चित्रण सुदीप बैनर्जी की कविता 'जंगल अगर गए थे' में मिलता है :

"जंगल अगर गए थे तो फिर
क्यों लौटे राजधानी में?
पेडों को कहा शजर आपने
दरख्त कहा, झाड कहा पर वे
टाल बन गए ईंधन के, इमारती
लकडी के पीठे बन गए
इस बार लौटे हैं
जंगल में आग लगाकर।"[2]

कविता की अंतिम पंक्तियाँ मनुष्य की नृशंसता का पर्दाफाश करती हैं। जंगल में आग लगाने से न जाने कितने जीव जन्तुओं तथा वनस्पतियों का विनाश होता है इसका अंदाज़ा वह कभी नहीं लगा सकते। एक बार वन के राख होने से दुबारा इसके पनपने तथा स्वाभाविक रूप ग्रहण करने में काफी समय लगेगा। इससे वन का मरुस्थलीकरण भी हो जाता है। राजेन्द्र उपाध्याय ने इस समस्या की ज्वलंत अभिव्यक्ति एक चिनगारी के रूप में दी है :

---

1. विनोद कुमार शुक्ल - वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह - पृ. 47
2. सुदीप बैनर्जी - प्रतिनिधि कविताएँ - पृ. 43

"हज़ारों पेड़ राख हो गए हैं
डरी पत्तियाँ जलकर हो गई हैं धुआं
आसमान पहचाना नहीं जाता कि वह आसमान ही है
आग लग रही है वहाँ बरसों से
हज़ारों अग्निशमक यंत्र बुझ रहे हैं जिसे
पर वह बुझती नहीं और बढ़ती जाती है।"[1]

आजकल जंगली जानवरों का शिकार व्यावसायिक तौर पर हो रहा है। दाँत, माँस, हड्डी तथा खाल के लिए बड़े पैमाने पर इनकी हत्या की जा रही हैं। तरह-तरह की चीज़ें बताने के लिए इनका उपयोग किया जाता है। समकालीन कवि इस अन्याय के विरोध में आवाज़ उठाते हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'हाथी' को केन्द्र में रखकर उपभोगावादी संस्कृति के तहत जानवरों के शोषण का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है :

"सारी समस्या दाँतों की थी
वे उसके दाँत निकाल लेना चाहते थे
वह अपने झुण्ड में चला आ रहा था
मस्ती में झूमता
सूँड लपलपाता
शिकारियों की सधी हुई गोलियाँ
उसके उन्नत ललाट में धस गयीं
और जंगल को काँपनेवाली एक मर्मभेदी चिंघाड के साथ गिर पडा

---

1. राजेन्द्र उपाध्याय - खिडकी के टूटे हुए शीशे में - पृ. 44

और अब वे आये घासों में छिपे हुए अधिकारी
उनके चेहरों पर विजय का उन्माद था
उन्होंने उसके दाँत निकाल लिये।"[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वार्थी मनुष्य प्रकृति के एक निरीह प्राणी के शोषण में भी खुशी हासिल करता है। मधुमक्खी जैसे छोटे-से-छोटे प्राणी की मेहनत को लुटानेवाले आदमी के बरताव की ओर पवन करण ने संकेत दिया है :

"मधुमक्खियाँ दुखी हैं, शहद बचाए रखने की
अपनी इच्छा शक्ति, विषैले डंक
उन्हें कमजोर लगते हैं जब वे देखती हैं
कोई कुछ नहीं करता
और उनसे लूटा शहद सरे आम बेचा जाता है
मधुमक्खियाँ नहीं जानती अपनी
शिकायत लेकर किसके पास जाएँ।"[2]

प्रस्तुत पंक्तियों से मनुष्य की ताकत के सामने मधुमक्खी जैसे अल्प जीवों की निरीहता तो सामने आती है। साथ ही अन्य जीवों पर अपना अधिकार जमाने वाले मनुष्य के अहम् की भावना भी स्पष्ट होती है।

जानवरों के खाल उतार रहे हैं। सभी जीवों का उपभोग करना मनुष्य की आदत बन गयी है। विडम्बना की बात यह है कि बिना सोचे-समझे किये जानेवाले

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - बेहतर दुनिया के लिए - पृ. 36-37
2. पवन करण - इस तरह मैं - पृ. 32

इस तरह के कारनामों के परिणाम के भुक्त भोगी अन्ततः मनुष्य ही है। समकालीन कवि बार-बार इस सच्चाई की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं :

“जंगल कटकर सज चुके हैं बडे घरों में
बावले हिरन कस्तूरी को नहीं
हिरनियों को ढूँढ रहे हैं नये जंगल के लिए
कीमती लोगों के काम आ गयी हैं उनकी खालें।”[1]

सभी प्राकृतिक संसाधनों पर मानव, का हस्तक्षेप उसकी चरम अवस्था पर पहूँच गयी है। चाहे नदी हो या पानी, पहाड हो या मिट्टी खान हो या जंगल - सबका बेहिसाब शोषण हो रहा है। प्रकृति में मनुष्य का हस्तक्षेप अन्ततः मनुष्य के लिए ही खतरा है। सबसे अधिक शोषण जंगल और नदी के साथ हो रहा है। इसका प्रभाव पारिस्थितिकी पर जरूर पड़ता है और मनुष्य पर भी। जंगल का मरुस्थलीकरण और नदियों का रेत में तब्दील होना दरअसल प्रकृति के ऊपर मनुष्य के अख्तियार के निशाने हैं। समकालीन कविता इस तरह की कई निशाने पाठकों के सामने रखती है। गगन गिल की ‘अवसाद’ कविता देखिए :

“रुक गयी थीं
नदियाँ
भँवर के मुहाने पर
छोड गयी थीं
बालू

---

1. हेमन्त कुकरेती - कभी जल कभी जाल - पृ. 104

सिर्फ
उडती
कौन-सा पाताल
है यह
किस नदी?"[1]

यह सवाल नदी के प्रति है तो बतौर कई प्रश्न पहाड, जंगल, पेड, पौधे, फूल, फल, पशु-पक्षी की तरफ से भी समकालीन कवि उठाते हैं।

4.6 पर्यावरण पर्यटन और पारिस्थितिकी का ध्वंस

पर्यावरण पर्यटन के अंतरंगत होनेवाले विकास परियोजनाओं के तहत बड़े-बड़े होटेल और सैरगाहें बनाये जा रहे हैं। इस तरह के अधिकतम होटेल समुद्रीय तट पर स्थित है। समुद्री तूफान जैसी आपदा के समय तटीय क्षेत्रों के लिए सुरक्षा पंक्ति का काम करने वाले वन समूह है मैंग्रेव। "इन्टरनैशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन आफ नेचर की हाल की एक रिपोर्ट के मुताबिक तटीय क्षेत्रों में चल रही विकास गतिविधियों के कारण दुनिया में हर छह में से एक मैंग्रोव बन सालाना एक से दो फीसदी की दर से नष्ट हो रहे हैं और 120 में से 26 देशों में इनके अस्तित्व पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं।"[2] लीलाधर मंड़लोई की बहुत अच्छी कविता है 'नमक'। इसमें मैंग्रीव वनों की जड़ों से उखाड़ने की ओर कवि ने इशारा किया है। कवि के पारिस्थितिक बोध की ज्वलंत अभिव्यक्ति भी है प्रस्तुत कविता :

1. गगन गिल - अंधेरे में बुद्ध - पृ. 41
2. रमेशकुमार दुबे - नवभारत टाइमस, मार्च 2011 - पृ. 10

"तुम्हारे किनारे इधर एक मैंग्रोव्ह की शक्ल में उगा। पिता समुद्री जाय। नमक ही नमक जड़ों से पत्तियों तक फैला। पत्तियों के कोरों से टपकता, जा मिलता तुम्हारे भीतर। पत्तियाँ हरी होती है पीती नमक। मैं हरा होता हूँ और दुनिया के हरा होने का गाना गाता हूँ....। गाने में कुल्हाडी थामे एक आदमी शामिल होता है। कुल्हाडी की धार पर 'मेंग्रोव्ह' की पत्तियों से झरता नमक चाँदी-सा चमकता है है। और झर जाता है।"[1]

आर्थिक और पर्यावरणीय दोनों नज़रियों से मैंग्रोव वनों का नष्ट होना काफी नुकसानदेह है। यह तटीय क्षेत्रों के लोगों को रोजी-रोटी मुहैया कराते हैं। पारिस्थितिकीय दृष्टि से ये वन जलवायु परिवर्तन से लड़ने और समुद्री लहरों से तटों का कटाव होने से बचने की कुवत खाते हैं।

4.7 वंशलुप्ति की समस्या

आज हमारी धरती बहुत बडी वेदना से गुज़र रही है। मनुष्य उस वेदना से बेखबर होते हुए जी रहे हैं। केंचुए, मेंढ़क, तीतर, बाघ, चीता, हाथी, हिरण, बंदर जैसे प्राणियों का जीवन और प्राकृतिक परिवेश से उनका गायब होना मनुष्य के भावजगत् में कोई खास परिवर्तन नहीं लाते लेकिन पारिस्थितिक-तंत्र पर इसका असर ज़रूर पड़ता है। समकालीन कविता इस पारिस्थितिक समस्या की ज्वलंत और बुलंद आवाज़ बनकर खडी होती है। कवि अपने प्राकृतिक जगत् के साथ के संबंधों को सृजनात्मक अभिव्यक्ति में परिणत कराते हैं चाहे वह प्रकृति सुन्दर हो या

1. लीलाधर मंडलोई - काल बाँका तिरछा - पृ. 32

रमणीय या फिर मृत। इसलिए प्रकृति के किसी भी जीव के नाश को लेकर कवि दुःखी और चिंतित होते हैं।

समकालीन कवियों में पवन करण, विनय दुबे, भगवत रावत, नवल शुक्ल, नेमीचन्द्र जैन, लीलाधर मंड़लोई, ज्ञानेन्द्रपति, राजेश जोशी, विनोदकुमार शुक्ल, पंकज चतुर्वेदी, हेमन्त कुकरेती की कविताएँ इस भावना से ओतप्रोत हैं। राजेश जोशी ने 'विलुप्त प्रजातियाँ' कविता में वंशलुप्ति की समस्या को प्रस्तुत किया है। अनेक प्रजातियों की विलुप्ति केवल उनकी स्मृतियाँ छोड़कर हमारे मन में रह गयी है। अब वे स्मृतियाँ भी लुप्त हो रही है :

"पेडों, पशुओं और परिन्दों की न जाने कितनी प्रजातियाँ
विलुप्त हो गईं न जाने कब
अब तो उनकी कोई स्मृति भी
बाकी नहीं।"[1]

असंख्य जीवों के अदृश्य हो जाने के कई कारण हैं। प्रमुख कारण जंगलों की व्यापक कटाई है। भारत में बाघ, सोहन, चिडिया, सुनहरी गरूड, बतख, कश्मीरी बारहसिंगे, कस्तूरी मृग, जंगली भैंसे, राजहंस, घडियाल, सफेद शेर, सफेद कौवे आदि वन जीवों की संख्या में अत्यंत कमी नज़र आती है। संरक्षित वनों में भी इनका शिकार चोरी छिपे हो रहा है। अनेक संदर्भों में वनाधिकारी भी इसमें लिप्त पाये जाते हैं। नदियों के प्रदूषण से भी वन्य जीवों की विलुप्ति होती है। प्रयोगशालाओं के परीक्षण भी इसका एक कारण है। प्राकृतिक आपदाएँ जैसे बाढ़, दावानल

1. राजेश जोशी - चाँद की वर्तनी - पृ. 17

अत्यधिक चराई, यातायात, अवैध खनन, वनों में कीटनाशी रासायनों का उपयोग आदि के कारण भी अनेक प्रजातियाँ मर जाती हैं।

बाघ प्रजातियों की वंशलुप्ति की ओर संकेत देते हुए पवन करण ने लिखा है - "धरती पर बडी तेजी से घट रही हैं बाद्यों की संख्या"[1] तालाब और नदियों के सूख जाने से मछलियाँ मर रही हैं। विनय दुबे की 'मछलियाँ' कविता इस विषय पर आधारित है। मौजूदा परिवेश प्रकृति विरोधी होने के कारण प्रजातियों की संख्या में कमी लगातार दिखाई दे रही है। समकालीन कवि इस समस्या से बेहद आहत है। अपने दुःख की अभिव्यक्ति कवि यों प्रकट करते हैं :

"पेड-पौधे कम हो रहे हैं
लुप्त प्राय हो गयी कुछ नदियाँ
कुछ फूल कुछ जीव।
दूर क्षितिज पर दिखाई देता है उनका झुंड
धरती से विदा ले रहे हैं उन सबके
धीरे-धीरे काँपते हुए हाथ।"[2]

इसी प्रकार विनोदकुमार शुक्ल ने चीतों की संख्या में हो रही कमी की ओर संकेत दिया है। चीता की कुछ प्रजातियाँ संरक्षित वनों में सुरक्षित तो है फिर भी वंशलुप्ति की विभीषिका से ये भी मुक्त नहीं है। कवि की यह चिंता 'अंतिम चीता मरा' में स्पष्ट रूप में अभिलक्षित हुई है :

---

1. पवन करण - इस तरह में - पृ. 108
2. नवल शुक्ल - दसों दिशाओं में - पृ. 83

"अंतिम चीता मरा
और चीता की जाति समाप्त हो गई
मनुष्य से।
चीता शब्द है, पर चीता नहीं
चीता के चित्र और घटनाएँ, कहानियाँ
हैं मनुष्य में।"[1]

कवि उस भयानक स्थिति की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं जहाँ चीता का परिचय केवल शब्दों, घटनाओं या फिर कहानियों में सीमित रह जाएगा।

लीलाधर मंड़लोई 'तीतर' कविता में तीतर पक्षियों के गायब होने से चिंतित होते हैं। आजकल तीतर पक्षी बहुत कम दिखाई देती कम है। क्योंकि प्रायः ये चिडियाँ खेत में पायी जाती हैं। लेकिन अब खेती ही नहीं रहें तो ये पक्षी कहाँ मिलेंगे?

"जितने कम होते जा रहे हैं अब
और चीक्क के बोल सुनना मुहाल
अब तो बाजरे की खेती गायब
और गन्ने की खेती भी इतनी कम
कहाँ होंगे वे अब?
किस जंगल के आसपास
किन खेतों में उनके घोंसले
चीक्क..... चीक्क....
अब मैं बोलता हूँ नींद में

1. विनोदकुमार शुक्ल - सब कुछ होना बचा रहेगा - पृ. 82

देखता हूँ उन्हें स्वप्न से बाहर
और हार जाता हूँ रोज़।"[1]

पंकज चतुर्वेदी ने लुप्तप्राय होनेवाली दुनिया को ही पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। पारिस्थितिक-तंत्र में हर एक जीव एक श्रृंखला में आबद्ध है। अर्थात् समस्त चरा-चर एक दूसरे पर निर्भर है। यह प्रकृति का नियम है। लेकिन मनुष्य लगातार इस नियम को तोडते हुए मात्र अपने भौतिक विकास की होड में प्रकृति से मुठभेड़ कर रहा है। न जाने कितने जीवों को उनके घर-बार को मनुष्य ने तोडा है। समकालीन कविता इसी संवेदना का संप्रेषण करती है :

"एक पेड था
डूब गया जिसका बीज
उसकी डाल पर बैठती थी एक चिडिया
जो अब किसी घोंसले में नहीं लौटती
एक जानवर था।
जो उस पेड के तने से रगडता था अपनी खाल
कालपात्र में रखा है उसका जीवांश
एक मनुष्य था
जो सोता था दुपहरी में उस पेड के नीचे
उसकी जडों पर सिर रखकर
खुदाई में मिलेंगी
उसकी पथराई हुई हड्डियाँ
एक पूरी दुनिया थी

1. लीलाधर मंड़लोई - तीतर, आलोचना त्रैमासिक सहस्राब्दि अंक सैंतीस अप्रैल-जून 2010 - पृ. 88

उस पेड के आसपास
कहाँ मिलेगा उसका बीज।"[1]

संक्षेप में समकालीन कविता की संवेदना प्रकृति तथा पारिस्थितिकी पर हो रहे शोषण तथा अत्याचार को लेकर प्रस्तुत है। ये कविताएं प्रकृति के ऊपर मनुष्य की बरबरता का खुला दस्तावेज़ है। मनुष्य के साथ प्राकृतिक जगत् के सभी जीव-जन्तु इसके परिमाम के भुक्तभोगी होंगे। पारिस्थितिक तंत्र की स्वच्छता तथा संतुलन को बिगाडकर स्वच्छ ज़िन्दगी बिताने की संकल्पना मनुष्य के लिए मात्र एक सपना रह जाएगा। दरअसल ये कविताएँ पारिस्थितिक बोध की आवश्यकता पर ही ज़ोर दे रही हैं। मनुष्य के समान अन्य जीवों के अस्तित्व को मानना, मिट्टी-पानी-बयार को स्वच्छ तथा सुरक्षित रखना तथा सतत विकास की अवधारणा पर अधिष्ठित परियोजनाओं पर सोच-विचार करने की आवश्यकता जैसे महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर भी समकालीन कविता ध्यान आकृष्ट करती है। पारिस्थितिक बोध से सिंचित ये कविताएँ समकालीन कविता की प्रतिबद्धता का ज्वलंत मिसाल हैं।

4.8 निष्कर्ष

समकालीन कविता में प्रकृति-शोषण के विभिन्न आयामों का चित्रण हुआ है। निस्संदेह इसमें पूँजीवादी - साम्राज्यवादी शक्तियों की साँठ-गाँठ शामिल है। प्रत्येक राष्ट्र के प्राकृतिक-संसाधनों पर इन ताकतों का कब्ज़ा जमा हुआ है। अपने वर्चस्व की प्रतिष्ठा के लिए ये देश कई कूट-नीति और तरीक अपनाते हैं। उनका

1. सं. विजयकुमार - सदी के अंत मं कविता - पृ. 243

ध्यान अविकसित देशों की संपत्ति लूटने में है। एक ओर ये शक्तियाँ हमारी जैविक संपदा पर वार कर रही है दूसरी ओर मानवता के अंत का इतिहास रच रहा है। इन शक्तियों ने मनुष्य के दिलो-दिमाग में भौतिक सुख सुविधाओं की लालसा भर दिया है। जीवन के आधारभूत तत्वों जैसे मिट्टी, पानी, बयार का शोषण मनुष्य तथा पारिस्थितिकी के लिए खतरनाक साबित हुआ है। समकालीन कविता ने पारिस्थितिकीय दृष्टि से समकालीन परिवेश की सही पहचान दिलायी है। समकालीन कविता का अध्ययन यही साबित करती है कि समकालीन परिवेश में प्रकृति-शोषण उसकी चरम अवस्था तक पहूँच गयी है। भूमण्डलीकरण, उपभोगवाद तथा बाज़ारवाद के सम्मिलित रूप विज्ञान तथा तकनीकी की सहायता से प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर रहे हैं। सृजनात्मक व्यक्तित्व उनकी साज़िशों से अच्छी तरह वाकिफ़ हैं। क्योंकि कवि अपनी लेखनी का कच्चा माल परिवेश से ही लेता है। समकालीन कविता प्रकृति शोषण को विस्तार के साथ अभिव्यक्ति देती है। इसके तहत विकास परियोजनाओं से जन्मी पारिस्थितिक समस्यायें, प्रकृति में हस्तक्षेप के कारण होनेवाले पारिस्थितिक संकट, खेती से जुडी हुई समस्यायें, जैवसंपदा का शोषण आदि विषयों पर चर्चा की गयी हैं। ये कविताएँ पारिस्थितिक सजगता की माँग करती हैं। साथ ही मानव तथा प्रकृति विरोधी माहौल का भीषण यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

❖❖❖

पाँचवाँ अध्याय

समकालीन कविता में पारिस्थितिक चिंतन एवं प्रतिरोध के विभिन्न रूप

पाँचवाँ अध्याय
समकालीन कविता में पारिस्थितिक चिंतन एवं प्रतिरोध के विभिन्न रूप

भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है। इस संक्रमण में भारतीय समाज की कायापलट हो रही है। जातीय विविधता को खोकर प्रत्येक समाज एकल जीवन रीति अपनाने लगा है। यह नवीन रीति पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति प्रदत्त है। ऐसे में भारतीय समाज दुविधा में पड़ गया है। हमारा समाज नवोत्थान मूल्यों के बलबूते पर अपनी जातीय अस्मिता बरकरार रखने की जद्दोजहद कर रही थी। लेकिन इसको तहस-नहस करते हुए एक नयी पीढ़ी उभर कर आ रही है बल्कि यही कहना पड़ेगा कि आ गयी है। खाने-पीने से लेकर वेश-भूषा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार तक प्रत्येक व्यक्ति में यह परिवर्तन दृश्यमान है। हर एक व्यक्ति 'ब्रैन्डेड़' चीज़ों के पीछे है। असल में यह एक साँस्कृतिक विसंगति है जो हमारे नैतिक मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगा रही है। श्यमाचरण दुबे ने इसे संक्रमण की पीडा की संज्ञा देकर लिखा है : "एक ही समय में दो विपरीत ध्रुवों के आकर्षण ने उसमें लक्ष्य सम्भ्रम उत्पन्न कर दिया है और साधनों की नैतिकता को संशय के घेरे में खडा कर दिया है। एक ओर पश्चिम की जीवन-शैली का सम्मोहन है, दूसरी ओर अपनी साँस्कृतिक अस्मिता के आग्रह हैं।"[1] दुविधा ग्रस्त इस समाज से सामाजिक

---

1. श्यामाचरण दुबे - संक्रमण की पीडा - पृ. 23

विवेक, पारस्परिक सरोकार तथा मूल्यों का गायब होना स्वाभाविक है। लेकिन प्रतिरोध ज़ारी है।

यह भोगवादी समाज पश्चिम के अनुकरण करते करते नए-नए उत्पन्नों का अधिक से अधिक उपभोग करने की चाहत में है। सुविधा संपन्न घर, जल्दी पैसा कमाने की लालच जैसे अनगिनत चाहतों की भाग दौड़ में उसमें ऐसी मानसिकता पनप उठी है जिसमें प्रदर्शन और प्रतिस्पर्धा का भाव अंतर्निहित होता है। अपने जीवन-परिवेश के प्रति उसका नज़रिया भी इससे मिलता-जुलता है। सब उपयोग की चीज़ से भोग की वस्तु हो गयी हैं। प्रकृति भी उनके लिए भोग्या है। प्रकृति का, प्राकृतिक चीज़ों का इस्तेमाल इसी मानसिकता के साथ वह करता है। बाज़ारीकरण की दुनिया में जीनेवाला यह समाज प्रकृति के बाज़ारीकरण को दोनों हाथों से स्वीकारता है। गंगा साबुन, मैंगो फ्रूटी, बोतल का पानी इत्यादि के खरीद एवं उपयोग में वह परहेज़ नहीं करता। प्रकृति का या पारिस्थितिक बोध की सही पहचान वर्तमान समाज को नहीं है। परिवेश का दबाव उसमें यह भाव जगाता भी नहीं है। हरिराम मीणा लिखते हैं "आम आदमी के विरुद्ध भूमंड़लीकरण, उदारवाद, खुली अर्थ व्यवस्था, बाज़ारवाद-वस्तुवाद-विज्ञापनवाद, अमरीका की अगुवाई में फैलने वाला नव साम्राज्यवाद, उत्तर आधुनिकता का मुखौटा पहनकर बढ़ रही मूल्य-शील-सिद्धांतविहीन पाश्चात्य संस्कृति (जिसे हम अपसंस्कृति कहते हैं) आदि जो कुछ भी परिवर्तन बहुत तेजी से हो रहे हैं उन सबका प्रतिरोध लोकोन्मुखी हिंदी कविता में हो रहा है।"[1] समकालीन हिन्दी कविता का यह प्रतिरोधी स्वर पारिस्थितिक-संतुलन बिगाड़नेवाले क्रिया कलापों के विरुद्ध भी दर्ज़ हुआ है।

1. सं. मानिक बच्छावत - समकालीन सृजन : कविता इस समय - पृ. 30

5.1 नवीन जीवन रीति के प्रति सजगता

समाज हमेशा गतिशील रहता है बतौर संस्कृति भी। जनसंख्या का घनत्व, पर्यावरण में परिवर्तन, प्रौद्योगिक संभावनाओं और आकांक्षाओं के नए क्षितिज समाज की संरचना और उनके मूल्यात्मक आधार को नयी दिशा और गति दे रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की गति कभी-कभी इतनी तीव्र हो जाती है कि सामाजिक गठन और सांस्कृतिक मूल्य उसके साथ कदम मिलाकर नहीं चल पाते। जीवन के इन पक्षों में तादात्म्य और समरसता का अभाव समाज में अनेक विसंगतियाँ और विकृतियाँ उत्पन्न करते हैं। प्रौद्योगिक विकास पर टिकी आर्थिक विकास ने मनुष्य के सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में संवेदनशीलता पैदा की है। पारिस्थितिकी की समस्या को भी इसी दृष्टि से देखने-परखने की आवश्यकता है।

बदलते युग में संस्कृति के ह्रास को एक गम्भीर समस्या के रूप में देखना चाहिए। समय-समय पर अनुकरण की संस्कृति के विरुद्ध परम्परा और संस्कृति की तीव्र प्रतिक्रिया होती रही है। अपसंस्कृतिक के भार ने हमारी संस्कृति और परंपरा को एकदम झपटा कर दिया है। महत्वपूर्ण बात यह भी है कि हमारी संस्कृति और परंपरा के किसी भी अंश को यह नकारता नहीं है। बल्कि इसे भी अर्थ कमाने के साधन में तब्दील कर देती है। बदलते समय और परिवेश के अनुसार हमारी जीवन-शैली भी काफी बदल गयी है। अंजाने में तो सही इस बदलाव से हम मिल-जुल गये हैं। इस अपसंस्कृति के विरोध में जातीय अस्मिता और संस्कृति को बरकरार रखने का प्रयास कहीं-कहीं हो रहा है। कला और साहित्य की कोशिश भी

यही है। एक ओर वे खुद इस अपसंस्कृति के शिकार हैं तो दूसरी ओर इसके खिलाफ़ लड़ भी रहे हैं।

साहित्य और कला यहाँ तक विज्ञान और तकनीकी भी प्रकृति की तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा की बातें उठाते हैं। पारिस्थितिक बोध जगाने के प्रयास में ये जुडे हुए हैं। यहाँ तक कि राजनीतिक क्षेत्र ने भी इस समस्या को गंभीर ढंग से अपना लिया है। इसलिए आजकल पारिस्थितिकी के विषय को लेकर काफ़ी शोर हो रहा है। प्रकृति और पारिस्थितिकी की सुरक्षा के लिए बहुत सारी योजनाएँ बना रही हैं और इन योजनाओं को सामाजिक स्तर पर कार्यान्वयन कराने का कई कदम भी उठा रहे हैं। हरित राजनीति का आविर्भाव अलग रूप से हुआ है। इसके तहत अनेक कार्य प्रणालियाँ हो रही हैं जिनका प्रभाव सामाजिक, साँस्कृतिक क्षेत्र में झलक भी रहा है।

5.2 हरित राजनीति और विकसित देशों की साज़िश

विगत कई वर्षों से प्रकृति की सुरक्षा तथा पारिस्थितिकी संरक्षण की आवश्यकता को लेकर जन चेतना काफ़ी जागृत हो गयी है। राजनीति में इस विषय का सक्रिय प्रवेश हो चुका है। कई देशों में पारिस्थितिक सुरक्षा चुनावी मुद्दा बन गयी है। सन् 1972 में स्टाकहॉम में प्रथम पृथ्वी शिखर सम्मेलन का आयोजन हुआ था। संभवतः यह संयुक्त रूप से विकसित व विकासशील देशों का पहला राजनीतिक प्रयास था। स्टाकहॉम सम्मेलन में पारिस्थितिकी और विकास को लेकर काफ़ी चर्चा हुई। सन् 1974 में UNCTAN और UNEP ने मिलकर मेक्सिको में यह

घोषणा की कि पारिस्थितिकी और विकास एक ही सिक्के के दो भिन्न पहलुएँ हैं। इस घोषणा से अमरीका जैसे औद्योगिक राष्ट्र बेचैन हो गये और उन्होंने संघ पर अपना दबाव डाला।

सन् 1992 में रियो दि जनेवा में हुई पर्यावरण की राजनीतिक सम्मेलन में संतुलित विकास के लिए विकसित देशों का पैसा देने की बात उठायी गयी। इस सम्मेलन में विकासशील देशों ने प्रदूषण विहीन विकास के लिए वित्तीय सहायता की माँग की। लेकिन अमरीका ने इन मुद्दों पर निर्णय लेने में हिचकिचा। क्योंकि उस समय जॉर्ज बुश कोई ऐसा अंतर्राष्ट्रीय वादा नहीं करना चाहते थे। जिसके कारण उनके स्वदेश में चुनाव में कोई फर्क पड़े। जैव-विविधता पर हुई चर्चा जैव तकनीकी द्वारा भविष्य में होनेवाले धावा पर आशंका प्रकट की।

देखना चाहिए कि अधिकांशतः विदेशी कंपनियों ने वनस्पति पर शोध का हक जमा लिया है। संधि-पत्र के अनुसार संबंधित देशों को उनकी प्राकृतिक नुकसान के लिए मुआवज़ा दिया जाना चाहिए। सिर्फ यही नहीं जिस देश की वनस्पति पर शोध किया गया हो उस देश को भी उसमें भागीदार बनाना आवश्यक था। किंतु अमरीका ने उसे अपनी बौद्धिक संपदा का हनन मानते हुए संधि-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये। विकासशील एवं तीसरी दुनिया के देश इस तरह के संधि-पत्रों पर हस्ताक्षर करके विकसित देशों के शोषण का शिकार बन जाते हैं। विकसित देश पर्यावरण के निरंतर विनाश के लिए जनसंख्या विस्फोट तथा गरीबी को ज़िम्मेदार ठहराते हुए इसका सारा दोष गरीब देशों पर ड़ालना चाहते हैं। प्राकृतिक संसाधनों का सबसे अधिक उपभोग विकसित देशों द्वारा होते हैं। किन्तु इस तथ्य को वे कभी भी

स्वीकारते नहीं। उसी प्रकार प्रदूषण का सबसे अधिक ज़िम्मेदार इन्हीं राष्ट्र हैं। ये देश उनके यहाँ के कूड़ा-करकट गरीब देशों में धकेलकर वहाँ के पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। विकसित देश विकासशील तथा अन्य तीसरी दुनिया के देशों पर अपना कब्ज़ा कायम रखने के लिए इस तरह की कई कूटनीतियाँ अपनाती रहती हैं।

गरीबी और पारिस्थितिकी का अंतःसंबन्ध गौर करने की बात है। विकासशील तथा तीसरी दुनिया के देशों की सबसे बडी समस्या लोगों को शुद्ध जल मुहैया कराना है। पानी से होनेवाले रोगों से निजात दिलाना उनके लिए जोखिम का काम है। यह एक दर्दनाक सच्चाई है कि पारिस्थितिक असन्तुलन के जिम्मेदार तत्व असल में भूखमरी तथा आवास-विहीनता है। उजड़ती प्राकृतिक संपदा, बढ़ती गंदी बस्तियाँ, साफ-सफाई की कमी आदि के कारण गरीब देशों में प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है। अर्थात् गरीबी, पर्यावरण की कुछ ऐसी समस्याओं को जन्म देती है जिससे गरीबी और बढ़ती है। उदाहरण के लिए गरीब किसानों द्वारा कमज़ोर ज़मीन पर खेती करने से उसका क्षरण और भी बढ़ जाता है। गरीबों द्वारा जंगल की लकडी शहर जाकर बेचने से जंगल नष्ट हो जाता है साथ ही जलाऊ लकडी की कमी भी होती है। अतिरिक्त इसके सामाजिक आर्थिक स्तर पर सबसे पिछडे होने के कारण उन्हें हर तरह की तकलीफ़ों का सबसे बुरा हिस्सा सहना पड़ता है। इसलिए उनके हिस्से आनेवाले प्रदूषण भी भयानक होता है। वर्तमान समय में विकासशील तथा तीसरी दुनिया के देशों की नियति यही बन गयी है। दरअसल विकसित देशों के आर्थिक नीतियों और शर्तों को स्वीकारने के लिए ये देश मज़बूर है।

हमारे देश में भी पर्यावरण की राजनीति दो प्रकार से मुखरित हुई है। एक पक्ष तो राजनीतिक स्वार्थता से प्रेरित रहा है तो दूसरा पक्ष जनता के हितों से प्रेरित है। राजनीतिक स्वार्थों के कारण हमारे देश में असंख्य परियोजनाएँ आधे-अधूरे पडे हैं। ये परियोजनाएँ अनेक पर्यावरणीय समस्यायें पैदा कर रही हैं। नलकूप परियोजना हो या कारखानों की स्थापना उसमें अंतर्निहित निजी स्वार्थता के कारण प्रकृति, पर्यावरण तथा मनुष्य पर बुरा असर पड़ रहा है। भारत में विभिन्न वन नीतियों के चलते हुए भी सरकार द्वारा अत्यधिक धनोपार्जन के लिए बड़े पैमाने पर वनों को काटा जा रहा है।

यह स्वार्थपरकता जब अपना हद पार करने लगा तब समाज सुधारकों, पारिस्थितिक कार्यकर्ताओं तथा महिलाओं को पर्यावरण की रक्षा के लिए आन्दोलन चलाना पड़ा। भारत के प्रमुख पारिस्थितिक जन आन्दोलनों के परिप्रेक्ष्य में, सरकार की इस निजी स्वार्थपरकता के विरोध में प्रतिरोध की भावना प्रकट की गयी है।

5.3 समकालीन कविता में हरित राजनीति का सामाजिक तथा साँस्कृतिक प्रतिरोध

हरित राजनीति आधुनिक सभ्यता के पारिस्थितिकी विरोधी सभी तत्वों और औज़ारों का प्रतिरोध करती है। इस प्रतिरोध को सही दिशा और दशा देने के लिए पारिस्थितिक अवबोध की सख्त ज़रूरत है। इस विषय का सामाजिक, साँस्कृतिक स्तर पर होनेवाले प्रभावों का भी विचार-विमर्श की आवश्यकता है। समकालीन हिन्दी कविता पर्यावरण की राजनीति में छिपे स्वार्थी भावनाओं का पर्दाफाश करती है।

एकान्त श्रीवास्तव ने विकसित देशों के दोहरे बर्ताव का पर्दाफाश 'हस्ताक्षर' कविता में किया है। गैट समझौते में भारत ने हस्ताक्षर किया था। प्रस्तुत कविता में इस साज़िश की संभाव्य विभीषिकाओं का ज़िक्र मिलता है :

"सिर्फ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और नीली पड जाती है धरती की देह
बुझ जाता है चाँद
सूख जाती हैं नदियाँ
अदृश्य हो जाते हैं हरे-भरे खेत
सिर्फ एक हस्ताक्षर किया जाता है
और एक बाघ की दहाड सुनाई देती है
उड जाते सारे सगुन पंछी।"[1]

गैट जैसे सन्धि-पत्रों के ज़रिए विकसित देश, विकासशील देशों पर अपना वर्चस्व बरकरार रखना चाहते हैं। इसके लिए वे कई तरीके अपनाते हैं। सन्धि-पत्रों में हस्ताक्षर करके विकासशील देश विकसित देशों के शोषण के शिकार हो जाते हैं। फिर इन देशों के प्राकृतिक तथा जैविक संपदा पर वार करना उनके लिए आसान कार्य हो जाता है। चन्द्रकान्त देवताले की 'पत्थर फेंक रहा हूँ मैं' कविता हमारे देश में व्याप्त राजनीतिक साँठ-गाँठ का पर्दाफाश करती है। इस तरह की दुरभिसन्धियाँ हमारी प्रकृति और पारिस्थितिकी के लिए हानिकारक साबित हो रही हैं। कविता इस सच्चाई का उद्‌घाटन करती है :

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद - पृ. 83

"सुंदरवन में बाघों की गिनती होगी
बारनवापारा में बढ़ा-चढ़ाकर बतायी जाती है इनकी संख्या
पिछले दो सालों में
सरिस्का में दस बाघ मारे गए
वैसे कहने को अवैध शिकारियों से मुक्त हैं हमारे जंगल।"[1]

कविता-सरकार, स्थानीय नेताओं और वन माफियों के बीच के अवैध संबंध का पोल खोलकर रखती है। ये लोग अकसर जनता के आँखों में धूल डालते रहते हैं और गलत सूचनाएँ देती रहती हैं। कविता इस पर करारा व्यंग्य करती है।

सुदीप बैनर्जी ने 'जंगल अगर गए थे' में जंगल की कटाई के विरुद्ध आवाज़ उठायी है। कवि पूछता है कि जंगल को इस तरह काटकर चीज़ें बनाने का अधिकार किसने दिया?

"जंगल अगर गए थे तो फिर
क्यों लौटे राजधानी में?
पेडों को कहा शजर आपने
दरख्त कहा, झाड कहा पर वे
टाल बन गए ईंधन के, इमारती
लकडी के पीठे बन गए।"[2]

पेड़ जैसे प्राकृतिक चीज़ों के अस्तित्व पर कुल्हाड़ी मारने की पाश्विक वृत्ति का खुलकर विरोध कविता द्वारा ज़ाहिर होता है। प्रस्तुत कविता उपभोगवादी

---

1. सं. मातिक बच्छावत - समकालीन सृजन : कविता इस समय - पृ. 61
2. नवल शुक्ल - दसों दिशाओं में - पृ. 59

संस्कृति के तहत, जंगल जैसे प्राकृतिक संसाधनों की चीज़ों में तब्दील होने की प्रवृत्ति का प्रतिरोध करती है।

'जंगल पर उड़ता हवाई जहाज़' में नवल शुक्ल ने आदिवासी इलाके के विकास गति-विधियों पर प्रकाश डाला है। इस द्वारा कवि जंगलीपन की संस्कृति की तबाही का ब्योरा प्रस्तुत करता है। कविता इस तरह की विकास-प्रणालियों को आदिवासी समूह के पक्ष में खड़े होकर देखना चाहती है। कविता की पक्षधरता आदिवासी लड़के के बयान के रूप में यों दर्ज होती है :

> "मैं ने नहीं देखा अपना ब्लाक
> अपनी महसील, अपना जिला
> अपनी सडक, अपने जंगल और जंगल पर उडता हवाई जहाज-
> देखा है मैंने
> मेरा देश कहाँ है, मुझे नहीं मालूम
> पर मैं वहाँ का रहने वाला हूँ।"[1]

कविता दो तथ्यों को उजागर करती है। एक तो राजनीतिक क्षेत्र की साँठ-गाँठ है तो दूसरा आदिम संस्कृतियों का ह्रास जो सबसे अहम मुद्दा भी है। दरअसल "सच तो यह है कि विकास की विशिष्ट योजनाएँ - औद्योगीकरण, जल-विद्युत परियोजनाएं, सिंचाई के बड़े बाँध, खनिज, उत्खनन, आदि उन्हें विस्थापित करती हैं, उनकी सामाजिकता का ह्रास करती हैं, पर्यावरण में उपलब्ध उनकी जीविका के साधनों से उन्हें वंचित करती है और थोड़ा-सा मुआवज़ा लेकर उन्हें अनिश्चय के

---

1. नवल शुक्ल - दसों दिशाओं में - पृ. 59

अंधेरे में धकेल देती है।"[1] समकालीन हिन्दी कविता व्यक्ति की सामाजिकता के ह्रास के ज़िम्मेदार कारकों का खुलकर विरोध करती हैं और उनके मार्ग में सशक्त प्रतिरोध खड़ी करती हैं। चर्चित कवितायें समकालीन हिन्दी कविता की हरित राजनीति का सामाजिक प्रतिरोध है ऐसा मानना समीचीत होगा।

भूमंड़लीकरण की आँधी में बहुत कुछ, जो रक्षणीय है तिनका-सा उड़ रहा है। उत्तर आधुनिक संस्कृतियों में भारतीय विवेक, धर्मनिरपेक्षता, विकासशील हिन्दी जातीयता - इसकी हिन्दी भाषा और इसके साहित्य और अन्य महत्वपूर्ण तत्व पिछड़ते जा रहे हैं। समकालीन समाज के साँस्कृतिक क्रियाकलापों में प्रकृति की भूमिका नगण्य हो गयी है। हमारी संस्कृति और परंपरा में अंतर्निहित प्रकृति-बोध जिसे आज हम पारिस्थितिक बोध कहते हैं गायब हो गया है। इसके विरोध में समकालीन कविता का साँस्कृतिक प्रतिरोध उनकी पक्षधरता का परिचायक है। निर्मल वर्मा ने लिखा है : "भारतीय संस्कृति अपनी परंपरागत स्मृतियों और आस्थाओं के साथ आज भी बची है - किंतु किसी संस्कृति का बचे रहने का प्रमाण उसके जीवित रहने का प्रमाण नहीं बनता - वह तभी बनता है जब वह मनुष्य के संबंध में अहंग्रस्त, चालू अवधारणाओं को चुनौती देने की सामर्थ्य जुटा सकें।"[2] मनुष्य की स्वार्थी अहंग्रस्त भावना ने ही मौजूदा प्रकृति तथा मानव विरोधी माहौल को पैदा किया है। समकालीन कविता का प्रयास इसलिए इस ओर है कि मनुष्य की अहंग्रस्त भावना को चुनौती दे सकें और नैतिक तथा मानवीय मूल्यों से संपृक्त संस्कृति की ओर मनुष्य राशी को अग्रसर कर सकें। निसंदेह समकालीन कविता के लिए यह जोखिम भरा काम है।

1. श्यामाचरण दुबे - संक्रमण की पीडा - पृ.
2. निर्मल वर्मा - आदि, अन्त और आरम्भ - पृ. 8672

भारत की साँस्कृतिक विशिष्टता उसके धार्मिक अनुष्ठानों में पायी जाती है। हमारे यहाँ के यज्ञ, पर्व, उत्सव जैसे अनुष्ठान प्राकृतिक नियमों तथा परिवेश से आबद्ध हैं। दरअसल यह त्योहार ॠतु परिवर्तन का द्योतक है। जैसे कि दीपावली वर्षान्त की तथा शरदागमन की सूचना देती है और होली ग्रीष्म की ओर संकेत है। अर्थात् हर त्योहार प्रकृति की निकटता को तथा मानव के साथ उसके रागात्मक संबंधों को दर्शाता है। भले ही आजकल इन त्योहारों में 'ग्लोबल' प्रभाव आ गया है और वे मनुष्य की आस्था और उसके विश्वासों से दूर भी हो गये हैं फिर भी कहीं न कहीं जनमानस में ये त्योहार अब भी उसकी रागात्मक भावनाओं के साथ जुड़े रहते हैं। एकान्त श्रीवास्तव की 'कार्तिक पूर्णिमा', 'कार्तिक स्नान करनेवाली लड़कियाँ' जैसी कवितायें मनुष्य की ऐसी कोमल तथा मानवीय भावनाओं की संप्रेषण करती हैं। इसके द्वारा ये कवितायें समकालीन कविता का साँस्कृतिक प्रतिरोध ज़ाहिर करती हैं। प्रस्तुत कवितायें लोकजीवन में प्रकृति की अहमियता को दर्शाती भी हैं।

लोग काँस के दोने में दिये और फूल भरकर अपनी मन्नतों की पूर्ति के लिए उसे नदी में बहाते हैं। दूर से देखने पर टिमटिमाते दीपों के टेढ़े-मेढ़े रास्ते कवि को कबीर की ढ़ाई अक्षर सा दिखते हैं। इस पूरे दृश्य का आनन्द उठाते हुए प्रकृति और गाँव भी उसका साथ देते हैं। इस सुन्दर दृश्य को कवि ने यों उकेरा है :

"देख रहे हैं काँस के फूल
खेतों की मेडों पर खड़े
दूर से यह उत्सव

चमक रहा है गाँव
जैसे नागकेसर धान से
भरा हुआ हो काँस का कटोरा"[1]

समकालीन कविता के साँस्कृतिक प्रतिरोध की अभिव्यक्ति केवल धार्मिक अनुष्ठानों में सीमित नहीं है। इसका व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रकृति और पारिस्थितिकी को मनुष्य के सभी साँस्कृतिक क्रियाकलापों के साथ जोड़ने में भी विद्यमान है। वृक्षों की पूजा-आराधना द्वारा पेड़ों की रक्षा करने की मनोभावना इसीका द्योतक है। नदी की सुरक्षा एवं उसे स्वच्छ रखने के मनुष्य के दायित्व के प्रति समकालीन कविता ज़ोर देती है। एकान्त श्रीवास्तव, देवी प्रसाद मिश्र, ज्ञानेन्द्रपति, लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में कविता के इस साँस्कृतिक प्रतिरोध स्पष्ट दिखाई देता है।

प्राकृतिक वस्तु का मानव जीवन के साथ सीधा संबंध है जैसे कि नदी हमारी जीवनधारा है, पेड़ मानव के अग्रज और पृथ्वी के वंशज है। पारिस्थितिकी का साँस्कृतिक प्रतिरोध का गंतव्य प्रकृति के साथ मिल जुलकर जीने की संस्कृति की ओर मानव समाज को अग्रसर करना है। समकालीन कविता के पारिस्थितिक अध्ययन में सूर्य, चन्द्र, नदी, पहाड़, पौधे, चिडियाँ, जानवर, गाँव, खेती जैसे प्राकृतिक उपादानों की प्रस्तुति, कविता के इस साँस्कृतिक प्रतिरोध का द्योतक हैं।

5.4 रोदन, प्रतिरोध तथा उम्मीद की कविताएँ

समकालीन कविता के अंतर्गत कुछ कविताएं प्रकृति-शोषण के विरुद्ध समकालीन कवि के रोदन की तरह गूँज उठती हैं। धरती की बुरी नियति तय करने

1. एकान्त श्रीवास्तव - अन्न हैं मेरे शब्द - पृ. 15

में मनुष्य ही ज़िम्मेदार है। उसने प्रकृति का बलात्कार किया, और प्राकृतिक संसाधनों की लुटाई की और लालसा में धरती को ज़ख्म कर दिया। धरती के सभी साधन मनुष्य के लिए भी हैं। फिर भी कृतघ्न मानव प्रकृति और धरती का विनाश रच रहा है। समकालीन कवि मनुष्य के प्रकृति विरोधी करतूतों से बेहद दुःखी है। अनिता वर्मा की 'पृथ्वी' कविता कवि मन की इस पीड़ा को अच्छी तरह रेखांकित करती है :

"हमने तुम्हें नहीं रखा हरा-भरा
बहुत शोर पैदा कर दिया।
नदियों को बाँधा और डूबो दी धरती
अब हम उन्नत हैं
रहा नहीं कोई चारा
नीचे गिरने के सिवा!"[1]

स्वप्निल श्रीवास्तव प्रकृति के साथ होने वाले अत्याचार को मनुष्यता के खोने के साथ जोड़कर देखना चाहते हैं। 'साधु : दो' कविता में उनका रुदन एक साथ प्रकृति और मानवता के लिए प्रतिध्वनित होता है :

"पृथ्वी से विदा हो रही
है शांति
आसमान से रंग
जमीन से गंध

---

1. अनिता वर्मा - एक जन्म में सब - पृ. 93

पेडों से बसंत के फूल
बिदा हो रहे है
किसकी कुल्हाडी हमें हमारे कंधे
पर बैठकर काट रही है
हम हो रहे हैं धाराशायी
किसके दुख से हम कर रहे
हैं विलाप।"[1]

समकालीन कवि का यह विलाप यहाँ रुकते नहीं। आगे भी वे लिखते हैं - "जब जब हृदय मनुष्य का हुआ रिक्त / निर्झर से, बजी चट्टानें, पुलिन रेत / में झाऊ सूखी, मुर्झाया खेत / आँगन में, ऐसा सुंदर नभ असित / हुआ खंड खंड दिखते हम सब / अलग अलग बिजका से अंधकार में / चीखे एकाकी, सुन विचार में / चौकन्ने हैं, दिखी हरीतिमा कब।"[2] विजेन्द्र की ये पंक्तियाँ धीरे-धीरे हमारी ज़िन्दगी से दूर होते जाते प्राकृतिक दृश्यों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करती हैं। समकालीन कवि का यह विलाप, प्रकृति की, पारिस्थितिकी की रक्षा की बात उठाता है। गौर करने की बात यह भी है कि समकालीन कवि अपनी प्रतिक्रिया केवल रुदाई में सीमित नहीं रखते इससे बहुत आगे कदम बढ़ाकर प्रकृति शोषण के खिलाफ सशक्त प्रतिरोध दर्ज भी करते हैं।

ज्ञानेन्द्रपति की 'पेड़ों का पक्ष', बद्रीनारायण की 'पेडों की शोकसभा', प्रियंकर पालीवाल की 'सबसे बुरा दिन', प्रीता भार्गव की 'सारे बाँध', मदन कश्यप

1. स्वप्निल श्रीवास्तव - मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए - पृ. 52
2. विजेन्द्र - उदित क्षितिज पर

की ‘बचे हुए शब्द’, सुहैल अख्तर की ‘बचाना है’, अनिता वर्मा की ‘एक जन्म में सब’, नंद चतुर्वेदी की ‘तुम्हारे लिए मैं नहीं लिखूँगा सोने की चिडिया’ और ‘यह समय मामूली नहीं’ जैसी कविताएँ प्रकृति विरोधी मानवीय रवैया का सशक्त प्रतिरोध करती हैं।

पृथ्वी और प्रकृति को बचाने की आवाज़ प्रतिरोधात्मक ढंग से समकालीन कविता में अभिव्यक्त हुई है। ज्ञानेन्द्रपति ने काटे जा रहे पेडों के पक्ष में खड़े होकर कुल्हाडियों और अरियों को कोसकर कविताएँ लिखने की बात उठायी हैं। सुहैल अख्तर और मदन कश्यप मिट्टी, पानी, बयार, दरख्त, पंछी, नदियाँ, फल, फूल, पहाड़, समुद्र, जंगल, जानवर सबको बचाने का वचन करते हैं। कवि के बचे हुए शब्द इनके लिए समर्पित हैं :

“बचे हुए शब्द
थल को
जल को
हवा को
अग्नि को
आकाश को
लगातार करते रहते हैं उद्वेलित”[1]

प्रीता भार्गव ने नदी के पक्ष में खड़े होकर नदी शोषण के विरोध में प्रतिरोध दर्ज किया है। वह लिखती है कि बाँधों से नदी को बाँध नहीं सकते अंततः

---

1. मदन कश्यप - नीम रोशनी में - पृ. 40

नदी अपने लक्ष्य में ज़रूर पहूँचेगी चाहे बाँधों को तोडकर भी। अर्थात् नदी को अपने गन्तव्य तक पहूँचने में कोई भी रोक नहीं सकते। नंद चतुर्वेदी 'तुम्हारे लिए मैं नहीं लिखूँगा सोने की चिडिया' कविता द्वारा प्रतिरोध यों प्रकट करते हैं :

"जो अनिश्चित जगह पर
अपनी पृथ्वी को बचाने
निश्चय के साथ अडिग खडे हैं
उन तमाम उद्विग्न, संशय-ग्रस्त
लोगों के साथ
मेरे देश
मैं तुम्हें संबोधित करता हूँ
उल्लासमय क्षितिजों
असंख्य लहरों वाले समुद्र के लिए"[1]

समकालीन कविता की प्रतिरोधी भावनाओं की ज्वलंत अभिव्यक्ति बद्री नारायण की 'पेड की शोक सभा' में मिलती है। कविता पारिस्थितिकी के विषय से जुड़ी हुई बहुत सारी समस्याओं को दर्शाती है। इसमें अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वाले एक पेड का चित्रण हुआ है। वर्तमान प्रकृति विरोधी सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था को चुनौती देकर पेड अपने पत्ते, हरियाली और आज़ादी के लिए संघर्ष करता है :

---

1. नंद चतुर्वेदी - उत्सव का निर्मम समय - पृ. 77

"वह लड रहा था
अपने पत्तों के लिए
अपने चिडियों के लिए लड रहा था,
वह लड रहा था अपनी हरियाली के लिए
अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहा था"[1]

अपने इस संघर्ष में पेड़ किसान और आदिवासियों को आमंत्रित करता है क्योंकि उनका अस्तित्व भी पेडों की तरह खतरे में हैं। उनके इस संघर्ष को समर्थन देने के लिए बुद्धिजीवियों और समाजशास्त्रियों की सह-भागीदारिता की आवश्यकता पर भी कविता ज़ोर देती है :

"किसान आएँ! जिनकी भूमि खतरे में है
आदिवासी आएँ! जिनके खदान खतरे में है
वे बौद्धिक आयें, जो नागरिक नुमा
बौद्धिकता की रूमाल से
अपने नाक ढँकने की आदत से अभी तक बचे रहे हैं
आयें! वे समाजसास्त्री भी, जो राज्य की हिंसा
गौरवान्वयन के अभियान की जद में अभी तक नहीं आए हैं।"[2]

यद्‍यपि समकालीन कवि मौजूदा प्रकृति विरोधी माहौल को लेकर हदाशय है फिर भी उम्मीद की किरणें उनमें अब भी बची हुई हैं। तमाम अन्तर्विरोधों के बावजूद वे यह विश्वास और आस्था रखते हैं कि प्रकृति की हरियाली, चिड़ियों का

1. पेड की शोकसभा - बद्री नारायण, नया ज्ञानोदय, अंक 87, मई 2010 - पृ. 43
2. वही

क्रन्दन, वर्षा की बूँदें, मौसम का स्पर्श, फूल-फलों के बगीचे, नदियाँ, झरने, सूर्य की किरणें, चन्द्रमा सब के सब पृथ्वी में बचे रहें हमारे लिए तथा दूसरे जीवों के लिए। दिनेश कुशवाह की 'वे अब भी सदाशय है इस धरती के प्रति', केदारनाथ सिंह की 'पृथ्वी रहेगी', नरेश सक्सेना की 'एक वृक्ष भी बचा रहे, इब्बार रब्बी की 'ठहर जाना', नंद चतुर्वेदी की 'यह समय मामूली नहीं' जैसी कविताएं इसी आस्था और अडिग विश्वास के साथ अवतरित होती हैं। वास्तविक यथार्थों से दूर होने के बावजूद भी ये कविताएँ भारतीय संस्कृति का द्योतक हैं, जो किसी भी विद्रूपताओं में भी उम्मीद का स्वर नहीं छोडती। केदार नाथ सिंह की 'पृथ्वी रहेगी' कविता समकालीन कवि के इस विश्वास को और भी मज़बूत करती है :

"मुझे विश्वास है
यह पृथ्वी
यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में
यह रहेगी जैसे पेड के तने में
रहते हैं दीमक
जैसे दाने में रह लेता है घुन
यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अन्दर
यदि और कहीं नहीं तो मेरी ज़बान
और मेरी नश्वरता में
यह रहेगी
और एक सुबह मैं उठूँगा
मैं उठूँगा पृथ्वी-समेत
जल और कच्छप-समेत मैं उठूँगा

मैं उठूँगा और चल दूँगा उससे मिलने
जिससे वादा है
कि मिलूँगा"[1]

नरेश सक्सेना की कविता 'एक वृक्ष भी बचा रहे' में कवि पेड़ की रक्षा करना चाहते हैं किसी भी मूल्य पर। दाह संस्कार के लिए भी वे पेड काटना नहीं चाहते हैं। पेड की रक्षा को वे अगली पीढ़ी की रक्षा के साथ जोड़ते हैं :

"अंतिम समय जब कोई नहीं जायेगा साथ
एक वृक्ष जायेगा
अपनी गौरैयों - गिलहरियों से बिछुडकर
साथ जायेगा एक वृक्ष
....
लिखता हूँ अंतिम इच्छाओं में
कि बिजली के दाहघर में हो मेरा संस्कार
ताकि मेरे बाद
एक बेटे और एक बेटी के साथ
एक वृक्ष भी बचा रहे संसार में।"[2]

नंद चतुर्वेदी की 'यह समय मामूल नहीं' कविता वर्तमान समय की जर्जर परिस्थितियों की ओर नज़र डालती है। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी कवि उम्मीद छोडते नहीं और लिखते हैं "ज़मीन इस तरह तो प्यासी नहीं रहेगी / इस तरह तो लोग नहीं देखेंगे / ऋतुओं का सर्वनाश / इस गैर-मामूली समय में /

---

1. केदारनाथ सिंह - यहाँ से देखो - पृ. 25
2. नरेश सक्सेना - समुद्र पर हो रही है बारिश - पृ. 35

इतिहास के बन्द किवाड खुलेंगे / पूरे के पूरे तालाब में / सहस्रों कमल तैरते हुए / फैल जाएँगे"[1] समकालीन कवि के इन सुनहरे सपनों को यथार्थ में परिणत कराने के लिए हर एक व्यक्ति की तरफ से कोशिशें ज़ारी रखना है। उपनिवेशवादी शक्तियाँ हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर कब्ज़ा कर रही हैं जैसे कि इब्बार रब्बी लिखते हैं "सीजन' आ गया है / वे आ रहे हैं / डालर हिलाते / येन उछालते"[2] इसलिए सावधान रखो हिलना मत वहीं ठहरजाना...

"नदियों, वही ठहर जाना
थम जाना वहीं फूल
रुकना ज़रा हवा
पहाड, ऐसे ही पडे रहो
रुकी रहो झीलो
पक्षियो, वहीं रहो
उडना उसी कोण पर
रुक जाना प्रकृति
बदलना नहीं।"[2]

संक्षेप में कहें तो समकालीन कवि का रोदन, प्रतिरोध और उनकी उम्मीद अंततः प्रकृति शोषण तथा प्रकृति के साथ हो रहे अत्याचारों के विरोध में उनके विद्रोह की बुलंद आवाज़ है। समकालीन कविता में यह आवाज़ कहीं कवि के विलाप के रूप में प्रकट होती है तो कहीं प्रतिरोध के सशक्त हथियार के रूप में।

1. नंद चतुर्वेदी - उत्सव का निर्मम समय - पृ. 86
2. इब्बार रब्बी - वर्षा में भीगकर - पृ. 60

समकालीन कवि की उम्मीदों के साथ भी कविताएँ प्रस्तुत होती हैं। अंततः इन्हें समकालीन कवि के पारिस्थितिक बोध तथा पारिस्थितिक चिन्तन के प्रतीक के रूप में परखा जाना चाहिए।

5.5 समकालीन कवियों का पारिस्थितिक चिंतन

समकालीन हिन्दी कविता के पारिस्थितिक बोध के विभिन्न आयामों को हमने देखा। प्रकृति और मनुष्य की आपसी लेन-देन और उनके सह-अस्तित्व दोनों के अस्तित्व का बुनियादी आधार है। पारिस्थितिकी की चर्चा, प्रकृति, पारिस्थितिकी तथा मनुष्य को केन्द्र में रखती है। प्रकृति की रक्षा या पारिस्थितिकी की सुरक्षा की चर्चा मनुष्य के बिना अधूरा है। इसलिए समकालीन कवि की सृजनात्मक अभिव्यक्तियाँ इन तीनों को केन्द्र में रखकर हुई हैं।

पारिस्थितिक कविता अब प्रौढ़ता की ओर बढ़ रही है। अब उसकी स्थिति काफी मज़बूत लगती है, और विवरणात्मकता से बचकर सुन्दर कविताएँ लिखी जा रही हैं। सौन्दर्य पक्ष पर बल देते समय भी वह अपने सामाजिक पक्ष को अनदेखा नहीं करती है, इस दृष्टि से ही वह पुरानी काल्पनिक प्रकृति संबन्धी कविताओं से पृथक दिखाई देती है।

अधिकतर कविताएँ प्रदूषण और प्रकृति-शोषण पर आधारित हैं। दर्शन की विभिन्न पहलुओं जैसे गहन पारिस्थितिकवाद, पारिस्थितिक स्त्रीवाद, पारिस्थितिक साम्यवाद आदि को छूनेवाली कविताएं कम ही लिखी गई हैं। पारिस्थितिक प्रतिरोध तथा उम्मीद की कविताएँ भी लिखी जा रही हैं। पारिस्थितिक बोध की अवधारणा

को उजागर करनेवाली अनेक कविताओं का सृजन समकालीन कवियों की ओर से हुई है। समकालीन हिन्दी कविता के लगभग सभी प्रतिष्ठित कवि पारिस्थितिकी से जुड़कर सभी मुद्दों को प्रस्तुत करके अपनी सृजनात्मक प्रतिबद्धता का प्रमाण देते हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता के संदर्भ में पारिस्थितिकी संबंधी वैज्ञानिक दृष्टिकोण सबसे पहले अज्ञेय ने प्रकट किया था। पारिस्थितिक विमर्श एक उत्तराधुनिक साहित्यिक विमर्श होने के बावजूद यह इतिहास और परंपरा से संबंध रखता है। हिन्दी काव्य जगत् में इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जाँच पड़ताल करें तो यह अध्ययन हमें अज्ञेय और प्रभाकर माचवे की रचनाओं की ओर ले जायेगा। अज्ञेय की 'असाध्यवीणा', 'औद्योगिक बस्ति', 'बावरा अहेरी', 'बन्धु हैं नदियाँ', हिरोशिमा, 'देश की कहानी : दादी की बयानी' जैसी कविताएँ और माचवे की 'निवेदन', 'घर' आदि कविताएँ पारिस्थितिक बोध के वैज्ञानिक धरातल को प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं।

अज्ञेय की हिरोशिमा और प्रभाकर माचवे की निवेदन कविताएँ युद्ध की विभीषिका और पारिस्थितिकी पर उसका प्रभाव, दर्शाती हैं। अज्ञेय की प्रकृति-पक्षधरता में "कहीं-कहीं प्रकृति जीवन का पक्ष लेने के लिए नागरिक सभ्यता और मशीन का विरोध मिलता है।"[1] 'साँप', 'हमारा देश', 'बावरा अहेरी', औद्योगिक बस्ती कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण रही हैं। ये कवितायें अज्ञेय की पर्यावरणीय चेतना को दर्शाती है। अज्ञेय की 'औद्योगिक बस्ति, और बावरा अहेरी' कविताएं

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी - अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - पृ. 11

औद्योगीकरण की 'विभीषिका को अभिव्यक्ति देती हैं। माचवे ने 'घर' कविता में मानव के भौतिक विकास की लालसा की ओर संकेत दिया है। अज्ञेय की 'बन्धु हैं नदियाँ' प्रकृति और मनुष्य के बीच के आपसी संबंध का द्योतक है। असाध्यवीणा में अज्ञेय ने अपने आत्मबोध को प्रकृति के साथ जोड़कर पारिस्थितिक दर्शन का उदात्त निदर्शन प्रस्तुत किया है। प्रकृति कवि में यह बोध भरती है कि संसार की हर वस्तु अपनी चेतना में विराटत्व का बोध देती है। अशेष सृष्टि के साथ गहरी रागात्मकता या सर्व व्याप्त सत्य के साथ अपने को निःशेष करने का यह दर्शन वास्तव में पारिस्थितिक दर्शन का मूल विचार है। कविता में इसकी अभिव्यक्ति कुछ इसप्रकार हुआ है :

"मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैं ने
सब कुछ को सौंप दिया था-
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ ही तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सबमें गाता है।"[1]

---

1. अज्ञेय - संचयिता - पृ. 121

'देश की कहानी : दादी की बयानी' कविता में अज्ञेय ने मनुष्य द्वारा फैले जानेवाले प्रदूषण को प्रस्तुत किया है :

"पहले यह देश बडा सुन्दर था।
हर जगह मनोरम थी।
एक-एक सुन्दर स्थल चुन कर
हिन्दुओं ने तीर्थ बनाये
जहाँ घनी बसाई हुई
गली-गली, नाके नुक्कड़
गन्दगी फैला दी।"[1]

आज प्रदूषण की यह समस्या दुनिया भर की कहानी बनती जा रही है। संक्षेप में देखा जाए तो अज्ञेय वह पहला कवि है जिनकी कविताओं में मानवीय जीवन परिस्थितियों को पारिस्थितिकी के संदर्भ में देखने-परखने का प्रयास हुआ है। गिरिजाकुमार माथुर और प्रभाकर माचवे इसी कोटि में आनेवाले अन्य प्रमुख कवि हैं। गिरिजाकुमार माथुर का 'कल्पान्तर' तथा प्रभाकर माचवे की 'विश्वकर्मा' पारिस्थितिक चिंतन से ओतप्रोत है।

उसी प्रकार मुक्तिबोध की 'बबूल' कविता किसान और प्रकृति के बीच के रागात्मक संबंध व्यक्त करती है। केदारनाथ अग्रवाल, केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन, नागार्जुन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानीप्रसाद मिश्र आदि कवियों ने भी प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंध की अनिवार्यता पर विचार किया है। त्रिलोचन की

---

1. अज्ञेय - क्योंकि मैं उसे जानता हूँ - पृ. 35

'नदी कामधेनु' कविता नदी शोषण की ओर इशारा करती है। भवानी प्रसाद मिश्र की 'छीनने आए हैं वे' कविता, हमारी भाषा, संस्कृति तथा प्राकृतिक संपदा को लूटने वाले औपनिवेशिक शक्तियों पर करारा व्यंग्य प्रस्तुत करती है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'जंगल का दर्द' एक पूरे जंगल का दर्द प्रस्तुत करती है। इसी परंपरा को आगे बढाते हुए प्रेमशंकर रघुवंशी, ज्ञानेन्द्रपति, राजेन्द्र उपाध्याय, अरुण कमल, लीलाधर जगूडी, लीलाधर मंडलोई, एकान्त श्रीवास्तव, देवी प्रसाद मिश्र, अर्चना वर्मा, निर्मला पुतुल, नीलेश रघुवंशी जैसे कवि समकालीन कविता के पारिस्थितिक दर्शन के विभिन्न पहलुओं की सशक्त और गंभीर विचार प्रस्तुत करते हैं।

विनय दुबे

विनय दुबे की कविताएँ प्रायः समाज, प्रकृति तथा घर परिवेश से जुड़ी रहती है। कवि के अनुसार हमारी ज़मीन तथा हमारा समाज हमारा अपना है। हमारी निजता और अस्तित्व इसी में निहित है। विनय दुबे की कविताएँ इसी निजता और अस्तित्व की तलाश में ऐसे ही समाज और ज़मीन की प्रतिष्ठा की बात करती हैं। कवि के पारिस्थितिक चिंतन का परिचय 'तत्रकुशलम' और 'खलल', काव्य संग्रहों से मिलता है। 'खलल' (1993) संकलन के 'युद्ध-एक', 'युद्ध-दो' कविताएँ युद्ध की विभीषिका, प्रकृति और पारिस्थितिकी पर उसके प्रभाव को दर्शाती हैं। जब कवि लिखते हैं : "नहीं मैं ने नहीं सुनी / वसंत की पदचाप / कि शुरू हो गया युद्ध / और चाँद तारों की ग़ालिब ग़ज़ल / हरी हरी दूब की सिहरन / बायीं जेब में रखे / प्रेम पत्र की इबारत / गर्मी की दुपहर में / नीम की छाँह / मिटा दिए गए सब

धाँय-धाँय।"[1] तब सहृदयों के दिलो दिमाग युद्ध से होने वाले पारिस्थितिक संकटों से अवगत हो जाते हैं। इसी संकलन की 'ढ़ाई बजे' भोपाल गैस त्रासदी के चित्रण प्रस्तुत करके बहुराष्ट्रीय कंपनियों की साज़िशों का पर्दाफाश करती है। पारिस्थितिक दुर्घटनाओं का मानव समाज पर पड़नेवाले प्रभाव की ओर भी कविता संकेत करती है। दूसरी कविता 'रोज़ रोज़' कवि के पारिस्थितिक चिंतन को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है। कविता एक ओर शहरी प्रदूषण का ब्योरा प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर कविता से, चिड़िया और बच्चे गुम हो जाने का गहरा दर्द भी व्यक्त करती है।

विनय दुबे का दूसरा काव्य संकलन तत्रकुशलम (2002) की कतिपय कविताएँ 'घर और उधर के बीच', 'भैंसे', 'अश्विनमास का कृष्णपक्ष', 'नदी के देस', '1999 का साल', 'मेरी कविता में' आदि कवि के पारिस्थितिक बोध से परिचय कराती हैं। 'घर और उधर के बीच' कविता एक स्वच्छ हरे-भरे वातावरण में जीने के कवि की ललक व्यक्त करती है। तभी तो कवि ने लिखा है "घर और उधर के बीच / सतपुडा की एक हरी-भरी घाटी है / घाटी में जंगल है / जंगल में गाँव है / गाँव में कोयल की कूक है / एक झरने की कल-कल है /एक मोनालिसा है / और उसकी एक मुस्कान है / जंगल के सघन के बीच / घाटी में रहता हूँ मैं।"[2] 'अश्विनमास का कृष्णपक्ष' कविता में कवि ने जल प्रदूषण और उससे होनेवाली बीमारियों का ज़िक्र किया है। विनय दुबे की कवितायें पारिस्थितिक

1. विनय दुबे - खलल - पृ. 51
2. विनय दुबे - तत्र कुशलम - पृ. 48

चेतना की आवश्यकता पर ज़ोर देते समय पारिस्थितिक सुरक्षा की माँग भी करती हैं। 'भोपाल में', 'सामने का वह आदमी' ऐसी ही कुछ कवितायें हैं जो पारिस्थितिक सजगता की माँग करती हैं। 'भोपाल में' शीर्षक कविता, भोपाल गैस ट्रैजडी का दुःखड़ा सुनाती है। कविता में स्त्री के बूढ़ी होने के साथ-साथ 'वातावरण का बूढ़ा होना' असल में वहाँ के विषैले वातावरण के प्रभाव की ओर ही संकेत है। दूसरी कविता 'सामने का वह सब' पर्यावरण की राजनीति की आड़ में होनेवाली साँठ-गाँठ का पर्दाफाश करती है। विनय दुबे लिखते हैं :

"आप कहते हैं
सामने एक पेड है
चलिये मैं माने लेता हूँ
कि सामने एक पेड है
हालाँकि जो नहीं है
वरना क्या आप
और क्या आपका कहना
वे तो मानवीय प्रधानमंत्री जी हैं
और मामला राष्ट्रीयता का है
जो मैं माने लेता हूँ
सामने का वह सब
जो नहीं है"[1]

इस प्रकार विनय दुबे की कविता ज़मीन, प्रकृति तथा समाज के साथ मनुष्य की निजता और अस्तित्व को जोड़ती है।

---

1. विनय दुबे - तत्रकुशलम - पृ. 38

प्रयाग शुक्ल

प्रयाग शुक्ल की कविताओं में पारिस्थितिक बोध और पारिस्थितिक प्रतिरोध का भाव दृष्टिगत है। उनके काव्य संकलन 'अधूरी चीज़ें तमाम' (1987), 'यह जो हरा है' (1990), 'बीते कितने बरस' (1993), 'यानी कई वर्ष' (1995) की कतिपय कवितायें इसकी ओर संकेत देती हैं। 'दूर देश में नदी', 'विलुप्त कथा', 'हाँ या नहीं', 'रात का पेड', 'शहर की ऊँचाई से', 'महानगर में प्रकृति कविता आदि कवितायें समकालीन कवि के पारिस्थितिक प्रतिरोध के रूप में प्रकृति और प्राकृतिक वातावरण का चित्रण करती हैं। प्राकृतिक दृश्यों का एक सुन्दर चित्र प्रयाग शुक्ल ने 'दूर देश में नदी' में स्मृतियों के रूप में खींचा है :

"नदी के पास स्मृतियाँ हैं अनेकों
उनकी भी जो
अब नहीं रहे। उनकी भी जो
आये थे कभी उसके किनारे।
किसी भी नदी के पास
स्मृतियाँ हैं अनेकों।"[1]

नदी, पेड़, पहाड़, सूर्य, चंद्र, रात आदि की कविता में बार-बार आना समकालीन कवि की पारिस्थितिक चेतना का द्योतक है। 'पेड की छाया', 'धरती', 'धरती और सुबह' कवितायें कवि के पारिस्थितिक बोध के लिए अच्छी मिसाल हैं। पेड़ की छाया में कवि को स्त्री और बच्चे की आकृति नज़र आती है। इसलिए कवि

---

1. प्रयाग शुक्ल - अधूरी चीज़ें तमाम - पृ. 36

के मन में यह भाव जाग उठता है : मन पर छपकर / खिंची हुई है / पेड की छाया / खिंची हुई है / आकृति बच्चे की / एक / स्त्री की एक"[1] 'धरती और सुबह' कवि के पारिस्थितिक बोध के दिग्दर्शन करानेवाली एक अच्छी कविता है। 'धरती' और 'सुबह', कवि में कभी न खत्म होने वाली स्मृतियाँ जगाती है :

"आऊँगा अगली बार जब,
चीज़ें बदल जायें कितनी ही,
धरती तो यही होगी।
यही धरती।
चमक इस सुबह, इस पर
सूरज की किरणों की
भूलूँगा कैसे!"[2]

संक्षेप में प्रयाग शुक्ल की कविता पारिस्थितिक बोध के साथ पारिस्थितिक प्रतिरोध के भाव का संप्रेषण करती हैं।

राजेश जोशी

राजेश जोशी की कविताएँ वैश्विक संवेदना से लैस हैं। यह संवेदना कवि को पारिस्थितिक चिंतन की गहनतम अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करती है। 'धूप घड़ी' तथा 'चाँद की वर्तनी' इन दो काव्य संग्रहों की बहुत सारी कविताएँ कवि के पारिस्थितिक चिंतन की सही पहचान दिलाती हैं। पहाड़, पेड़, चिड़िया, आदि उनकी

---

1. प्रयाग शुक्ल - यानी कई वर्ष - पृ. 175
2. वही - पृ. 44

कविताओं में बार-बार आते रहते हैं। इस तरह की कवितायें अधिकतर कवि के पारिस्थितिक बोध को दर्शाने में सफल दिखती हैं। दूसरी ओर ये कवितायें मानवीय जीवन में प्राकृतिक जीवों तथा चीज़ों की अहमियत को भी दर्शाती हैं। 'चिडिया', 'पेड क्या करता है', पहाड (एक), पहाड (दो), पहाड (तीन), पत्थर (एक), पत्थर (दो), 'तोता', 'झींगुर', 'तितलियाँ' जैसी कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'किस्सा तोते-मैने' कविता मनुष्य के साथ इन पंछियों का रागात्मक संबंध का बखान है :

"सुबह"
"तोते ने कहा :
उठ हरिया
दाँत, घिस
कुल्ला कर
और चा पी ले
मैना ने कहा :
नहा - धो
कपडे पहन
टिफिन में रख
रोटी और अथाना।"[1]

कविता तोते और मैंने का मनुष्य के साथ के घनिष्ठ संबंध को दर्शाती है। गुरू के रूप में इन दोनों का चित्रण इस संबंध को और भी मज़बूत बनाता है :

"तोते ने टोका :
रात में

---

1. राजेश जोशी - धूप घड़ी - पृ. 74

मत पढ़ मत पढ़ मूरख
ढिबरी के प्रकाश में
ढिबरी के प्रकाश में
आँख फूट जाएगी।
मैना ने लताडा :
मत पढ मत पढ करम जले
जादा बाँचेगा
तो किस्मत रूढ़ जाएगी।"[1]

धूप घड़ी संग्रह की 'कुछ दिनों बाद', 'कोई नहीं रोता', 'हवा', 'वृक्षों का प्रार्थनागीत : एक', 'वृक्षों का प्रार्थनागीत : दो', 'इस शहर को छोड़कर', 'मेरे शहर का नाम', 'बसन्त 1985' आदि कविताओं में कवि ने पारिस्थितिक दुर्घटना से अभिशप्त भोपाल शहर का, वहाँ के विषैले वातावरण तथा जनता की त्रासदी का जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत किया है।

अपने समय और समाज से सरोकार रखनेवाले यह कवि अपनी कविताओं के ज़रिए पारिस्थितिक अवबोध तथा चेतना पर ज़ोर देने की बात करते हैं। पारिस्थितिक दुर्घटना का प्रकृति और मनुष्य समाज पर पड़नेवाले कुप्रभाव का मर्मातंक चित्रण कवि ने यों किया है :

"अब यहाँ कोई नहीं रोता
शहर के एक इलाके के सारे पेड़
अब भी स्याह हैं

1. राजेश जोशी - धूप घड़ी - पृ. 74

रात के अँधेरे में वे किसी शोक जुलूस की तरह नजर आते हैं
औरतें कुछ भी याद न करने की कोशिश करती हुईं
दिन-भर लिफाफे बनाती हैं, किसी कतरन में
बच्चे की तस्वीर देखकर ठिठक जाती हैं
आँखें चुराते हुए
कागज़ को जल्दी से पलटकर
ढेर में मिला देती हैं
अब यहाँ कोई नहीं रोता
सिर्फ झरी हुई पत्तियाँ रात में सरसराती हैं।"[1]

"भोपाल गैस त्रासदी पर राजेश जोशी ने जो भी लिखा है वह यथार्थ के अंतरंग स्पन्दनों में झाँका है। 'मिट्टी का चेहरा' भोपाल गैस काण्ड में प्रदूषित हवा का ज़हर और खुली हवा में भागने की चीख कवि को हरदम सुनाई पड़ती है। वृक्ष अब वसन्त का स्पर्श नहीं करना चाहते क्योंकि विषैली रात ने उन्हें डस लिया है। राजेश जोशी की अंतरंग चेतना में भोपाल पूरी चीख-कराह के साथ एकरूप हो गया है। वसन्त भी लज्जित, सहमा और शंकित है कि एक भी वृक्ष में हरी कोंपल नहीं आई। इस त्रासदी के बाद प्रकृति भी भौंचक्की और शर्मिन्दा है। बसन्त चुपचाप वापस जाना चाहता है।"[2] चर्चित कवितायें भोपाल गैस त्रासदी से जुड़ी हुई कवि की इन संवेदनाओं का संप्रेषण करती हैं।

प्रकृति शोषण की समस्या तथा जीवों की वंशलुप्ति की ओर संकेत देनेवाली उनकी कविता हैं 'विलुप्त प्रजातियाँ'। कविता में बहुत सारे जीवों का

1. राजेश जोशी - धूप घड़ी - पृ. 184-185
2. सं. डॉ. संतोषकुमार तिवारी - अज्ञेय से अरुण कमल तक भाग-2 - पृ. 181

अस्तित्व मिट जाने का, यहाँ तक कि उनकी स्मृतियाँ ही मर जाने का संकेत मिलता है :

"पेड, पशुओं और परिन्दों की न जाने कितनी प्रजातियाँ
विलुप्त हो गईं न जाने कब
अब तो उनकी कोई स्मृति भी
बाकी नहीं"[1]

सूखापन का ज़िक्र कवि ने 'उमस' कविता में किया है। सूखापन, प्रकृति-पर्यावरण तथा मनुष्य समाज पर डालनेवाले प्रभावों पर कवि विस्तर से लिखते हैं - "आषाढ़ के बादल बिना बरसे ही इस बार / उत्तर भारत से फ़रार हो गए थे / मानसून से पहले की फुहारें भी इन इलाकों में नहीं पड़ी थीं / और चौपट हो चुकी थी सोयाबीन की सारी फसल / जिन खेतों के आसपास नाले या नहरें थीं / वहीं बुआई हुई थी और भूले भटके कहीं-कहीं कुछ हरियाली दिख जाती थी / ज़्यादातर खेतों में हल चल चुका था पर बीज नहीं छींटे गए थे"[2] इन पंक्तियों से ज़ाहिर है कि कवि अपने प्राकृतिक परिवेश तथा पारिस्थितिकी से कितनी गहन संबन्ध रखते हैं। सूखेपन की समस्या का उल्लेख 'किस्सा उस तालाब का' कविता में भी हुआ है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो राजेश जोशी की कविताएँ समकालीन कविता की वैश्विक संवेदना का पारिस्थितिकीय चिंतन प्रस्तुत करती हैं जो अंततः कवि के समकालीन बोध का परिचायक है।

---

1. राजेश जोशी - चाँद की वर्तनी - पृ. 17
2. वही - पृ. 21

मदन कश्यप

मदन कश्यप मूलतः उम्मीद के कवि हैं। तमाम विद्रुपताओं तथा विडम्बनाओं के बीच में भी, कवि आशा की किरणें ढूँढते हैं। वे प्रकृति द्वारा दी गयी सुख-सुविधाओं के प्रति हमेशा शुक्रगुज़ार रहे हैं। 'ग़नीमत है' कविता कवि के इस भाव को यों प्रकट करती है : "ग़नीमत है / कि पृथ्वी पर अब भी हवा है / और हवा मुफ़्त है ...... / गनीमत है / कि कई पार्कों में आप मुफ़्त जा सकते हैं / बिना कुछ दिये समुद्र को छू सकते हैं / सूर्योदय और सूर्योदय के दृश्य देख सकते हैं"[1] प्रकृति में मनुष्य के लिए जितनी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं, फिर भी कृतघ्न मानव प्रकृति की लूट में लगा है। प्रकृति के प्रति मनुष्य के इस उपभोगवादी रवैये के विरोध में कवि अपना आक्रोश प्रकट करते हैं :

"वे पेडों को काटना नहीं चाहते
उनका हरापन चूस लेना चाहते हैं
वे पहाडों को रौंदना नहीं चाहते
उनकी दृढ़ता निचोड लेना चाहते हैं
वे नदियों को पाटना नहीं चाहते
उनके प्रवाह सोख लेना चाहते हैं"[2]

कवि प्रश्न खडा करते हैं कि इस तरह मनुष्य की अनगिना चाहतों की पूर्ति हो जाये तो भविष्य में यह दुनिया कैसी लगेगी और किसके लिए लायक होगी?

---

1. मदन कश्यप - लेकिन उदास है पृथ्वी - पृ. 43
2. वही - पृ. 47

कवि की शंकायें और भी हैं। 'भयानक' कविता जैसे कि शीर्षक से पता चलता है कि हमारे चारों ओर व्याप्त भयानक परिस्थितियों की ओर संकेत देती है, कवि पूछते हैं कि 'क्या करें कि नकली उर्वरकों से खेत बंजर न हो।' क्योंकि उन्हें खुद पता नहीं है कि समाधान कैसे ढूँढें, इसलिए वे कविता द्वारा उसके विरोध में अपना प्रतिरोध खड़ा करते हैं :

"हमने खो दिया है
अपना आसमान
अपना सूराज
अपनी हवा
मिट्टी के सिवा सब कुछ
अब तुम आओ
और इस माटी के सहारे ही हासिल करो
अपना आसमान। अपना सूरज। अपनी हवा।"[1]

'पृथ्वी दिवस, 1991' उनकी बहुत अच्छी कविता है जिसमें उन्होंने लगभग सभी पारिस्थितिक समस्याओं का खुलकर चित्रण किया है। पृथ्वी की निरीहता तथा मनुष्य द्वारा उन पर अत्याचार का वर्णन एक-एक करके कवि प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य को पृथ्वी का हत्यारा घोषित करके कवि उसे अपनी करतूतों से अवगत कराने का प्रयास कविता में यों करते हैं :

"जिनकी आकांक्षाएँ छेद रही हैं
ओजोन की रक्षा-परत

1. मदन कश्यप - लेकिन उदास है पृथ्वी - पृ. 68

जिनकी एषणाएँ रौंद रही हैं
पर्वतों की छातियाँ
जिनकी तृषा पी जाती है
सारी नदियों के स्वच्छ जल
जिनकी लिप्सा निगल जाती है
पूरी वसुधा की हरियाली
अम्ल-मेघ बनकर बरसती है जिनकी लालसा
वहीं सभ्य और 'महान' लोग
हथियारों के सौदागर
नशीली दवाओं के तस्कर
अचानक बनाने लगे हैं
पृथ्वी को बचाने की योजनाएँ
मिट्टी की रूखी देह में लगाकर
नर्म विचारों के उबटन"[1]

मनुष्य के इस दोमुहेपन का पर्दाफाश करने के साथ पृथ्वी के बचाव की माँग की ओर कवि मुडते हैं। पृथ्वी के, प्रकृति के तथा मनुष्यता के शुभ चिंतक अब भी इस दुनिया में बचे हैं वे पृथ्वी को बचाने का कष्ट ज़रूर उठायेंगे। इसी उम्मीद के साथ वे लिखते हैं कि "हम हज़ारों हज़ार मुट्ठियों पर तुम्हें थाम लेंगे पृथ्वी!" निस्संदेह मदन कश्यप की कवितायें पृथ्वी, प्रकृति तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्धता और उम्मीद के साथ खडी होती हैं।

---

1. मदन कश्यप - लेकिन उदास है पृथ्वी - पृ. 99-100

हेमन्त कुकरेती

हेमन्त कुकरेती वर्तमान प्रकृति विरोधी परिवेश से बेहद परेशान है। उनका मत है पेड, पत्ती, फूल केवल कविता में ही बचे हैं। अर्थात् मनुष्य के जीवन के इर्द-गिर्द से ये दूर होते जा रहे हैं। कवि प्राकृतिक शक्ति तथा उनकी विराटता के सामने नतमस्तक हैं। इसलिए कवि खुद को पहाड का बेटा घोषित करते है :

"पेडों की कोख से
बहती नदी
पहाड पर सूर्यास्त के
कागज़ी हवाले भर थे
उनके संस्मरण
मैं इसी में खुश था कि
वे पहाड को दिव्य मानते हैं।"[1]

कवि का जीवन पहाड़ी ज़िन्दगी से काफी प्रेरणान्वित है। पहाडी माहौल और लोकजीवन के बीच के तालमेल को दर्शाते हुए उन्होंने 'पहाड की कथा' कविता में यों लिखा है

"पहाड में सिर्फ गरीबी नहीं होती
मनुष्य होते हैं
उनका सुख सिर्फ लोकगीतों में
होता है सम्पन्न।"[2]

1. हेमन्त कुकरेती - चलने से पहले - पृ. 56
2. वही - पृ. 92

उनकी कविताओं से ज़ाहिर है कि लोकजीवन में प्रकृति के साथ एकमेक होकर जीने की संस्कृति है। इस संस्कृति पेड़, पहाड़, जंगल आदि की उपस्थिति मनुष्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य मानती है। चर्चित कविताओं के ज़रिए कवि प्राकृतिक शक्तियों के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने की बात उठाते हैं।

निर्मला पुतुल

निर्मला पुतुल, समकालीन कवयित्रियों की बुलन्द आवाज़ है। वे अपने समाज, स्त्री, तथा पर्यावरण की रक्षा और उनके साथ होनेवाले अत्याचार और शोषण के विरोध में प्रतिरोध खड़ा करती हैं। कवयित्री अपने घर, परिवेश वहाँ के प्रकृति और पर्यावरण से हमेशा मिलजुलकर जीने की ललक रखती हैं। फलस्वरूप उनकी कविता भी इसीकी अभिव्यक्ति देती है। अपनी धरती और घर की तलाश में, स्त्री मानसिकता की स्पष्ट छाप उनकी कविताओं की विशेषता है।

निर्मला पुतुल ने 'बूढ़ी पृथ्वी का दुःख' कविता के द्वारा पृथ्वी के दुःख का वर्णन किया है। पेड की कटाई तथा नदी प्रदूषण की ओर संकेत करनेवाली यह कविता दरअसल वर्तमान समाज के पारिस्थितिक 'अबोध' पर ही प्रश्न चिह्न लगा रही है। जब कवयित्री पूछती हैं कि क्या तुमने कभी सुना है सपनों में चमकती कुल्हाडियों के भय से पेडों की चीत्कार? या फिर सुना है कभी रात के सन्नाटे में अँधेरे से मुँह ढाँप किस कदर रोती हैं नदियाँ? तब यह सवाल अंततः मनुष्य की ओर जाता है, उनके प्रकृति विरोधी क्रिया कलापों की ओर जाता है। निर्मला पुतुल ने बहुत ही खूबसूरती के साथ इसका ज़िक्र कविता में किया है :

"इस घाट अपने कपडे और मवेशियाँ धोते
सोचा है कभी कि उस घाट
पी रहा होगा कोई प्यासा पानी
या कोई स्त्री चढ़ा रही होगी किसी देवता को अर्ध्य।"[1]

उनकी दूसरी कविता 'खून को पानी कैसे लिख दूँ' में उन्होंने आदिवासी समूह के शोषण और उपनिवेशवाद के फैलाव के विरोध में प्रतिरोध खड़ा किया है। अपनी धरती, भाषा, संस्कृति और प्रकृति के लिए उनकी लड़ाई कविता में यों दर्ज़ हैः

"अगर वे चाहते हैं कि अपनी थोडी-सी भलाई के लिए
हम उनकी हजार बुराइयों पर पर्दा डालें
एहसान मानें उनका, जी-हुजूरी करें
हाँ में हाँ मिलाएँ सिर्फ
बिछ जाएँ जब-तब उनके इशारे पर उनकी खातिर
तो नहीं चाहिए हमें उनका एहसान
उठा ले जाएँ वे अपनी व्यवस्था
ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें
नहीं चाहिए ऐसा बदलाव
नहीं चाहिए!!!"[2]

यह कविता पारिस्थितिक स्त्रीवाद से पाठकों का परिचय कराती है। दरअसल प्रकृति और स्त्री एक ही लड़ाई लड़ रही है। यह अपने अस्तित्व की बचाव की लड़ाई है। प्रकृति की रक्षा करना अंततः स्त्री की रक्षा करना है। पुरुषों

---

1. निर्मला पुतुल - नगाडे की तरह बजते शब्द - पृ. 31
2. वही - पृ. 34-35

की तुलना में प्राकृतिक परिवेश से स्त्री का संबंध ज़्यादा निकट और गहन होता है। इसलिए स्त्री का संघर्ष अपने अस्तित्व के लिए भी है साथ ही प्रकृति के बचाव के लिए। अर्थात् स्त्री का हरित-प्रतिरोध कविता में गूँज उठाते हैं। प्लाच्चिमडा की मयिलम्मा, तमिलनाडू की लीलावती, केनिया की बंनगरी माता, तथा मेधा पाटकर की तरह निर्मला पुतुल का भी हरित-प्रतिरोध भी कविता में दर्ज हुआ है।

'आओ, मिलकर बचाएँ', में निर्मला पुतुल अपनी बस्ती, जंगल, नदियाँ, पहाडों और हरियाली को बचाने की उम्मीद में लिखती हैं -

"बच्चों के लिए मैदान
पशुओं के लिए हरी-हरी घास
बूढ़ों के लिए पहाड़ों की शान्ति
और इस अविश्वास-भरे दौर में
थोडा-सा विश्वास
थोडी-सी उम्मीद
थोड़े-से सपने
आओ, मिलकर बचाएँ
कि इस दौर में भी बचाने को
बहुत कुछ बचा है, अब भी हमारे पास!"[1]

संक्षेप में निर्मला पुतुल की कविताओं में प्रकृति तथा पर्यावरण के शोषण के खिलाफ़ आक्रोश, विद्रोह प्रतिरोध और उम्मीद का स्वर जाहिर है। उनकी कविता

---

1. निर्मला पुतुल - नगाड़े की तरह बजते शब्द - पृ. 77

जनजातियों की अपनी प्रकृति, भाषा, संस्कृति की लडाई के संघर्ष की गथा है। उनमें स्त्री मानसिकता का भाव यत्र-तत्र व्याप्त भी है।

नीलेश रघुवंशी

समकालीन हिन्दी कवयित्रियों में नीलेश रघुवंशी की अलग पहचान है। उनकी 'दुनिया किसकी', 'सौ बरस का पेड', 'विज्ञापन में किसान' जैसी कवितायें कवयित्रि के पारिस्थितिक बोध और चिन्तन का ब्यौरा देती हैं। 'सौ बरस का पेड' बहुत ही भावुक कविता है जो मनुष्य और पेड़ के बीच के आत्मीय संबंध को दर्शाती है। सौ बरस वाले एक पेड के बेचने से घर के वातावरण में मायूसी छा जाती है। परिवार के सभी सदस्य उस पेड़ से जुडी हुई अपनी यादों में खो जाते हैं। कविता में इसका वर्णन पाठकों के दिल तक पहूँचाकर सोचने के लिए उन्हें भी विवश करता है कि पेड के साथ उनका नाता क्या है?

"सब चुप थे उस दिन
पिता बहुत असहाय और अपराधी
स्मृति में दादा-चढ़ना सिखाते पेड पर
हाथों में लिए पिलाते नारियल-पानी
माँ ने जलाया दीया
आई थी जब पहली बार, दिया था यही पेड दादा ने उसे
दिप-दिप करती लौ में लाल-लाल आँखें माँ की
पेड नहीं गया आज-गया सौ बरस का धीरज"[1]

---

1. नीलेश रघुवंशी - पानी का स्वाद - पृ. 35

'दुनिया किसकी' में नीलेश रघुवंशी ने पारिस्थितिक चिंतन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व प्रस्तुत किया है। पारिस्थितिकी व्यवस्था में हर प्राणी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है, उनका अपना अधिकार है और दायित्व भी। छिपकली के माध्यम से नीलेश रघुवंशी ने इस तत्व का उद्‌घाटन कविता यों किया है :

"घात लगाए बैठी है छिपकली
छोटा सा कीडा भी कम नहीं
रोक दिया उसने छिपकली को एक ही जगह
जलती हुई मरकरी रौशन करती है कमरे को
दुश्मन बनी बैठी है कीड़े की
मालूम हो जाएगा कुछ ही देर में दुनिया किसकी?"[1]

कुल मिलाकर नीलेश रघुवंशी की कविता प्रकृति और पारिस्थितिकी के साथ निकटतम संबंध स्थापित करने की घोषणा करती है। समकालीन कवयित्रियों में उनकी कविता पारिस्थितिक बोध और पारिस्थितिक चेतना की माँग के माध्यम से खुद की एक अलग पहचान बनाती है।

विनोदकुमार शुक्ल

समकालीन कवियों में विनोदकुमार शुक्ल की कविताएँ प्रायः पारिस्थितिक चेतना से ओतप्रोत रही हैं। उनकी कविताओं के निचोड़ में प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने की ललक है। पारिस्थितिकि से जुड़ी हुई लगभग सभी समस्याओं की अभिव्यक्ति से उनकी कविताएँ पारिस्थितिकीय कविता की

---

1. नीलेश रघुवंशी - पानी का स्वाद - पृ. 34

संज्ञा हासिल करती है। उनके तीन काव्य संकलन 'सब कुछ होना बचा रहेगा' (1992) वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह (1996) अतिरिक्त नहीं की बहुत सारी कवितायें पाठकों के हृदय में पारिस्थितिक बोध को जगाने में पर्याप्त दिखती हैं। 'मनुष्य सभ्य है', 'जलप्रपात है समीप', 'इतिहास की नदियों को', 'बचाकर रख लेनी चाहिए हवा', 'जंगल के उजाड़ में', 'जो मेरे घर कभी नहीं आयेंगे', 'मनुष्य मैं ही हूँ', 'कोसाफल के तय्यार होते ही', 'जंगल के दिन भर के सन्नाटे में', 'जो शाश्वत प्रकृति है उसमें पहाड है', 'दूर से अपना घर देखना चाहिए', 'सूखा कुआँ तो मृत है', 'एक सूखी नदी', 'ज़मीन पर बैठा है पक्षी, 'एक हरे पेड़ को' 'मुझे बचाना है', 'पेड के नीचे बैठना', 'अंतिम चीता मरा' आदि कविताओं से कवि के पारिस्थितिक चिंतन स्पष्ट झलकता है।

प्राकृतिक जीवन परिवेश से बिछुडकर जीने के लिए अभिशप्त शहरी मानव का दर्द 'प्रकृति में' शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया गया है। "और मैं शहरी आदमी / प्रकृति से इस तरह अलग होता हूँ / कि पेड को पीछे छोड बस में बैठ जाता हूँ / बस में बैठे मेरी इच्छा है / कि पूरे रास्ते में दोनों और पेड मिलते रहें / मैंने अपने कमरे में पूरे जंगल की तस्वीर लगा रखी है/"[1] की पंक्तियाँ आगे चलकर प्रकृति के बेहिसाब शोषण में गहरा दुःख प्रकट करने वाली कविता के रूप में 'फूल वहाँ तक मुरझाया' में परिणत होती हैं :

"कटे पेड की दुनिया भी
बेहिसाब बडी

---

1. विनोदकुमार शुक्ल - वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह - पृ. 35

उस दुनिया में
पेड़ ढूँढते चिडियों के जोडे कई कई
एक खत्म डाल से दूसरी खत्म डाल तक
ज्यों मीलों जाते हवा में ठहर ठहर।"[1]

'जंगल के दिन भर के सन्नाटे में' कविता बाज़ारीकरण के शिकार होते जंगल और आदिवासी लोगों के शोषण की ओर संकेत देती हैं। कविता एक ओर आदिवासी लोगों और जंगली परिवेश के बीच की तल्लीनता को दर्शाती है तो दूसरी ओर बाज़ारीकरण का प्रभाव आदिवासी समूह तक फैलने की शंका भी व्यक्त करती है। इसका जिक्र कवि ने यों किया है -

"एक अकेली आदिवासी लड़की को
घने जंगल जाते हुए डर नहीं लगता
बाघ-शेर से डर नहीं लगता
पर महुवा लेकर गीदम के बाजार जाने से
डर लगता है।"[2]

कवि के पारिस्थितिक बोध आगे पारिस्थितिक समस्याओं की ओर अग्रसर होते हुए सूखेपन तथा वंश लुप्ति की समस्या को प्रस्तुत करते हैं। 'सूखा कुआँ तो मृत है', 'एक सूखी नदी' तथा 'अंतिम चीता मरा' आदि कविताओं में इनकी ज्वलंत अभिव्यक्ति मिलती है - "अंतिम चीता मरा / और चीता की जाति समाप्त हो गई / मनुष्य से पता चलता है कि प्रकृति में मनुष्य की दखलंदाज़ी ने चीता जैसे

---

1. विनोदकुमार शुक्ल - वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह - पृ. 35
2. विनोदकुमार शुक्ल - सब कुछ होना बचा रहेगा - पृ. 22

अनगिनत प्राणियों की वंशलुप्ति की समस्या को खडा कर दिया। इन सभी समस्याओं की गहरी जानकारी लेते हुए कवि ने प्रकृतिक स्रोतों की तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा की बात उठायी है। 'बचाकर रख लेनी चाहिए हवा', और 'मुझे बचाना है' में कवि की प्रतिक्रिया यों दर्ज हुई है। बचाकर रख लेनी चाहिए हवा साँस लेने के लिए और मुझे बचाना है एक-एक कर अपनी प्यारी दुनिया को जैसी पंक्तियाँ इसकी ओर संकेत हैं।

विनोदकुमार शुक्ल का पारिस्थितिक चिंतन 'जो मेरे घर कभी नहीं आयेंगे', 'मनुष्य मैं ही हूँ' कविताओं में आकर पारिस्थितिक दर्शन का स्तर अपनाता है। प्रकृति के प्रति मनुष्य के लगाव तथा रागात्मक संबंध को दर्शाते हुए कवि लिखते हैं :

"पहाड, टीले, चट्टानें, तालाब
असंख्य पेड खेत
कभी नहीं आयेंगे मेरे घर
खेत खलिहानों जैसे लोगों से मिलने
गाँव-गाँव, जंगल-गलियाँ जाऊँगा।
जो लगातार काम में लगे हैं
मैं फुरसत से नहीं
उनसे एक जरूरी काम की तरह
मिलता रहूँगा"[1]

प्रकृति और मनुष्य के अभेद्य संबन्ध को दर्शाते हुए कवि लिखते हैं 'मानुष मैं ही हूँ'। अपने चारों और प्रकृति और प्रकृति की ध्वनियाँ महसूसते हुए विनोदकुमार

1. विनोदकुमार शुक्ल - सब कुछ होना बचा रहेगा - पृ. 13

शुक्ल का कवि मन पारिस्थितिक चिंतन के अन्यान्य पहलुओं से पाठकों में पारिस्थितिकीय चेतना उजागर करता है।

एकान्त श्रीवास्तव

एकांत श्रीवास्तव घर-परिवार, नदी, पेड, पहाड, खेत-खालिहान के प्रति आत्मीय संबन्ध रखनेवाले कवि हैं। उनकी संदेवनाएँ प्रकृति तथा प्राकृतिक परिवेश के कण-कण के साथ जुडी रहती हैं। उनके अभी तक तीन काव्य संकलन और एक लंबी कविता 'नागकेसर का देश यह' प्रकाशित हो चुके हैं। अन्न हैं मेरे शब्द (1994), मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद (2000), बीज से फूल तक (2004) के काव्य-संग्रहों के अध्ययन से यही स्पष्ट होता है कि कवि की मानवीय संवेदनाएँ गाँव के खेत-खलिहानों और प्रकृति के नाना रूपों में कितनी तल्लीनता के साथ रमी हुई हैं। एकान्त श्रीवास्तव के ग्राम्य जीवन के वर्णन में प्रकृति की उपस्थिति हमेशा रही है। 'अच्छे दिन', 'लौटती बैलगाडी का गीत', 'सूखा', 'कार्तिक पूर्णिमा', 'सिला बीनती लडकियाँ', 'सूर्य', 'धानगंध-1', 'धानगंध-2' आदि कविताओं में प्रकृति, जीवन और लोकसंस्कृति की विभिन्न छवियाँ और संवेदनाएँ घुल मिल गई हैं। 'फूल', 'पहाड', 'पंडुक', 'नदी', 'पतझड-1, पतझड-2, पानी, 'गुरुत्वाकर्षण', 'समुद्र पीछे खिसक रहा है', 'समुद्र तट पर सूर्योदय', 'भोर का समुद्र', 'दोपहर का समुद्र', 'शाम का समुद्र', 'रात का समुद्र' आदि कवितायें कविता और प्रकृति के बीच के आपसी संबंध को दर्शाती है। इन कविताओं में अपने प्राकृतिक परिवेश को बहुत नज़दीकी से चित्रण करते हैं। सिर्फ यही नहीं मनुष्य के जीवन परिवेश तथा ज़िन्दगी को यह किस तरह प्रभावित करता है उसका भी ज़िक्र मिलता है।

"क्या आप महसूस कर सकते हैं / एक समूचे पेड का दर्द / जो उसकी जडों से लेकर / फुनगियों तक बह रहा है?"[1] की पंक्तियाँ कवि की मानवीय संवेदनाओं से जुडकर पेड़ के दर्द के रूप में तब्दील हो जाने की ओर इशारा है। पारिस्थितिक बोध की सशक्त अभिव्यक्ति देने वाली कविताओं में एक बीज की आवाज़ पर, 'पानी', 'ज़मीन 1', 'ज़मान 2', 'अन्न 1', 'अन्न 2', 'धरती के सुख दुःख में', 'भूमि' आदि प्रमुख हैं। धरती के दुःख-सुख में शामिल होते हुए कवि स्वयं को धरती के दुःख-सुख में विलीन हो जाते हैं :

"जंगल में पेड
पेड में बीज
बीज में जन्म देने की इच्छा धरती की
शामिल है
हरे में शामिल हैं चुप-चुप दो रंग
पत्तों की ताजगी में शामिल हैं मेघ
मेघों में जल समुद्र का
शमिल है
मेरे पसीने में तुम्हारी देह का नमक
तुम्हारे लहू में मेरे लहू का रंग
मेरी नींद में तुम्हारे स्वप्न की कौंध
शामिल है
....
हम सबकी जडों में शामिल है धरती

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - अन्न हैं मेरे शब्द - पृ. 92

धरती के दुःख-सुख में
हम सब शामिल है।"[1]

धरती के सुख-दुःख में शामिल होनेवाले यह कवि इसलिए धरती पर होनेवाले अत्याचारों के खिलाफ़ आवाज़ भी उठाते हैं। 'भूमि' कविता में कवि विनती करते हैं कि इस धरती को मत उजाडो और इस पर त्रिशूल और झंडे मत जाडो क्योंकि "इस पर हुआ मेरा जन्म / इस पर ली मेरे पुरखों ने आखिरी साँस / इस पर किया मैंने गुस्सा और प्यार / इस पर गिरे पके हुए फल / इस पर उतरा चिडियों का झुंड / यह भूमि मेरी है। इसके भीतर अभी सोए हैं बीज।"[2] एकान्त श्रीवास्तव की कवितायें प्रकृति और मनुष्य के सह अस्तित्व की माँग करती हैं। विभिन्न जीवन परिस्थितियों के साथ प्रकृति की उपस्थिति इसीका परिणाम है।

उन्होंने पारिस्थितिकी से जुडी हुई अन्य समस्याओं को प्रस्तुत करनेवाली कवितायें भी लिखी हैं। 'नक्शे में ढूँढो वह गाँव', 'तुमने दे दी गोली' आदि पारिस्थितिक विस्थापन की त्रासदी पर आधारित हैं। उनकी लंबी कविता 'नागकेसर का देश यह' कवि की सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय देते हुए वर्तमान समाज के सभी ज्वलंत समस्याओं से सीधा साक्षात्कार कराती है। कवि के गहन पारिस्थितिक चिंतन इसमें भी स्पष्ट झलकती है :

"तुम नदियों के प्रति क्रूर होकर
भला कैसे सहृदय हो सकते हैं।

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद - पृ. 69
2. वही - पृ. 78

अपने देश
अपनी सभ्यता के प्रति"[1]

ज़ाहिर है कि कवि नदियों के प्रति मनुष्य के क्रूर बर्ताव से असंतुष्ट है। पुरखों द्वारा दी गयी इस सुन्दर धरती को, उसकी हरियाली को साधन-संपन्नता को मानव ने लूट लिया है ऐसे में कवि पूछते हैं :

"डूबते हुए सूर्य का आखिरी बयान
या खत्म होती सभ्यता की अभिशप्त परछाइयाँ
क्या छोड जाऊँगा विरासत में आखिर
क्या छोड जाऊंगा।
मुझे मिले विरासत में सूरज और चाँद
मुझे मिलीं ऋतुओं की
हरी-भरी डालियाँ
मुझे मिलीं नदियाँ गहरी और निर्मल
मुझे मिले ऋतुओं के सुंदरतम फूल
सूरज और चाँद को लगा गया ग्रहण
डालियों में धँस गए विष बुझे तीर
नदियों में घुल गया हत्याओं का लहू
फूलों पर बैठ गई बारूद की गंध
क्या छोड़ जाऊँगा विरासत में आखिर
क्या छोड जाऊँगा!"[2]

---

1. एकान्त श्रीवास्तव - नागकेसर का देश यह, पहल-89, जुलाई 2008 - पृ. 149
2. एकान्त श्रीवास्तव - मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद - पृ. 84

प्रकृति पारिस्थितिकी और मनुष्य के बीच के आपसी संबंध में संतुलन और तालमेल की आवश्यकता प्रकृति और मनुष्य के सह-अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। दरअसल यह कविता कवि के पारिस्थितिक चिंतन को एक दार्शनिक धरातल प्रदान करती है। निसंदेह एकान्त श्रीवास्तव समकालीन हिन्दी कविता के पारिस्थितिकीय चिंतन की बुलन्द आवाज़ है।

अरुण कमल

"हर नदी का घाट श्मशान
हर बगीचा कब्रिस्तान
बन रहा है
और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे हैं।"

ऐसा गानेवाला कवि अरुण कमल के अलावा और कौन हो सकता है? 'इक्कीसवीं शताब्दी की ओर' शीर्षक कविता वर्तमान समय की पारिस्थितिक समस्याओं की ओर एक चेतावनी है। हिंसा की भावना प्रकृति और मनुष्य दोनों के ऊपर नृशंसता का युद्ध रच रही है। 'कुल्हाडी' कविता कवि की इस भावना से ओतप्रोत है। कविता में 'कुल्हाडी' मनुष्य की निर्ममता और कायरता की निशानी है हमारी सभ्यता के ऊपर बर्बरता के आक्रमण का औज़ार है। अरुण कमल ने इसका प्रतिरोध कविता द्वारा प्रस्तुत किया है :

"कंधे पर ऊँची उठी
फूले बाँस में फँसी कुल्हाडी
बर्बरता का आक्रमण है सभ्यता पर

लेकिन आम के पेड ने इस बार
पूरा बौरा कर उसे चुनौती दी है
मज़ाक उठाया है उसके ओछेपन का
ले काट सके तो काट"[1]

अरुण कमल की प्रायः सभी कवितायें प्रकृति और मनुष्य के बीच के रागात्मक संबंध के परिचायक हैं। दरअसल कवि के पारिस्थितिक बोध से तो पाठक परिचित होते हैं, जब कवि यह लिखते हैं कि :

"पर आज पहली बार जब देखा है
डाल पर पकते हुए इस फल को
तभी जाना है असली रंग स्वाद-गन्ध
इस छोटे से फल के
धरती-आकाश तक फैले संबन्ध।"[2]

पेड़ फूलते हैं किसलिए? अपने लिए तो सही लेकिन इससे बढ़कर मनुष्य तथा अन्य जीव-जन्तु ही इसका लाभ उठाते हैं। पारिस्थितिक तंत्र में हर एक जीव का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर है। आपसी आदान-प्रदान ही इसके अस्तित्व का आधार है। धरती-आकाश तक फैले संबंध से कवि का तात्पर्य भी यही है। 'अपनी केवल धार' की बहुत सारी कवितायें इस तरह के मानवीय संबंधों को प्रकृति की छाया में प्रस्तुत करती हैं। बाढ़, सूखेपन जैसी पारिस्थितिक समस्याओं को लेकर भी उन्होंने कवितायें लिखी हैं। 'फिर-से', 'उर्वर प्रदेश' आदि ऐसी ही कुछ कवितायें हैं।

1. अरुण कमल - सबूत - पृ. 76
2. अरुण कमल - अपनी केवल के धार - पृ. 11

पंकज चतुर्वेदी

पंकज चतुर्वेदी की कविताओं के अध्ययन से यही पता चलता है कि कवि का पारिस्थितिक चिंतन साँस्कृतिक विसंगति के रूप में प्रकृति से दूर हो गए मनुष्य को लेकर दुखी है। प्रकृति से दूर हो गए मनुष्य को लेकर दुःखी है। इसी भावना से ओतप्रोत होकर कवि गाते हैं - अब हम पक्षियों के कलरव से जागते नहीं। ऐसा गाते हुए कवि हमारे जीवन परिवेश में हुए बदलाव की ओर पाठकों का ध्यान खींचते हैं। जंगल की कटाई की ओर संकेत देते हुए पंकज चतुर्वेदी लिखते हैं :

"क्योंकि मैंने देखा है
कि जंगल में अब लकडी नहीं बची है
और आदिम लकडहारों के
जत्थे-के-जत्थे
शहरों की ओर बढ़ रहे हैं
लकडी की तलाश में"[1]

जंगल और लकड़हारों के बीच के आपसी संबंध की व्याख्या कविता से की जा सकती है। जंगल में लकड़ी न बचने के कारण लकडहारों को शहर की ओर जाना पडता है। घरेलू तथा औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए लकडी का इस्तेमाल व्यापक स्तर पर हो रहा है। ऐसे में लकडहारों का संबंध जंगल के पक्षी से नहीं बल्कि शहरी जीवन परिवेश से है। संपूर्णता की खोज में कवि अनुभव करते हैं कि 'यह दुनिया उतना सहज नहीं है।' इतना सहज नहीं है : "कि झरने

---

1. पंकज चतुर्वेदी - एक संपूर्णता के लिए - पृ. 41

झरने रहें / पहाड़ कभी झुकें ही नहीं / नदी आये और कहे / कि मैं हमेशा बहूँगी तुम्हारे साथ"[1]

आदिवासी जीवन, की त्रासदी और जंगली जीवन में सत्ता का हस्तक्षेप, उनका शोषण आदि का ज़िक्र कवि ने 'उत्तराखण्ड के लिए' कविता में किया है। कविता वास्तविक घटना पर आधारित है। कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता कविता में यों अभिव्यक्त हुई है :

"नदियाँ अपना जल
पहाड़ अपनी ऊँचाई खो रहे थे
आदमी की आखिरी तकलीफ यह थी
कि जहाँ रोटी नहीं थी
वहाँ फिर कोई सौंदर्य भी नहीं था।"[2]

एक साथ प्रकृति और मनुष्य के विरोध में हो रहे अमानवीय व्यवहार का चित्र कविता से मिलता है - "परिवार से उसकी कमाई छिन रही थी / जैसे जंगलों में पेड काटे जा रहे थे / जैसे उन स्त्रियों के साथ बलात्कार हो रहा था / सिर्फ इसलिए कि वे स्त्रियाँ थीं / और पहाडों के हाल कह सकने के लिए / देश की राजधानी आ रही थी/"[3] की पंक्तियाँ कविता को पारिस्थितिक स्त्री विमर्श के स्तर तक ले जाती हैं। सिर्फ स्त्री होने के नाते वे हमेशा शोषण के शिकार होती हैं बतौर प्रकृति भी। प्रकृति शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठानेवाली स्त्री का शोषण हमारी

---

1. पंकज चतुर्वेदी - एक संपूर्णता के लिए - पृ. 77
2. वही - पृ. 86
3. वही - पृ. 86

राजनैतिक व्यवस्था की अव्यवस्था की ओर ही उँगली उठाती हैं। पंकज चतुर्वेदी की अन्य कविताएँ जैसे 'एक समुद्र भी था', 'मेरे आस-पास' जैसी कवितायें नदी प्रदूषण तथा सूखेपन की समस्या की ओर संकेत करती हैं।

लुप्त प्रजाति की दुनिया कविता कवि के पारिस्थितिक चिंतन की सही पहचान दिलाने में सक्षम हुई है कि "एक पेड़ था / डूब गया जिसका बीज / उसकी डाल पर बैठती थी एक चिडिया / जो अब किसी घोंसले में नहीं लौटती / एक जानवर था / जो उस पेड के तने से रगडता था अपनी खाल / कालपत्र में रखा है उसका जीवाश्म / एक मनुष्य था / जो सोता था दुपहरी में उस पेड के नीचे / उसकी जडों पर सिर रखकर / खुदाई में मिलेंगी / उसकी पथराई हुई हड्डियाँ / एक पूरी दुनिया थी / उस पेड के आसपास / कहाँ मिलेगा उसका बीज!"[1] लुप्तप्राय हो रहे पेडों के चित्रण द्वारा कवि पेडों की अहमियता को दर्शाना चाहते हैं। क्योंकि पेड़ अपने में एक पूरा पारिस्थितिक तंत्र है जिसका लाभ अन्य जीवियों के साथ मनुष्य भी उठाता है। इसलिए पेड़ों को बचाना अन्य जीवियों के समान मनुष्य के बचाव के लिए भी अनिवार्य है। संक्षेप में देखा जाए तो पंकज चतुर्वेदी की कवितायें पारिस्थितिक चिंतन की सही मिसाल प्रस्तुत करती हैं।

अशोक वाजपेयी

अशोक वाजपेयी की कविताओं में पारिस्थितिक बोध का भाव खूब झलकता है। 'तिनका तिनका' काव्य संग्रह की 'वृक्ष', 'वृक्ष वह', 'पृथ्वी', 'चौकन्ने

---

1. पं. विजयकुमार - सदी के अंत में कविता - पृ. 243

जानवर की तरह पृथ्वी', 'तोतों से बची पृथ्वी', 'एक गुडिया की तरह पृथ्वी', 'वैसी पृथ्वी न हो पाने का दुःख', 'इस पृथ्वी को', 'पृथ्वी के रहस्य', 'पृथ्वी लिखती है पृथ्वी को', 'असम्भव है पृथ्वी', 'जल', 'पूरी की पूरी पृथ्वी' जैसी कविताओं में कवि का पारिस्थितिक बोध द्रष्टव्य है। पृथ्वी पर लिखी गयी कवितायें पृथ्वी के ऐश्वर्य, वैभव, समृद्धि और ताकत का गुणगान करने के साथ मानवीय जीवन और उसके सपनों में पृथ्वी की उपस्थिति की ओर संकेत देती है।

'वृक्ष', 'वृक्ष वह' आदि कविताओं में वृक्ष का अस्तित्व वर्णन धरती, आकाश और मनुष्य से जोडते हुए उसकी विराटता का परिचय देता है :

"वृक्ष वह
अपने गहरे अंधेरों को धीरे-धीरे टटोलता
अन्तरिक्ष को अपनी सत्ता से
रचता हुआ
और पूछता हुआ कि उसकी छाया
क्या तुम्हें चाहिए!"[1]

उनकी कविता में 'पृथ्वी' के महत्व का वर्णन काल्पनिक तथा वैज्ञानिक धरातल से बिलकुल खरा उतरा है। कवि के गहन पारिस्थितिक चिंतन की एक ज्वलंत मिसाल 'वैसी पृथ्वी न हो पाने का दुःख' में मिलती है :

"एटलस से काटकर
कुछ भू-भाग

---

1. अशोक वाजपेयी - तिनका तिनका - पृ. 174

कुछ हरी दूब और सूखी वनस्पतियाँ,
कुछ टुकडे, पन्नियाँ चमकीली जमाकर
मेरी बेटी
गढ़ती है अपनी एक पृथ्वी
जो धडकती है बिना किसी मनुष्य के"[1]

स्पष्ट है कि बेटी की दुनिया में मनुष्य के बिना पृथ्वी की संकल्पना करके कवि ने पृथ्वी के साथ मनुष्य के अमानवीय व्यवहार के परिणाम को दर्शाया है। इस तरह अशोक वाजपेयी की कविताओं में वृक्ष, जल, पृथ्वी और चिड़िया की उपस्थिति कवि के पारिस्थितिक चिंतन की मिसाल प्रस्तुत करती है। दरअसल "अशोक वाजपेयी प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण से हटकर अपने शब्दों को जडता की सीमा में नहीं ले जाना चाहते। उनके लिए पत्तियों का हरा व्याकरण और चिडियों की ध्वनि-प्रतिध्वनि ही सुख का सही घर है।"[2] अर्थात् कवि स्वच्छ प्राकृतिक पर्यावरण का हिमायती है।

लीलाधर मंडलोई

"हमारे पूर्वज जानते थे
कि कितना ज़रूरी है
गौरैया का होना
वे बताते थे घर
जिनमें होते थे

---

1. अशोक वाजपेयी - तिनका तिनका - पृ. 213
2. सं. डॉ. संतोषकुमार तिवारी - अज्ञेय से अरुण कमल तक भाग 2 - पृ. 140

झरोखे
रेशनदान और धनियाँ
वे घोंसले बनाती थीं वहाँ
कि ध्वनि, शोर और तरंगों से
सुरक्षित था उनका जीवन।"[1]

'सुरक्षित था उनका जीवन' इन पंक्तियों से ज़ाहिर है कि अब उनका जीवन सुरक्षित नहीं है। कवि आगे लिखते हैं कि अब उनकी जगह बडे बडे फ्लैट, मोबाइल फोन टवर आदि ने हड़प ली है। पुरखों से विरासत में मिली पारिस्थितिक बोध के भाव को आज की पीढ़ी ने खो दिया है। भौतिक सुख सुविधा अपनाने की होड में वे अपने घर परिवेश की हरियाली की सफाई भी की। दरअसल लीलाधर मंड़लोई ने वर्तमान समाज की उस सोच की ओर उँगली उठायी है जहाँ प्रकृति और पारिस्थितिकी की सुरक्षा के बारे में सोचने और उसके लिए कोई व्यावहारिक कदम उठाने की कोशिश नहीं हो रहे हैं।

लीलाधर मंडलोई समकालीन कविता के उन सशक्त हस्ताक्षरों में एक है जिनकी कविता पारिस्थितिक चिंतन के विभिन्न पहलुओं को वैज्ञानिक धरातल के साथ प्रस्तुत करती है। उनकी कविता 'शर्मनाक' तथा 'नमक' पारिस्थितिक बोध की आवश्यकता पर ज़ोर देने के साथ पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न प्राकृतिक जीवों के होने की अनिवार्यता की ओर संकेत देती हैं। 'नमक' कविता मेंग्रोव्ह को आधार बनाकर लिखी गयी है। मेंग्रोव्ह अपने आप में एक स्वतंत्र पारिस्थितिक तंत्र है। ये

---

1. लीलाधर मंडलोई - न के बराबर, समकालीन भारतीय साहित्य, वर्ष 31, अंक 150, जुलाई-अगस्त 2010 - पृ. 121

पेड प्रायः समुद्रतटीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। सुनामी, समुद्री भूकंप से जुडे समुद्री सैलाब तथा चक्रवातों से समुद्रतटीय क्षेत्र व टापुओं के पर्यावरण तथा वहाँ के लोगों हिफासत करने के लिए मेंग्रोव्ह वनों व मूँगे की चट्टानों जैसी महत्वपूर्ण पर्यावरण व्यवस्था को बचाना ही चाहिए। लेकिन आजकल पर्यटन के बहाने समुद्रतटीय क्षेत्रों के मैंग्रोव वनों की व्यापक कटाई हो रही है। लीलाधर मंडलोई ने इसका जिक्र कविता में यों किया है :

> "मैं हरा होता हूँ और दुनिया के हरा होने का गाना गाता हूँ....। गाने में कुल्हाडी थामे एक आदमी शामिल होता है। कुल्हाडी की धार पर 'मेंग्रोव्ह' की पत्तियों से झरता नमक चाँदी-सा चमकता है। और झर जाता है।"

कवि का पारिस्थितिक चिंतन सामाजिक समस्या के रूप में कविता में प्रस्तुत हुआ है।

जीनांतरित बीजों का प्रयोग भारतीय किसानों के लिए भारी पड रहा है। इसमें कवि ने सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीच की दुरभिसन्धि की खिल्ली भी उठायी है। लीलाधर मंड़लोई ने 'शर्मनाक' कविता में इसकी अभिव्यक्ति कुछ इसप्रकार दी है :

"यह भयानक खबर
कि विदर्भ में
किसान आत्महत्या को विवश
कि लागत

---

1. लीलाधर मंडलोई - काल बाँका तिरछा - पृ. 32

13,500 रुपए प्रति एकड
और खेत उदास
सरकार बी.टी. कपास के समर्थन में
इस हद तक पागल
कि भूल गई
अपने खेत
अपने किसान
यहाँ तक आत्महत्या के आँकडे
जो किसी भी सरकार के वास्ते शर्मनाक"[1]

उन्होंने 'धरती के सुगंध' कविता में प्रकृति और मनुष्य के बीच के आपसी संबंध में आये परिवर्तन को दर्शाया है 'तुलसी' का पौधा जो भारतीय संस्कृति में बहुत पवित्र माना जाता है और घर-घर में जिस पर पानी चढ़ाने और दिया बारने का संस्कार है। लेकिन आजकल यह प्रथा बिलकुल गायब सी हो गयी है। कवि लिखते हैं : "पिछवाडे कई पौधे हैं और दो-एक पेड। एक पौधा तुलसी का जिस पर पानी चढ़ाने और दिया बारने का संस्कार है। सिर्फ माँ है जो उसकी साज-सँवार करती और सिर नवाती है। तीसरी पीढ़ी नहीं जानती कुछ भी इस बारे में। दूसरी पीढ़ी इसे फिज़ूल समझती है या गैरज़रूरी, कुछ साफ नहीं।" तो इससे ज़हारि होता है कि पीढ़ी दर पीढ़ी से पारिस्थितिक बोध धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। दरअसल कवि ने वर्तमान समाज में व्याप्त साँस्कृतिक संकट की ओर ही उँगली उठायी है। लीलाधर मंडलोई ने 'तीतर' कविता में तीतर पक्षियों की वंशलुप्ति की

1. लीलाधर मंडलोई - काल बाँका तिरछा - पृ. 122
2. वही - पृ. 44

समस्या उठायी है। बहुत सारे जीव आजकल वंशलुप्ति की विभीषिका का सामना कर रहे हैं। 'तीतर पक्षी' को उनके प्रतिनिधि के रूप में कविता में प्रस्तुत किया गया है।

संक्षेप में देखा जाए तो लीलाधर मंडलोई की कवितायें पारिस्थितिकीय बोध जगाने के साथ-साथ पारिस्थितिक सजगता की माँग पर ज़ोर भी देती हैं। मनुष्य के साथ अन्य प्राणियों के अस्तित्व की चिंता भी मनुष्य को होनी चाहिए। असल में प्रकृति की तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा मनुष्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है यही उनके पारिस्थितिक चिंतन का मूल विचार है।

राजेन्द्र उपाध्याय

समकालीन कवियों में राजेन्द्र उपाध्याय की कवितायें पारिस्थितिक संकटों की सशक्त अभिव्यक्ति देती हैं। प्रकृति के साथ होनेवाले अत्याचार कवि को आघात पहूँचते हैं। कवि के लिए पारिस्थितिक संकट अंततः एक साँस्कृतिक संकट है। उनका यह विचार 'गंगा केवल एक नदी का नाम नहीं' में मुखरित हो उठा है। सदियों से लेकर गंगा भारतीय जीवन और साँस्कृति के साथ जुडी रही है। गंगा नदी के घट पर मरना भारत वासी पुण्य मानते हैं। लेकिन उनके संपनों की गंगा अब नहीं रही है :

> "यह उसके स्वप्नों की गंगा नहीं,
> कि अब इसके घाटों पर कोई चिडिया भी पर नहीं मारती
> कि अब इसका पानी जहर होता जा रहा है
> हम अपने अमृत को जहर में बदल रहे हैं

अब हमारे लिए यह जीवन दायिनी,
कालप्रवाहिनी, कर्मनाश नदी
माँ नहीं
सिर्फ कूडा बहानेवाली गंदी नाली है
जिसमें हमारे आत्मीयों की आर्थियां
बेरोक-टोक बहायी जाती हैं"[1]

कविता से स्पष्ट होता है कि कवि का इशारा गंगा प्रदूषण की ओर है। लेकिन आगे की पंक्तियों में कवि का उम्मीद भरा स्वर गूँज उठता है : "मैं / अपनी गंगा को गंदगी से / और अपने ताजमहल को / जानलेवा धुएँ से बचाना चाहता हूँ / मैं / अपने पेड को / लम्बी उम्र देना चाहता हूँ।"[2]

मनुष्य की प्रकृति विरोधी करतूतों से कवि भली-भाँति परिचित है। वे जानते हैं कि अपनी खुशी और स्वार्थ चिन्ता के लिए मनुष्य प्रकृति तथा प्राकृतिक जीवों का शोषण कर रहे हैं। इसलिए कवि जीवों को अपना अधिकार देने की बात उठाते हैं :

"इससे पहले कि
कबूतर अपना आसमान
खरगोश अपनी हरी-भरी धरती
और मछलियाँ अपनी नदी भूल जाएँ
मैं उन्हें
वापस उनके आसमान

---

1. राजेन्द्र उपाध्याय - खिडकी के टूटे हुए शीशे में - पृ. 11
2. वही - पृ. 24

उनकी धरती
और उनकी नदी में छोड आना चाहता हूँ"[1]

चारों ओर व्याप्त पारिस्थितिक अव्यवस्था को देखते हुए कवि लिखते हैं कि कोई हमें शाप दे रहा है इसीलिए :

"दुधारू गायों के थन सूख रहे हैं
स्त्रियों के गर्भ में ही बच्चे मर रहे हैं
और पेड भरे वसन्त उखड़ रहे हैं
कोई हमें शाप दे रहा है
कोई हमें लगातार शाप दे रहा है
कोई हमारे पेडों और पौधों और लताओं को
लगातार शाप दे रहा है"[2]

दरअसल यह किसीका भी शाप नहीं है, प्रकृति को भूलकर, उसके साथ अत्याचार करने वाले मनुष्य ही प्रकृति का शाप है।

राजेन्द्र उपाध्याय की कविताओं में बढ़ते प्रदूषण की चिंता है प्रकृति पर हो रहे अत्याचारों, उसके शोषणों से कवि मन दुःखित है। मनुष्य के अस्तित्व के साथ दूसरों जीवों तथा प्राणियों के अस्तित्व एवं स्वतंत्रता को वे मानते हैं, उन्हें स्वीकारते हैं। उनको अपने आकाश, धरती, हरियाली आदि को वापस करने की बात इसलिए उन्होंने उठायी है। उनकी कविताओं से इसका भी पत्र चलता है कि पारिस्थितिक

---

1. राजेन्द्र उपाध्याय - खिडकी के टूटे हुए शीशे में - पृ. 27
2. वही - पृ. 11

संकट अंततः हमारा साँस्कृतिक संकट है। कवि का विलप और उनकी उम्मीद अंततः हमारी प्रकृति तथा संस्कृति के बचाव के लिए खडे हैं।

लीलाधर जगूड़ी

लीलाधर जगूडी की कवितायें सशक्त पारिस्थितिक बोध की बुलंद आवाज़ हैं। यह आवाज़ प्रकृति की, मनुष्यता के पक्ष में है। "जितनी मात्रा में मनुष्य मरता है / उतनी मात्रा में आत्मा भी मरती है / जितनी मात्रा में जीवन मरता है / उतनी मात्रा में प्रकृति भी मरती है / अपने विरोध के विरोध में/"[1] ऐसा लिखनेवाले कवि का आत्मबोध प्रकृति और मनुष्यता के बचाव के संघर्ष को निरंतर सर्मपित है। इसलिए जब कहीं एक पेड मरता है, एक झरना सूख जाता है या फिर एक कुआँ अंधा हो जाता है तब उसकी आत्मा आहत हो जाती है फिर भी नयी उमंगे उनकी आत्मा में स्फुर्ति भरती हैं और उन्हें आत्मविभोर कर लेती है। अर्थात् इन तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद भी कवि अपना आशावादी स्वर नहीं छोडते।

लीलाधर जगूड़ी ने 'पेड पर बहुत सारी अच्छी कविताएँ लिखी हैं। "लीलाधर जगूडी के लिए पेड 'शब्द-दर-शब्द की तरह खिलते हैं और उनका हिलना जडों के सत्संग से लौटकर मौसम के सामूहिक कीर्तन जैसा प्रतीत होता है।"[2] 'पेड़ का आत्मसाक्षात्कार', 'न होने का होना' ये कविताएँ 'पेड' के दो भिन्न अस्तित्व का चित्र प्रस्तुत करती हैं। पेड का आत्मसाक्षात्कार करते हुए कवि ने पेड

---

1. लीलाधर जगूडी - अनुभव के आकाश में चाँद - पृ. 19-20
2. सं. संतोषकुमार तिवारी - अज्ञेय से अरुण कमल तक भाग 2 - पृ. 156

का विद्रोही स्वर दर्शाया है। उनका विद्रोह मनुष्य द्वारा उस पर थोपे गये सारे सद्‌गुणों पर खुल्लम-खुल्ला आवाज़ उठाता है :

"आपकी करुणा आपकी उदारता जितना निरर्थक घमंड-
दे सकती थी
उससे मैं रह-रहकर फूल उठता हूँ
अस्तित्व से ही बनते हैं सारे संतुलन
आप नहीं जानते झुकने से मुझे नफ़रत है फिर भी झुकता हूँ
जबकि और उठना चाहता हूँ मैं और और और
यहाँ तक कि उन्नति के लिए मुझे हर साल नंगा होना पडता है।"[1]

पेड का यह आत्म साक्षात्कार दरअसल समकालीन कविता की अलग पहचान है। पेड के यह इस विद्रोही स्वर का अलग पहलू 'न होने का होने' में भी प्रस्तुत है। पेड़ को गहन मानवीय संबंधों के साथ जोड़कर देखने का कार्य इस कविता में हुआ है जो अंततः पेड़ का ही जीवनानुभव प्रतीत होता है :

"दिन भर के पेड जीवन भर की छायाएँ फैलाये हुए
जीवन से भरी हुई छायाएँ दुनिया भर का जंगल हो जाती हैं
दुनिया के जीवन भर जंगल हो जाते हैं मिलकर एक महावृक्ष
रात हो जाती है उस महावृक्ष की छाया"[2]

पूरी कविता पेड के वैभव और त्याग का यशोगन करती है।

---

1. लीलाधर जगूड़ी - भय भी शक्ति देता है - पृ. 79
2. लीलाधर जगूड़ी - अनुभव के आकाश में चाँद - पृ. 28

लीलाधर जगूड़ी ने पर्यावरण प्रदूषण और प्रकृति शोषण की समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया है। उन्होंने 'पनघट पर भगीरथ' में भूमंड़लीकरण और उपभोगवादी संस्कृति के तहत पानी जैसी प्राकृतिक चीज़ों के 'माल' में तब्दील हो ने की प्रक्रिया को सामाजिक तथा साँस्कृतिक विसंगति के रूप में दर्शाया है :

"फैला है गंगा का कछार
गंगा घुस जाती है पोलिथीन पाउच में
पहुँच जाती है फ़ाइव स्टार
पहुँच जाती है समुद्र पार"[1]

विडम्बना की बात है कि जब भारत के लोग पीने के पानी के लिए तरस रहे हैं तब गंगा का पानी विदेश की ओर निर्यात किये जा रहे हैं। संक्षेप में देखा जाए तो लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में गहन पारिस्थितिक बोध अभिलक्षित है यही समझना समीचीन होगा।

ज्ञानेन्द्रपति

ज्ञानेन्द्रपति समकालीन हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। यहाँ तक कि यही कहना ठीक होगा कि समकालीन हिन्दी कवियों में पारिस्थितिक चिंतन की सबसे सशक्त अभिव्यंजना उनकी कविताओं में मौजूद है। 'गंगातट' और 'संशयात्मा' उनके दो प्रमुख काव्य-संकलन हैं जिनकी लगभग सभी कवितायें पारिस्थितिक चेतना से ओतप्रोत हैं। उनकी कविता, समकालीन प्रकृति विरोधी अमानवीय

---

1. लीलाधर जगूड़ी - भय भी शक्ति देता है - पृ. 120

व्यवहार की ओर तीखा प्रहार करती है। प्रदूषण और प्रकृति शोषण उनकी कविताओं के केन्द्र में हैं, साथ ही पारिस्थितिक असन्तुलन की भयावहता भी।

'गंगातट' शीर्षक से ही पता चलता है कि इनमें संकलित कवितायें गंगा नदी पर आधारित हैं। अधिकतर कवितायें गंगानदी के साथ भारतवासियों के अटूट संबंध को दर्शाती हैं। गंगा नदी के विभिन्न दृश्यों को खूबसूरती के साथ इनमें खींची गयी हैं। 'गंगा स्नान', 'गंगातट, शुरू-रात की बेला', 'उस पार से आ रही है नाव', 'आए हैं दाता', 'पतंगों को छाँकर निकालते रहेंगे', 'कितनी देर लगती है', 'नाव को नदी देने जा रहे हैं', 'एक गोमुखी आई हुई गंगातट', 'काशी के तकवाहे', 'संगम - तीरे जुडा माघ मेला' जैसी कवितायें विभिन्न रंगों में रंगी गंगा नदी और उसके तट का। सुंदरता के साथ चित्रित करती हैं। 'संगम तीरे जुड़ा माघ - मेला' की पंक्तियाँ उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत है :

"हर बरस की तरह इस बरस भी
आए संगम, तिरने
पनतिरी चिड़ियों के समूह
शीतकाल के यायावर अतिथि
हिमरंगी पाखी, हिमाचलवासी
हिमानी ऊँचाइयों से दोआबे तक आवगमन के अभ्यासी"[1]

उनकी कविताओं का दूसरा पक्ष प्रदूषण पर आधारित है। गंगा आज भयानक ढंग से प्रदूषण का शिकार है। प्रदूषण मुक्त गंगा के लिए कई कदम उठाये

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - गंगातट - पृ. 94

जा रहे हैं फिर भी पूरी तरह उसमें सफलता हासिल नहीं कर पा रहे हैं। गंगा किनारे असंख्य औद्योगिक कारखाने हैं जो गंगा पानी को विषैले बनाते जा रहे हैं। प्रदूषण की इस समस्या का चित्रण नदी और साबुन (एक), नदी और साबुन (दो) में किया गया है :

"स्वार्थी कारखानों का तेजाबी पेशाब झेलते
बैंगनी हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा"[1]

इन पंक्तियों से ज़हारि है कि गंगा मैली-कुचल हो गयी है और गंगा अब मृत इच्छाओं के साथ जी रही है। शुभ्र त्वचा वाली गंगा को बैंगनी बनाने का गुनाहकार दरअसल औद्योगिक विकास है। विकास के कराल हस्तों से परिचय कराते हुए कवि समझाते हैं कि विकास अंततः विनाश का ही पर्याय है। विकास के नाम पर जितने भी कार्य हो रहे हैं उन सब को झेलने के लिए आज का मानव बाध्य हैं। इस भीषणता की ओर संकेत करते हुए कवि ने लिखा है :

"विनाश नहीं विकास
टूटते हैं अब भी
प्रकृति के प्रकोप हम पर"[2]

स्पष्ट है कि विकास जनित प्राकृतिक प्रकोपों पर ही कवि ने इशारा किया है।

खेतीबाड़ी और किसान से जुड़ी हुई समस्याओं का ज़िक्र भी उन्होंने किया है। 'सूखे से जिनका नाम' में कवि पूछते हैं : "भारतीय खेतों में / उनकी

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - गंगातट - पृ. 20
2. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 120-121

लहलुहाती फसल कभी लहूलुहान क्यों नहीं होती / उसे चर क्यों नहीं पाते/ ..../ खाद का दाम बढ़ने से उनका गेहूँ नहीं दुबलाता तनिक / चुपड़े गालोंवाली फूली-फूली रोटियों का गेहूँ / उनकी रसोई की / एक हरी मिर्च तक नहीं मुरझाती / शताब्दी के सबसे भीषण अकाल में/" अर्थात् भारतीय किसान की नियति अब भी वही है जिसे प्रेमचन्द ने सालों पहले वाणी दी थी। विकास जितने भी हुए किन्तु भारतीय किसानों के जीवन परिवेश से कुछ खास परिवर्तन अब भी नहीं हुआ है। वैश्वीकरण के दौर में, किसानों की बदहालत का जीता-जागता चित्रण 'दिनान्त पर आलू' कविता में हुआ है। आलू का, चिप्स में तब्दील होने की प्रक्रिया बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का व्यापार तंत्र है। भारतीय किसानों के खून और पसीने से लैस आलू जब बहुराष्ट्रीय कंपनियों का 'लाइस' बनते तो वह हमारे लिए और भी रुचिकर और स्वीकार्य हो जाता है। पूरे भारत में, किसानों को अपनी मेहनत का फायदा नहीं मिलता और उनके उत्पन्न का लाभ कोई ओर ले जाता है। कविता में इस त्रासदी का उद्‌घाटन यों हुआ है :

"ममतालू किसान-हाथों की मेहनती मजूर उँगलियों से
ज़मीन की रात से उखाडकर लाए हुए वे
दिखते हैं
....
और मैं देखता हूँ, आलुओं की देह के
कार्बोहाइड्रेट में कहाँ से घुलती-मिलती है करुणा
करुणा-जिसे छिलके के साथ छुड़ाकर
शेष कार्बोहाइड्रेट के कतर-कतर

चिप्स में बदलती हैं पैकेटबन्द खाद्यनिर्माता बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ
उन्हें भरतीं पारदर्शी प्लास्टिक-कारागार में
लाभ-लोभ के सर्वग्रासी जबडों के बीच लपलपाती जीभ को
सौंपने"[1]

दूसरी कविता में, नदी के 'साबुन' में तब्दील होने की ओर कवि ने इशारा किया है। याने कि भूमंड़लीकरण के युग में उपभोगवादी संस्कृति के प्रभाव से गंगा को साबुन बनाकर बिकने की प्रक्रिया चालू है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इस व्यापार-तंत्र का पर्दाफाश ज्ञानेन्द्रपति ने इस कविता में किया है।

संशयात्मा की ज़्यादातर कवितायें विकास जन्मी पारिस्थितिक समस्याओं पर आधारित हैं। 'एक आदिवासी गाँव से गुज़रती सड़क' तथा 'अधरात घास-गन्ध' कविताओं के ज़रिए ज्ञानेन्द्रपति ने विकास के नाम पर प्रकृति में मनुष्य के हस्तक्षेप का और उसके दुष्परिणामों को दर्शाया है। आदिवासी समूह को विकास के मोहजाल में फँसाकर आगे बढ़ते विकास रूपी दैत्य का वर्णन कवि ने 'एक आदिवासी गाँव से गुज़रती सड़क में' किया है। जैसे कि शीर्षक बता रही है कि "इस आदिवासी गाँव के आँगन से गुज़रती हुई यह सड़क / अत्याचारियों के गुज़रने का रास्ता है / यह इनके पैरों से नहीं बना / यह इनके पैरों के लिए नहीं बना / बड़े-बड़े रोड़ रोलर आए थे लुटेरे के वाहनों के आने से पहले / धरती कँपाते धीरे-धीरे चलते हुए विशालकाय रोड़ रोलर/"[2] ज़ाहिर है कि एक ओर

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 136
2. वही - पृ. 20

जंगली-पारिस्थितिकी की तबाही हो रही है तो दूसरी ओर आदिम जनजातियों की संस्कृति और सभ्यता पर आधुनिक मानव का सांस्कृतिक वार जारी है।

ज्ञानेन्द्रपति के पारिस्थितिक दर्शन का उत्तम निदर्शन 'यह पृथ्वी क्या केवल तुम्हारी है' में अभिलक्षित है। इस पृथ्वी में जितना हक मनुष्य के लिए है, उतना ही हक अन्य प्राणियों का भी है। इस तथ्य की उद्घोषणा करके कवि अपने पारिस्थितिक बोध का परिचय देते हैं। हर प्राणी की अहमियत की ओर कवि ने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है :

"मैं पूछता हूँ
यह पृथ्वी क्या केवल तुम्हारी है?
क्या तुम्हें
एक केंचुए के पास जाकर
पृथ्वी को उर्वर करने में तल्लीन केंचुए के पास
नहीं पूछना चाहिए
पृथ्वी के बारे में कोई भी अहम फैसला लेने से पहले!
कौन जाने, पृथ्वी के भविष्य को ले, तुमसे ज्यादा चिन्तित रहती
हों चींटियां!"[1]

'गिद्ध वृक्ष', 'विमानस्पर्धी' आदि कवितायें पक्षियों की ज़िन्दगी पर आधारित हैं। लावारिस लाशों को खानेवाले गिद्ध पक्षियों का ज़िक्र पहली कविता में किया है तो दूसरी कविता में विमान के उड़ान से मारे जानेवाले पक्षियों का वर्णन है। धरती

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 138

माँ ने उन्हें आकाश भेज दिया था और वृक्ष नीचे उनका इन्तज़ार कर रहा था। लेकिन वे लौट नहीं आये कवि अपना यह दर्द यों प्रकट करते हैं :

"पक्षिकुल की
जिन्हें
विमान-कम्पनियों और बीमा-कम्पनियों का अभिशाप - किन्हीं
का लाभ
नीचे धरती पर, कीटनाशकों का जहर बनकर मार रहा है
उनके अण्डों को तुनुक बनाकर तोड़ रहा है, असमय
घोंसला में ही बुझा दे रहा है जीवन-जोत, भ्रूण का अनबना गला
टीपकर
खेचर प्रजातियों को पोंध रहा है आकाश से।"[1]

'लुप्त होती प्रजातियों के अन्तिम वंशधर' में वंशलुप्ति की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। दुनिया से हर एक प्रजाति लुप्त होती जा रही है। ऐसे में कवि आतंकित है कि इस पृथ्वी से लुप्त होनेवाली अंतिम प्रजाति मनुष्य हो सकता है :

"आगामी मानव-जीवन का पदचिह्न
कभी नहीं सकुचाते हुए
कठघरे के बाहर से देखते
हमारा अनुकरण
भूले कि ये हम हैं जो अनुसरण कर आए
मुदित भूले, नहीं तो जवाब देना पडेगा, कटघरे में खड़े हो

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 162

कि अगली प्रजादी बन हम आए
अन्तिम क्यों हुए और अन्तक।"[1]

संक्षेप में ज्ञानेन्द्रपति प्रकृति के तथा पारिस्थितिकी पक्षधर कवि है। उनकी पक्षधरता प्रकृति और पारिस्थितिकी की सुरक्षा और बचाव के लिए है। प्रकृति शोषण तथा उपभोगवादी संस्कृति का वे खुल्लम-खुल्ला विरोध करते हैं।

समकालीन कवि का पारिस्थितिक चिंतन अपने आप में पूर्ण और बहु आयामी है। इस ओर अपना योगदान देने वाले और भी कवि हैं। जिनमें ऋतुराज, देवीप्रसाद मिश्र, स्वप्निल श्रीवास्तव, विजय शंकर चतुर्वेदी, उमाशंकर चौधरी, बलदेव वंशी और लाल्टू विशेष उल्लेखनीय हैं। ये कवि भी परिवेशगत पारिस्थितिक समस्याओं की ज्वलंत अभिव्यक्ति देने में सफल हुए हैं।

अध्ययन के दौरान यही साबित होता है कि समकालीन कवि और समकालीन कविता की प्रकृति दृष्टि दरअसल पारिस्थितिकी और मनुष्य को केन्द्र में रखकर विकसित की गयी है। समकालीन कविता प्रकृति के ऊपर मनुष्य के हस्तक्षेप का ब्यौरा इसलिए प्रस्तुत करती है कि कविता महज मनोरंजन न बनकर अपनी सोद्देश्यपरकता को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें। बौद्धिक स्तर पर पाठकों को ले जाने के दायित्व के साथ उनमें पारिस्थितिक बोध तथा पारिस्थितिक चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य भी समकालीन कविता निभाती है। इस प्रयास में सभी समकालीन कवि अपना महत्वपूर्ण योगदान दर्ज़ कर रहे हैं।

---

1. ज्ञानेन्द्रपति - संशयात्मा - पृ. 174

जैसे कि पहले अध्याय में सूचित किया था कि पारिस्थितिक विमर्श एक उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श है जिसका विकास बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हुआ था। आज विश्व भर के सभी देश अनगिनत पारिस्थितिक समस्याओं का सामना कर रहे हैं जिसका हल ढूँढने के लिए संगोष्ठियाँ, बहस, सम्मेलन, आन्दोलन यहाँ तक कि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नये-नये खोज हो रहे हैं। फिर भी भीषण समस्या के रूप में यह पूरी दुनिया को खाई जा रही है। इसके अन्यान्य पहलुओं की विस्तृत चर्चा हो चुकी है। जिससे यह जानकारी प्राप्त होती है कि इस समस्या के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा साँस्कृतिक प्रभाव का फैलाव कितना गहरा और खतरनाक है। इससे मुठभेड़ करना सबसे जोखिम भरा काम है।

पारिस्थितिक विमर्श केवल साहित्य तक सीमित नहीं है। यह जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने का एक जद्दोजहद है। समकालीन कविता को पारिस्थितिक विमर्श के विस्तृत दायरे की सही पहचान है। समकालीन हिन्दी कविता इस विषय को अपने देश प्रदेश के अनुरूप वहाँ की प्रकृति, जीवन परिवेश, समाज, संस्कृति तथा भाषा, को मिलाकर समग्र अध्ययन ही प्रस्तुत करती है। प्रत्येक देश या क्षेत्र की पारिस्थितिकी के साथ मनुष्य के सह-संबंध और सह-अस्तित्व की आवश्यकता पर समकालीन कविता ज़ोर देती है। समकालीन कविता इस तथ्य का उद्घाटन करती है कि सभी पारिस्थितिक समस्याओं का असर पूरे पारिस्थितिक तंत्र तथा मनुष्य समाज पर पड़ता है। प्रकृति शोषण की ओर संकेत देते हुए प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में परहेज़ बरतन की ज़रूरत पर समकालीन कविता ज़ोर देती है। प्रकृति तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा करके मनुष्य और मानवीयता को बचाये

रखना उसका एकमात्र उद्देश्य है। काफ़ी हद तक समकालीन कवि और कविता इस विषय को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। फिर भी दर्शन की दृष्टि से अन्य कई पहलुओं को उसने छोडा भी है। पारिस्थितिक स्त्रीवाद, पारिस्थितिक समाजवाद जैसे विषयों पर बहुत ही कम ही कवितायें लिखी गयी हैं। इस ओर भी समकालीन कविता को आगे बढ़ना है।

5.6 निष्कर्ष

उपभोगवादी संस्कृति भारतीय समाज को एक नवीन जीवन रीति की ओर ले जा रही हैं। वर्तमान समाज इस नवीन संस्कृति से अंधा हो रहा है। प्रकृति को भोग्या मानकर उनके हर एक अंश को लूटने की मानसिकता इस समाज में हर कहीं व्याप्त है। प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति और जीवन-शैली की विविधता खोकर एकल संस्कृति की ओर प्रस्थान कर रहा है। हर काल में इस तरह के साँस्कृतिक पतन के विरोध में कला और साहित्य का संघर्ष दर्ज़ हुआ है। और आज भी यह हो रहा है। यहाँ तक कि विज्ञान और तकनीकी भी प्रकृति तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा की बातें करते हैं। आजकल वैश्विक स्तर इस विषय को लेकर अलग ढंग से विचार विमर्श हो रहा है। पर्यावरण की रक्षा के लिए पर्यावरण की अपनी एक राजनीति का प्रादुर्भाव भी इसीका परिणाम है। लेकिन विडंबना की बात यह है कि अभी तक इसके सुलझने का नामोनिशान नहीं दिखाई देता है।

साहित्यकार या कवि की प्रतिबद्धता मनुष्य और समाज से है। समकालीन हिन्दी कविता के लगभग सभी हस्ताक्षरों ने इस विषय पर गंभीरता के साथ कलम

चलाई है। प्रकृति और पारिस्थितिकी के बचाव के लिए उन्होंने रोदन, प्रतिरोध और उम्मीद का स्वर कविता के ज़रिए दर्ज़ भी किया है। दरअसल समकालीन हिन्दी कविता के पारिस्थितिक चिंतन के निचोड़ में पाठकों में नये पारिस्थितिक बोध जगाने की भावना अंतर्निहित है। इस दृष्टि से ज्ञानेन्द्रपति, एकान्त श्रीवास्तव, राजेश जोशी, राजेन्द्र उपाध्याय, पंकज चतुर्वेदी, विनय दुबे, अरुण कमल, अशोक वाजपेयी, लीलाधर जगूड़ी, लीलाधर मंड़लोई, निर्मला पुतुल, नीलेश रघुवंशी की कवितायें समकालीन हिन्दी कविता की पारिस्थितिकीय चेतना का निदर्शन हैं। ये कवि पारिस्थितिकी के विषय को गंभीरता से अपना लिया है। समकालीन परिवेश के तहत इस विषय को देखने-परखने का और उसके अन्यान्य पहलुओं से पाठकों को अवगत कराने की जोख़िम भी उठा रहे हैं। निस्संदेह समकालीन कवि बहुत ही सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

❖❖❖

छठा अध्याय

पारिस्थितिक कविताओं की भाषिक संवेदना

छठा अध्याय
पारिस्थितिक कविताओं की भाषिक संवेदना

विचार और सामाजिक जीवन के बदलाव के अनुसार साहित्य के विषय में भी परिवर्तन होता है। पारिस्थितिकी का विषय आज चर्चा के केन्द्र में है। जब विषय नया होता है तब उसका कथ्य और शिल्प भी नये होंगे। हमेशा ऐसा हो ऐसा भी नहीं है। लेकिन पारिस्थितिकी के विषय ने समकालीन कविता को नया कथ्य और शिल्प प्रदान किया है। जिसकी चर्चा इस अध्याय का उद्देश्य है।

6.1 समकालीन पारिस्थितिक कविता का कथ्य पक्ष

जहाँ तक कथ्य का सवाल है इसकी चर्चा तो पहले के पाँच अध्यायों से पूरी हो चुकी है। समकालीन कविता ने पारिस्थितिकी के विषय को प्रकृति और मानव के साथ जोड़कर देखने-परखने का कार्य किया है जो विषय की दृष्टि से सही साबित होती है। पारिस्थितिक विमर्श के कई पहलू हैं जिनका विस्तृत ब्यौरा समकालीन कविता प्रस्तुत करती भी है। दरअसल समकालीन कविता प्रकृति विरोधी पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के खिलाफ़ है और प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के पक्षधर होकर मानवीय मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत हैं। इस संदर्भ में अरुण कमल का यह कथन बिलकुल संगत ही लगता है कि : "अभी हिन्दी कविता में कई दौर के और भिन्न-भिन्न विचारधारा के कवि सक्रिय हैं। लेकिन इसमें कोई शक नहीं है कि तमाम मतभेदों और काव्य आग्रहों के बावजूद सबसे महत्वपूर्ण स्वर उन्हीं कवियों का है जो

स्पष्टतः पूँजीवादी-समाजवाद व्यवस्था के विरोधी है और मानव मूल्यों की पुनःप्रतिष्ठा के लिए संघर्ष कर रहे हैं।"[1] वास्तव में समकालीन पारिस्थितिक कविताओं का केन्द्रीय विचार इस चिन्तन पर आधारित है।

समकालीन कविता विभिन्न पारिस्थितिक समस्याओं से पाठकों को अवगत कराती हैं। इस प्रयास में उसने प्रदूषण तथा प्राकृतिक प्रकोपों की विभीषिका को दर्शाकर प्रकृति तथा मनुष्य पर उसके प्रभाव की ओर संकेत दिया है। अतिरिक्त इसके प्रकृति-शोषण के विभिन्न आयाम समकालीन कविता की चर्चा का विषय रहे हैं। देखना चाहिए कि इसप्रकार के विषय कथ्य की दृष्टि से समकालीन कविता के लिए नवीन ही है। दरअसल यह समय की माँग है और समकालीन कविता इस विषय को गंभीरता तथा गहराई के साथ अभिव्यक्ति भी दे रही है।

पारिस्थितिक विमर्श के अंतर्गत पारिस्थितिकी से जुड़े तमाम मुद्दों पर विचार-विमर्श किया गया है। समकालीन कविता में इस विषय के तहत जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने की कोशिश है। इसप्रकार की कविताओं में प्राकृति और पारिस्थितिकी मनुष्य के विभिन्न जीवन परिस्थितियों के साथ प्रस्तुत होती हैं। आज प्रकृति मनुष्य की नृशंसता का शिकार हो रही है और कभी-कभार इसके खिलाफ़ का तांडव भी दिखाई देता है, जिसमें मनुष्य अपने अहंकार छोड़ने को मजबूर होता है। प्रकृति और मनुष्य के बीच के इस द्वन्दात्मक संबंध और संबंध विच्छेदन दरअसल पारिस्थितिकी के लिए भारी पड़ रही है। क्योंकि पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने के लिए इन दोनों के सहयोग की सख्त ज़रूरत है। समकालीन

---

1. अरुण कमल - कविता और समय - पृ. 191

कविता ने इस विषय की नब्ज़ पकडते हुए प्राकृतिक चीज़ों के उपभोग में परहेज़ बरतने की बात उठायी है।

समकालीन कविता के कथ्य की अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि यह विकास जन्मी पारिस्थितिक संकटों का यथार्थ चित्रण में प्रस्तुत करती है। इसके तहत पारिस्थितिक विस्थापन, वंशलुप्ति की समस्या आदि को ज्वलंत अभिव्यक्ति देने में समकालीन कविता सक्षम हुई है।

पारिस्थितिक विषय के वैज्ञानिक धरातल प्रस्तुत करते हुए समकालीन कविता ने अपना वैज्ञानिक बोध को भी दर्शाया है। विज्ञान और तकनीक के बढ़ते प्रभाव से प्रकृति, पारिस्थितिकी तथा जीवन परिवेश में होनेवाले परिवर्तनों तथा तद्‌जनित पारिस्थितिक संकटों की ओर भी इस तरह समकालीन कविता ने नज़र डाली है।

भूमंड़लीकरण, उपभोगवाद और बाज़ारीकरण की मिलीभगत प्रकृति के विरोध में किसप्रकार षड्‌यंत्र रचती है इसकी ओर भी समकालीन कविता ने ध्यान दिया है। आज पूरी दुनिया एक ग्लोब गाँव बनती जा रही है। पूरी दुनिया एक बाज़ार में तब्दील हो चुकी है। प्रकृति तथा प्राकृतिक चीज़ें भी बाज़ार के माल बन गयी हैं। पानी, हवा, मिट्‌टी, चिड़िया, पेड़, पौधे, जंगल सब बाज़ारू चीज़ें हैं जिनका मूल्य बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ तय कर रही हैं। समकालीन कविता इस सच्चाई का पर्दाफाश करती है और निर्भीकता के साथ उसे शब्दबद्ध भी करती है। अर्थात् समकालीन कविता भूमंडलीकरण, उपभोगवाद और बाज़ारीकरण प्रकृति के लिए ख़तरनाक साबित करती है।

पारिस्थितिक विमर्श के अध्ययन के तहत समकालीन कविता ने हरित राजनीति के विषय पर विचार-विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पर्यावरण के राजनीतिक सामाजिक, साँस्कृतिक प्रतिरोध को भी कथ्य के विषय बनाया है। अर्थात् समकालीन कविता न केवल पारिस्थितिक समस्या को प्रस्तुत किया है बल्कि उसके विभिन्न पहलुओं तथा सामाजिक साँस्कृतिक क्षेत्र में इसके प्रभाव को भी दर्शाया है।

समकालीन कवि के रोदन, प्रतिरोध तथा उम्मीद का भाव भी समकालीन कविता में अभिलक्षित है। साथ ही पाठकों में पारिस्थितिक बोध जगाने के जद्दोजहद के दौरान बहुत सारी कवितायें लिखी गयी हैं। पारिस्थितिक बोध जगानेवाली कवितायें इस तरह समकालीन कविता की खास पहचान बन जाती है।

मोटे तौर पर देखने पर समकालीन पारिस्थितिक कविताओं के कथ्य के केन्द्र में प्रकृति, पारिस्थितिकी तथा मनुष्य की उपस्थिति ज़ाहिर है। प्रकृति के संदर्भ में प्रकृति के सभी चराचरों को, पारिस्थितिकी के संदर्भ में प्रकृति मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के बीच के सह-संबंध को और मनुष्य के संदर्भ में उनके सामाजिक, साँस्कृतिक तथा राजनीतिक क्रिया-कलापों को ही समकालीन कविता लक्ष्य करती है।

वैसे तो मानव और प्रकृति काव्य के दो प्रमुख विषय रहे हैं। इनका परिवर्तित रूप काव्य का परिवर्तन है। आज मानव बदल गया है, उसकी संस्कृति बदल गयी है। परिणामतः प्रकृति के प्रति उसकी भावनाओं, आस्था-विश्वासों एवं धारणाओं में भी काफ़ी बदलाव आ गया है। प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंध विच्छेदन अंततः पारिस्थितिक असंतुलन की समस्या में परिणत हुआ है।

6.2 समकालीन कविता और भाषा

समकालीन कविता की कार्य-शैली पहले की कविताओं से भिन्न है। कविता अब मात्र कवि का वक्तव्य न होकर जीवन के व्यापक परिवेश की अभिव्यक्ति भी है। इसलिए समकालीन कविता शिल्प शब्द को व्यापक अर्थ में प्रयुक्त करती है। वस्तु के अनुरूप ही शिल्प बनता है। काव्य शिल्प के संबंध में जब चर्चा करते हैं तो सबसे पहले काव्य-भाषा की बात सामने आती है। "काव्य भाषा शब्दों के अर्थ को बार-बार नया करती है अर्थात् काव्य भाषा अमूर्तन क्रिया के माध्यम से अपनी जीवन्तता को प्रमाणित करती है। काव्य भाषा अपने मूल तत्वों जैसे सामान्य शब्द प्रयोग, सन्दर्भ, प्रतीक, बिम्ब, तथा अप्रस्तुत विधान आदि के विविध रूपों से तथा सांस्कृतिक आनुषंगों के माध्यम से इस क्रिया को सम्पन्न करती है। कविता में कवि अपने विचारों द्वारा युग-बोध और युग संदेश से संबंध भावों का विनियोजन इस रूप में करता है कि वे कालातीत होने पर भी युगधर्मिता का निर्वाह करते हैं।"[1]

समकालीन पारिस्थितिक, कविता की भाषा अपने शब्दप्रयोग प्रतीक योजना तथा बिंबों के प्रयोग में नवीनता लाकर शब्दों में नये नये अर्थ भरती है। ऐसा करते हुए यह कविता युग बोध से सम्बद्ध होकर प्रकृति, पारिस्थितिकी तथा मनुष्यता के बचाव का स्वर बुलंद करती है।

भारतीय आचार्यों ने काव्य भाषा के अध्ययन और विवेचन काव्य शिल्प के सहारे किये हैं। काव्य शिल्प रचनाकार की संवेदना से जुड़कर कालगत और भावगत रूपों की अभिव्यक्ति करता है। काव्य में भाषा की उपेक्षा नहीं की जा

1. डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय - हिन्दी काव्य भाषा - पृ. 12

सकती। भावाभिव्यक्ति के अतिरिक्त कविता जो कुछ भी प्रदान करती है उसके लिए भाषा का बहुत बड़ा हाथ है।

समकालीन कविता की भाषा जनसामान्य की भाषा है। यह भाषा समकालीन कविता को संवेदनाओं की अभिव्यक्ति में अधिक सक्षम बनाती है। सहज बोलचाल की भाषा में गद्यात्मकता का गुण अंतर्निहित है। बौद्धिकता का गुण भी समकालीन कविता की भाषा में अभिलक्षित है।

भाषा शब्दों से बनती है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि भाषा सिर्फ शब्दों का समुच्चय है। दरअसल यह अनुभूति और चेतना की अभिव्यक्ति का, युग और जीवन के यथार्थ से साक्षात्कार का बोध कराने का माध्यम है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के अनुसार "कविता के शब्दों में अर्थ होता है। वही अर्थ कविता को बाह्य संसार से जोडता है। अर्थ को छोड़कर कविता नहीं हो सकती।"[1] समकालीन कवियों ने युगीन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उर्दू, देशज, अंग्रेज़ी के साधारण बोलचाल की भाषा का बहुतायत प्रयोग किया है।

समकालीन कविता के पारिस्थितिकीय अभिव्यक्ति में भी इन सभी विशेषताएँ अंतर्निहित हैं। शिल्पगत दृष्टि से और भी कई विशेषताएँ पारिस्थितिक कविताओं में विद्यमान हैं।

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - कविता क्या है - पृ. 85

6.3 पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र और काव्य-भाषा

उत्तर आधुनिकता के प्रारम्भ से काव्य के क्षेत्र में कई प्रवृत्तियों और वादों का उदय हुआ है। समय-समय पर इस तरह के वाद और प्रवृत्तियों ने साहित्य को सौंदर्य के नये धरातल और आयाम प्रदान किये हैं और उन्हें समृद्ध बनाया है। पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र भी एक नयी कार्य-शैली है जो एक नये सिरे से काव्य में नयी सौंदर्य भावना का पुट भरने का कार्य कर रही है। दरअसल पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र की व्यापकता, गहराई, यथार्थपरकता और पारिस्थितिकीय चेतना से समकालीन कविता अनुप्राणित है।

पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र ने समकालीन हिन्दी काव्य को नवीन वस्तु, भाव-विचार और भाषा शैली प्रदान करके सौंदर्यशास्त्री दृष्टि में एक नया आयाम जोड़ दिया है। पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र वन्य की पूजारिन है। इस दृष्टि से, इस कोटि की कविताओं के विषयवस्तु और भाव जगत् में वन्य की खोज और उम्मीद का भाव हर कहीं व्याप्त है। इसी खोज में काव्य भाषा तथा शिल्प उनके अनुकूल गढ़ित किया गया है। जब समकालीन कवि लिखते हैं :

"ये दो से पाँच फुट जमीन पर खड़े पेड़
सौ फिट तक छाया। हज़ार तक हरियाली
फेफडों तक हवा और कोसों तक वसन्त देते हैं
जनमते ही जो मोची और दर्जी बन जाते हैं
और सिलना शुरू कर देते हैं ज़मीन को

1. लीलाधर जगूडी - एक पूरी ऋतु, नया ज्ञानोदय, विशेषांक 63, मार्च 2004 - पृ. 21

खुद के बारे में यह जानते हुए कि हमें सींचने वाले
बहुत लोग नहीं है
इसलिए उन्हें एक पूरी ऋतु चाहिए
प्यास की नहीं पानी की एक पूरी ऋतु।"[1]

तब समकालीन कविता के नये भावबोध से कविता आलोकित हो उठती है। समकालीन कविता की भाषा इस तरह पेड़, चिड़िया, जंगल, पहाड़, नदी, झरने, पानी, कुआँ, धरती, समुद्र, हवा जैसे प्राकृतिक बिंबों को वाणी देती है। उनका आत्मसाक्षात्कार कराती है। ऐसी कविताओं की भाषा प्राकृतिक तत्वों के आमोद, करुणा, रोदन, आक्रोश, भय तथा विद्रोह और कभी-कभी खुशी का भाव उजागर करती है। ये चीज़ें ज़्यादातर खुशी का भाव ही प्रकट करती हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है वह कुछ भी सहन लेगी। अर्थात् करुणा या खुशी का भाव विद्रोह में तब्दील हो जाने में समय नहीं लगता। राज्यवर्द्धन की 'नदी आदमखोर हो गई है!' कविता नदी की विद्रोही भावना से ओतप्रोत हो उठती है :

"जब से नदी पर बना है बाँध
तब से नदी
सुंदरबन के बाघ की तरह
आदमखोर हो गई है।"[1]

करुणा का भाव प्रायः जानवरों के प्रति मनुष्य की नृशंसता को दर्शाने के लिए प्रयुक्त है। एक उदाहरण देखिए :

---

1. राज्यवर्द्धन - नदी आदमखोर हो गई है! - हंस, वर्ष 25, अंक 6, जनवरी 2011 - पृ. 51

"एक गोली दगी
उसकी कोख में धाँय!
वह रुका
जैसे समय की गति रुक गयी हो
वह सिकुडा
धीरे-धीरे सिकुडता गया
और फिर धरती की गोद में
फैलकर सहज हो गया
निस्पन्द।"[1]

पारिस्थितिक सौंदर्यशास्त्र ने काव्य-भाषा में नये नये भावों का पुट भरते हुए समकालीन कविता के पारिस्थितिक बोध तथा पर्यावरणीय चेतना को उजागर किया है।

6.3.1 प्रकृति और भाषा

भाषा असल में एक संस्कार है जिसका अंकुरन एवं पल्लवन उस समाज की मिट्टी, पानी, हवा में होती हैं। आज भाषाएँ हमारी दुनिया से मिट रही हैं। भाषाओं की विविधता का ह्रास तथा उनके प्रति हीनता का भाव मौजूदा समाज की साँस्कृतिक विसंगति बन गये हैं। प्रकृति तथा पारिस्थितिक बोध से दूर हो जाने के परिणाम के रूप में इसे हम देख सकते हैं। दुनिया की पहचान और उसमें होनेवाले परिवर्तनों की सही जानकारी भाषा के माध्यम से प्राप्त होती हैं। साँस्कृतिक

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी - बेहतर दुनिया के लिए - पृ. 67

विविधता तथा भाषा के साथ अटूट संबंध है। वास्तविकता यह है कि भाषा, प्रकृति और मनुष्य के बीच के आपसी संवाद का उत्पन्न और उपादान है। इसलिए भाषा जब मरती है तब साँस्कृतिक विविधता का भी ह्रास होता है।

6.3.2 भाषा और पर्यावरण

समय-समय पर ज्ञान-विज्ञान के नए रूपाकार और आशय कविता की भाषिक-संरचना में ग्रहण होते रहे हैं। पारिस्थितिकी का विषय एक हद तक वैज्ञानिक है। इसलिए वैज्ञानिक तथ्यों को उजागर करने में साहित्य के उपमानों का प्रयोग अपने ढंग से करता है। पर्यावरण की भाषा मानवीय तथा नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा की बातें उठाती हैं। इसलिए पारिस्थितिक कविताओं में चित्रित आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, पेड-पौधे, चिड़िया, जैसे प्राकृतिक बिंब पारिस्थितिक बिंबों के रूप में प्रस्तुत होते हैं। ये बिंब प्रदूषण या शोषण के अर्थों में सीमित न होकर मौजूदा प्रकृति विरोधी सभ्यता के विरोध में खड़े होते हैं।

समकालीन पारिस्थितिक कविताओं की भाषा गद्यात्मक है। ये कवितायें छंद, लय आदि से मुक्त हैं। अर्थात् अधिकांश कविताएँ छन्द मुक्त हैं। सवाल उठाया जा सकता है कि ऐसा क्यों है? यह बात सही है कि भारतीय जीवन गद्यात्मक नहीं, लयात्मक है। लेकिन भारतीय समाज बदल गया है। वह अधिक यांत्रिक होता जा रहा है। अर्थात् कविता से भी संगीतात्मकता तथा लयात्मकता छूटती जा रही है। समकालीन पारिस्थितिक कविताओं की भाषा भी संगीतात्मकता तथा लयात्मकता से वंचित है।

6.3.3 पूँजीवादी तकनीकी सभ्यता और भाषा

पूँजीवादी तकनीकी सभ्यता प्रकृति का बेहिसाब शोषण कर रही है। इसका संबंध भाषा से भी होता है। भाषा से बहुत सारे शब्दों का ओझल हो जाना इसका द्योतक है। हम हरेपन की बात बार-बार उठाती है। इसलिए कि हमारे चारों ओर से हरापन गायब होता जा रहा है। कई प्राकृतिक चीज़ें नष्ट होती जा रही हैं। समकालीन कविता ने इस तरह के कई चित्र प्रस्तुत भी किये हैं। नदी, वर्षा, पानी, पेड़ जैसे शब्दों के साथ, नदी की 'मृत्यु', वर्षा की 'कमी', 'गन्दा' पानी, पेड की 'मृत्यु' जैसे शब्दों के जोड़ने से इनके अर्थ ही बदल जाते हैं, केवल कविता में ही नहीं बल्कि हमारी ज़िन्दगी में भी। अर्थात् भाषा से ही नहीं, कविता से भी नहीं बल्कि हमारे जीवन परिवेश से ही इनके नष्ट होने की ओर भी यह संकेत दे रही है।

पूँजीवादी तकनीकी की सभ्यता से कुछ नए-नए शब्दों का आगमन काव्य भाषा में हुआ है। ये शब्द प्रकृति के ऊपर मनुष्य के स्वामित्व के भाव को दर्शाते हैं। समकालीन कविता में 'बुल्डोज़र', 'रिग', 'क्रेन', 'ट्रेक', 'ट्रेलर', 'ट्रैक्टर' जैसे शब्द यंत्र संस्कृति की विभीषिका के ज्वलंत मिसाल के तौर पर प्रस्तुत हुए हैं। धरती को चीर फाट करते हुए, उसमें घाव करने वाले तथा प्रकृति का अंधाधुन्ध दोहन करनेवाले इस तरह के यंत्रों के व्यापक इस्तेमाल की ओर समकालीन कविता प्रश्न चिह्न लगाती है।

जिसप्रकार विकास ने पर्यावरण के साथ छेड़छाड़ की है वैसे ही भाषा के साथ भी हुई है। अनुपम मिश्र ने लिखा है "जितना अनर्थ इस शब्द ने पर्यावरण के

साथ किया है, उतना शायद ही किसी और शब्द ने किया हो।"[1] विकास शब्द ने शब्दों के अर्थ को कुछ इस तरह गिरा दिया है कि अब नदियाँ यदि घर में बिजली का बल्ब न जला पाएँ तो माना जाता है कि वे व्यर्थ में पानी समुद्र में बहा रही है। अर्थात् विकास शब्द ने हमारी भाषा से हमारी मिट्टी, पानी हवा को खारिज़ कर दिया है। सिर्फ यही नहीं इन शब्दों के अर्थों को भी परिवर्तित कर दिया है।

6.4 बिंब, प्रतीक तथा मिथकों का प्रयोग

भाषा के अन्तर्गत बिम्ब और सन्दर्भ का विशेष महत्व हैं। "बिंब अनिवार्यतः और प्रधानतः एक अर्थ संश्लेष है जिसके कारण वह रचना में काव्य भाषा या काव्य बनने की मुख्य क्रिया में सहायक होता है।"[2] समकालीन कविता के पारिस्थितिकीय संदर्भ में इस तरह के बिंबों का प्रयोग कहीं कहीं हुआ है। राजेश जोशी की 'किस्सा उस तालाब का' कविता में कवि ने एक सूखे हुए तालाब के बिंब द्वारा सूखेपन की समस्या को उजागर किया है। कवि ने एक प्राकृतिक जल-स्रोत के अस्तित्व के मिटा जाने के यथार्थ को गहरे दुःख के साथ आत्मसात करते हुए एक संपूर्ण पारिस्थितिक-तंत्र के बुझ जाने की भीषण अवस्था की ओर भी संकेत किया है :

"तालाब के बीच एक ज़ज़ीरा-सा था
जिस पर एक सूफ़ी फ़क़ीर शाह अली शाह का तकिया था
और जहाँ हम अकसर ही नाव से जाया करते थे

1. अनुपम मिश्र - भाषा और पर्यावरण, वागर्थ, अंक 138 जनवरी 2007 - पृ. 55
1. डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय - हिन्दी : काव्य भाषा - पृ. 17

तालाब उस जज़ीरे तक सूख चुका था
और दूर तक पपड़ाई हुई ज़मीन नज़र आ रही थी चित्र में
लोग पैदल चलकर जा रहे थे उस टापू तक
एक मेला-सा लगा था सूखे तालाब में
तले हुए पापड और हलुआ बिकता था
नातिया कव्वाली गाई जा रही थी मज़ार के पास
अखबार में तफ़सील से बयान किया गया था सबकुछ।"[1]

पहले तालाब से सिंचित वह जगह आज सूखने के बाद मेले की जगह बन गयी है। तालाब के होने या न होने के बारे में अब लोग चिंतित नहीं है।

अनिल कुमार गंगल ने 'भेडिया हंस रहा है' में पूँजीपति साम्राज्यवादी राष्ट्रों को भेडिये के प्रतीक माना है। भेडिया की तरह साम्राज्यवादी राष्ट्र हमारे प्राकृतिक-संसाधनों के रस चूस रहे हैं। बहुत ही काव्यात्मक ढ़ंग से कवि ने इस सच्चाई का पर्दाफाश किया है :

"भेडिया हँसता है
दाँतों से टपकता खून जहाँ-जहाँ बहता है
वहाँ-वहाँ ज़मीन बंजर हो जाती है
पेड पत्तियाँ उगाना बंद कर देते हैं
और फूल खिलना
नदियों में पानी की जगह
ज़हर बहता है

1. राजेश जोशी - चाँद की वर्तनी - पृ. 26

खदानों में खनिज की जगह
किसी शैतान आत्मा का संगीत गूँजता है।"[1]

समकालीन कविता में मिथकों का प्रयोग यत्र-तत्र व्याप्त है। पारिस्थितिक कविताओं में भी इनका ख़ूबसूरती के साथ प्रयोग हुआ है। समय-समय पर जन्म लेनेवाले मिथक जीवन के किसी भी अंश को अछूता नहीं छोडते। मिथक के बारे में डॉ. उषा पुरी विद्यावाचस्पति ने लिखा है : "आदि मानव के अनुभूति से लेकर अधुनातन समाज तक फैला मिथक साहित्य कालगति के साथ-साथ पग बढ़ाता चलता है।"[2] आज की कविता में पारिस्थितिक चिंतन उजागर करनेवाले मिथकों का प्रयोग समकालीन हिन्दी कविता की ख़ासियत बन गयी है। समकालीन परिवेश और उनकी विसंगतियों की सही और सशक्त अभिव्यक्ति इसके द्वारा संभव हुई है। ज़्यादातर संदर्भों में पौराणिक मिथकों द्वारा पारिस्थितिक बोध जगाने का प्रयास समकालीन पारिस्थितिक कविताओं की ओर से हुआ है। लीलाधर जगूड़ी की 'पनघट पर भगीरथ', पंकज चतुर्वेदी की 'अपनी नदियों का भगीरथ', देवीप्रसाद मिश्र की 'भगीरथ का स्मरण' और 'अंतर्सम्बन्ध' जैसी कवितायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। पहले की तीन कविताओं का केन्द्रीय पात्र भगीरथ है। भगीरथ कर्मठ, प्रतिभाशाली प्रयत्नरत, निष्ठावान राजा थे जिन्होंने अपनी जान पर बाज़ी लगाकर गंगा को पृथ्वी पर अवतरित किया था। भगीरथ के वह मिथक को समकालीन संदर्भ में लाके जगूड़ी ने एकदम भिन्न विचार को परिवेशगत प्रस्तुत किया है। पूरी कविता

1. अनिल कुमार गंगल - भविष्य के लिए - पृ. 29
2. डॉ. उषा पुरी विद्यावाचस्पति - मिथक उत्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य - पृ. 25

में भगीरथ का मिथ छाया हुआ है। भगीरथ आज की गंगा को नज़दीकी से देख रहा है और जो कुछ वह महसूसता है उसका चित्र पाठकों के सम्मुख यों उभरकर आता है :

"पचास पनघटों जैसी भीड तो एक चौराहे पर है
जब गंगा लाया था तब भी नहीं उमडे थे इतने लोग
सार्वजनिक नल पर और निपटान घर पर जितने खडे हैं
छोडे हुए बहुत कुछ में पनघट जैसा एकांत।"[1]

गंगा की बुरी हालत को देखकर भगीरथ उसकी नियति पर आँसू बहाता है। व्यंग्यात्मक ढंग से कवि ने लिखा है कि "हे गंगा मइया सागर के साठ हज़ार पुत्रों की तरह / भगीरथ का भी कर दे उद्धार।"[2] क्योंकि गंगा आज पोलिथीन पाउच में फ़ाइव स्टार होटल तक पहूँच गयी है। अगर गंगा का इस तरह उद्धार हो सकता है तो क्यों नहीं भगीरथ का भी उद्धार हो। दरअसल भगीरथ के मिथक के द्वारा लीलाधर जगूड़ी ने नदी जैसे प्राकृतिक संसाधनों की बाज़ारीकरण की ओर संकेत देना चाहते हैं। सिर्फ यही नहीं गंगा जैसी पवित्र नदियों का धार्मिक शोषण की ओर भी कवि ने करारा व्यंग्य किया है।

देवीप्रसाद मिश्र की 'अंतर्सम्बन्ध' कविता में पेड़ और मनुष्य के बीच के घनिष्ठ संबंध दर्शाने के लिए पौराणिक कथा को मिथक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कविता में गुरुकुल संप्रदाय का वर्णन हुआ है जहाँ शिष्य गुरु के साथ

---

1. लीलाधर जगूडी - भय की शक्ति देता है - पृ. 120
2. वही - पृ. 20

रहकर शिक्षा अर्जित करते हैं साथ ही आश्रम का सारा काम भी करते हैं। कविता में देवीप्रसाद मिश्र ने बहुत ही ख़ूबसूरती के साथ एक ऐसा काव्यात्मक बिंब खींचा है जो यह सब देती है कि पेड़ गुरु समान है; और जिस तरह पेड़ के साथ हम सुलूक करेंगे उस का फल चाहे वह अच्छा हो या बुरा मनुष्य को भुगतना पडेगा। पेड़ के काटने से गुरु की बाहु पर कुल्हाड़ी चलाने का चित्र इस तथ्य का उत्घाटन करता है:

"सूखी लकडियाँ बीनने काटने की
दौड धूप से बचने के लिये
अबाहु हरे पेड की
डालें काट लाया
आश्रम पहुँच तो गुरु
धरती पर पड़े थे
छात्र घेरे थे
आश्रम में सन्नाटा था
गुरु की बाँह पर किसी ने
कुल्हाडियाँ चलायी थीं
रक्त धरती में सींझ रहा था।"[1]

छोटे-छोटे वाक्यों तथा बोलचाल के शब्दों से पूरी कविता का भाव पाठकों तक पहुँचाने में कवि सक्षम हुआ है। 'अबाहु' जो कविता में पौराणिक मिथक का स्थान ग्रहण करता है। उसने हरे पेड़ की डालें काट लीं। एक जीवंत पेड को काटने का परिणाम यह निकलता है कि गुरु की बाहु पर कोई व्यक्ति कुल्हाड़ी मारता है।

---

1. देवी प्रसाद मिश्र - प्रार्थना के शिल्प में नहीं - पृ. 22

'कुल्हाडी' कविता में आधुनिक मानव की बर्बरता का प्रतीक है। और यह प्रतीक कविता को उसका पारिस्थितिकीय संदर्भ प्रदान करता है।

त्रिलोचन की 'नदी कामधेनु' आधुनिक सभ्यता के, प्रकृति तथा पारिस्थितिकी विरोधी भाव से साक्षात्कार कराने का प्रयास है। कवि मनुष्य द्वारा प्रकृति पर होनेवाले अत्याचारों के प्रति सजग है। कविता का लक्ष्य कामधेनु का पौराणिक मिथक के माध्यम से प्रकृति शोषण तथा तद्जनित पारिस्थितिक समस्याओं का उद्घाटन करना है। "नदी ने कहा था : मुझे बाँधों / मनुष्य ने सुना और / तैरकर धारा को पार किया / नदी ने कहा था : मुझे बाँधो / मनुष्य ने सुना और / रपरिवार धार को / नाव से पार किया / नदी ने कहा था : मुझे बाँधों / मनुष्य ने सुना और / आखिर उसे बाँध लिया / बाँधकर नदी को / मनुष्य दुह रहा है / अब वह कामधेनु है।"[1] कविता में, मनुष्य द्वारा प्राकृतिक-संसाधनों की अंधाधुन्ध दोहन की लालसा का पर्दाफाश हुआ है।

कविता से ज़ाहिर होता है कि सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में वह किसप्रकार नदी को अपने वश में करा देता है। अंत में नदी को बाँधकर दुहने की यह प्रवृत्ति शोषण की चरम स्थिति में आ पहूँचती है। अब नदी 'कामधेनु' बन गयी है, उससे जितना हासिल कर सकें उतना ही उसका उपभोग करें। पूँजीवादी विकास प्रणाली ने नदी जैसे प्राकृतिक संसाधनों के अस्तित्व को इतना नीचा गिरा दिया है कि अगर ये मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं आये तो फिर इनका कोई अहमियत नहीं है।

---

1. सं. केदारनाथ सिंह - त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ - पृ. 29

मोटे तौर पर देखने पर समकालीन कविता में प्रयुक्त पारिस्थितिक बिंबों, मिथकों तथा प्रतीकों के उद्देश्यों को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर कुछ इसप्रकार समेट सकते हैं :

1) प्रकृति के खिलाफ मनुष्य के अमानवीय व्यवहार को दर्शाना;

2) तद्जनित सामाजिक साँस्कृतिक, राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश करना।

3) मौजूदा प्रकृति विरोधी सभ्यता और संस्कृति का पतिरोध करना;

और यह भी देखने योग्य है कि समकालीन कविता में मानवीय तथा नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की बात दरअसल प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के बचाव के लिए उठायी गयी है।

कुछ समकालीन कवियों की पारिस्थितिक सौंदर्य सृष्टि की अभिव्यक्ति में साँस्कृतिक पक्ष अधिक मुखरित है। एकान्त श्रीवास्तव, देवीप्रसाद मिश्र, ज्ञानेन्द्रपति, लीलाधर जगूड़ी आदि कवियों को इस कोटी में रखे जा सकते हैं। इन कवियों के साँस्कृतिक सौंदर्य दृष्टि हमेशा प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के साथ निकटतम संबंध स्थापित करती है। 'कार्तिक पूर्णिमा' में एकांत श्रीवास्तव ने मनुष्य के सामाजिक, साँस्कृतिक जीवन परिवेश में प्राकृतिक परिवेश की अहमियता को दर्शाया है जैसेः

"आज सिरा रहे हैं लोग
दोने में धरकर अपने-अपने दिये
अपने-अपने फूल
और मन्नतों की पीली रोशनी में

चमक रही है नदी
....
देख रहे हैं काँस के फूल
खेतों की मेड़ों पर खड़े
दूर से यह उत्सव।"[1]

मनुष्य के साँस्कृतिक-धार्मिक क्रियाकलापों में प्राकृति की उपस्थिति हमेशा रही है। सबसे अधिक जुड़ाई नदी के साथ रही है। लेकिन आजकल इन्हीं साँस्कृतिक धार्मिक क्रियाकलापों से हमारी नदियाँ प्रदूषित होती जा रही हैं। ज्ञानेन्द्रपति ने गंभीरता के साथ इस समस्या का उद्घाटन किया है। अर्थात् समकालीन कवि के पारिस्थितिक चेतना एक ओर हमारे साँस्कृतिक सौंदर्य को दर्शाती है तो दूसरी ओर अपसंस्कृति की सौंदर्य विहीनता का भी दर्शन कराती है।

संक्षेप में समकालीन कवि का पारिस्थितिक सौंदर्य बोध असल में कवि के पारिस्थितिक चिंतन का द्योतक है। और उसमें नूतनता, सूक्ष्मता, सजीवता का गुण विद्यमान है। समकालीन कवि का यह नया सौंदर्यबोध युग के नवीन सौंदर्यबोध के व्यंजक है।

6.5 अलंकार, छंद और शब्दों का प्रयोग

समकालीन कविता प्रायः मुक्त छन्द की है। उसी प्रकार पारिस्थितिक कवितायें भी मुक्त छन्द में लिखी गयी हैं। अलंकारों का प्रयोग बहुलता में तो नहीं

1. एकान्त श्रीवास्तव - अन्त हैं मेरे शब्द - पृ. 15

मिलता है। कहीं कहीं उपमा एवं रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है। शब्दों के प्रयोग में यत्र-तत्र विविधता दिखाई देती है। देशज, फारसी और अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग में विविधता तथा नूतनता दर्शनीय है। एकांत श्रीवास्तव की कवितायें आँचलिक शब्दों की उपस्थिति, लोकजीवन के साँस्कृतिक और प्राकृतिक परिवेश के जुड़ाव आदि को बारीकी से तथा खूबसूरती के साथ चित्रित करने में सक्षम हुई हैं। 'आखर', 'नागकेसर', 'विष्णुभोग' (धान का नाम), सिला, अगुवानी, अलगनी जैसे शब्द उनकी कविताओं की मिट्टी तथा धरती से जुडी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। ज्ञानेन्द्रपति की कविताओं में भी आँचलिक शब्दों के प्रयोग कवि को अपनी मिट्टी, पानी बयार की सौंधी खुशबू से जोडते हैं। राजेश जोशी की कविता में फारसी शब्दों जैसे 'ज़जीरा', 'सूफी', 'फरार', 'तफ़सील' आदि का प्रयोग हुआ है। कई समकालीन कवियों ने अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग विभिन्न संदर्भों में किये हैं। पारिस्थितिक समस्याओं की अभिव्यक्ति के संदर्भ में 'ग्लेशियर', 'ओज़ोन परत', 'मानसून' जैसे शब्दों का तथा भूमंडलीकरण के प्रभाव को दर्शानेवाले 'बोतल', 'मशीन', 'पोलि थीन पाउच', 'मोबाइल टवर', 'यूज़ एन्ड थ्रो', 'बम', 'बयोटेक्नोलॉजी', 'मल्टीनेशनल' जैसे शब्द और विकास प्राणिलियों के द्वारा होनेवाले प्रकृति शोषण के लिए ज़िम्मेदार, 'बुल्डोज़र', 'क्रैन', 'ट्रैक्टर' आदि मिलकर समकालीन कविता की पारिस्थितिकीय चेतना की सफल और ज्वलंत अभिव्यक्ति को पुष्ट कर देती हैं जिससे कवि के वैज्ञानिक बोध विषयानुकूल साकार हो उठते हैं।

6.6 विभिन्न शैलियों का प्रयोग

काव्य में कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए कवि विभिन्न प्रकार की शैलियों को अपनाते हैं। पारिस्थितिक कविताओं के अध्ययन के दौरान कुछ कविताएँ ऐसी मिली

हैं जहाँ संवादात्मक, गद्यात्मक तथा व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। इब्बार रब्बी की 'सौ वर्ष पहले' कविता में संवादात्मक शैली का प्रयोग पिता और बेटी के बीच के आपसी संवाद द्वारा हुआ है। बेटी की हर एक शंकाओं का निवारण करते हुए पिता यों बताते है :

"पिता क्या है पेड?
क्या है फूल?
क्या है शाख?
बैंक की शाखा पर
कैसे पड़ता था झूला?
बेटी बेटी पेड़
वनस्पति का स्तंभ
हरी-हरी लंबाई
वनस्पति क्या पिता?
वनस्पति हरी-हरी हरीतिमा
उस पर शाखाएँ, पत्तियाँ
और फूल जैसे हम
और हमारे हाथ और पॉव
बहुत-बहुत सारे हाथ और पाँव।"[1]

इसप्रकार बेटी की शंकाओं का शमन तो कवि पिता के माध्यम से करते हैं लेकिन बेटी के अंतिम सवाल की जवाब देने में स्वयं कवि भी असमर्थ हो जाते हैं। जब बेटी यह पूछती है :

---

1. इब्बार रब्बी - वर्ष में भीगकर - पृ. 65

"पर पिता, हम तो हैं
हाड-मांस के
क्या है हरापन?
क्या है हवा?
जंगल क्या था?"[1]

यह सवाल भविष्य की उस पीढ़ी की ओर से है जो अपनी मिट्‌टी, पानी, हवा तथा हरियाली से अनजान और अनभिज्ञ होगी।

समकालीन कवि पारिस्थितिक चिंतन की सफल अभिव्यक्ति के लिए कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। भगवत रावत की 'मेधा पाटकर' चन्द्रकान्त देवताले की 'पत्थर फेंक रहा हूँ' कवितायें इस दृष्टि से उल्लेखनीय प्रतीत होती हैं। व्यंग्यात्मक शैली को अपनाने से ये कवितायें और अधिक संप्रेषणीय नज़र आती हैं।

चन्द्रकान्त देवताले ने कविता द्वारा प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के लिए ख़तरनाक, राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त साँठ-गाँठ का पर्दाफाश किया है। आरक्षित वनों की सुरक्षा-व्यवस्थाओं पर कविता प्रश्न चिह्न खड़ी करती है :

"सुंदरवन में बाघों की गिनती होगी
बारनवापारा में बढ़ा-चढ़ाकर बताई जाती है इसकी संख्या
पिछले दो सालों में
सरिस्का में दस बाघ मारे गये
वैसे कहने को अवैध शिकारियों से मुक्त है हमारे जंगल।"[2]

---

1. इब्बार रब्बी - वर्ष में भीगकर - पृ. 65
2. सं. मानिक बच्छावत - समकालीन सृजन : कविता इस समय - पृ. 61

'वैसे कहने को अवैध शिकारियों से मुक्त हैं हमारे जंगल' पंक्ति से ज़ाहिर है कि कवि का इशारा किसकी ओर है। हमारे जंगलातों में यह आम बात हो गयी है कि अवैध शिकारियों और अधिकारियों के बीच के साँठ-गाँठ के कारण जानवरों के व्यापक शोषण हो रहे हैं। पुरखों से मिला संपत्ति का सही उपयोग और उसकी हिफ़ासत अगर हम नहीं करें तो आनेवाली पीढ़ी ज़रूर हमसे पूछेगी।

लीलाधर मंड़लोई ने 'कि वहाँ पेड', 'नमक' जैसी कविताओं में गद्यात्मक शैली के प्रयोग द्वारा समकालीन कविता की नयी काव्य शैली से परिचय कराया है। दोनों कविताओं को कवि के पारिस्थितिक चिंतन के निचोड़ के रूप में आँका जा सकता है। 'कि वहाँ पेड' कविता के माध्यम से पेड़ के दो तरह को चित्र साकार हो उठे हैं :

एक चित्र हैं :

"कि वहाँ पेड। पेडों पर झूमती शाखाएँ। उनकी पत्तियाँ। पत्तियों के बीच लम्बी फल्लियाँ। चिडिया इसी समय अपना प्रेमगीत गुनगुनाने को पंखों का वायु मंडल छेडती हैं। हवा जैसे आलाप लेती है मौसम होता है सबके लिए कि जैसे लोकतन्त्र।

दूसरा चित्र :

अचम्भित मैं देखता हूँ अपना आस-पास। मैं जिस पेड के नीचे हूँ उसमें सूखी पत्तियों के अन्तिम मलबूस। फल नहीं यहाँ तक मुरझाई-पपडायी फल्लियों के होने के चिह्न गायब। धूप इधर से बरकाके रास्ता निकल जाती है। हवा का रास्ता बदला हुआ।"[1]

1. लीलाधर मंडलोई - काल बाँका तिरछा - पृ. 31

यहाँ गद्यात्मक शैली को अपनाते हुए भी काव्य-सौंदर्य में कोई कमी नहीं नज़र आती है। बल्कि यह कहना होगा कि शब्दों के सही और सार्थक प्रयोग द्वारा भाव के संप्रेषण में कवि माहिर प्रतीत होते हैं।

दूसरी कविता 'मेधा पाटकर' में भगवत रावत ने मेधा पाटकर के करुणा, त्याग, साहस की प्रशंसा करते हुए, आगे सुख और आराम की ज़िन्दगी बिताने की बात कहने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है।

"ऐसी भी जिद क्या
अपने बारे में भी सोचो
अधेड हो चुकी हो बहुत धूप सही
अब जाओ किसी वातानुकूलित कमरे की
किसी ऊँची-सी कुर्सी पर बैठकर आराम करो
मेधा पाटकर
सारी दुनिया को वैश्विक गांव बनाने की फिराक में
बडी-बडी कंपनियां
तुम्हें शो-केस में सजाकर रखने के लिए
कबसे मुँह बाये बैठी हैं तुम्हारे इंतज़ार में
कुछ उनकी भी सुनो
मेधा पाटकर।"[1]

मेधा पाटकर की अडिग आस्था, और उनके संघर्ष के सामने कवि नतमस्तक है। पूँजीवादी साम्राज्यवादी राष्ट्रों के हाथों के खिलौने बनने के लिए

1. सं. मानिक बच्छावत - समकालीन सृजन कविता इस समय - पृ. 110

मेधा तैयार नहीं। उनका संघर्ष हाशियेकृत उन लोगों के लिए हैं जिन्हें अपने घर, ज़मीन, जीवन परिवेश, संस्कृति तथा भाषा से वंचित किये जा रहे हैं।

6.7 निष्कर्ष

पारिस्थितिक कविताओं की भाषिक संवेदना समकालीन कवि के पारिस्थितिक चिंतन की गहनतम अनुभूतियों से संपृक्त है। भाषा का संबंध देश, प्रदेश, वातावरण और संस्कृति के साथ होता है। यहाँ तक कि भाषा उस देश की मिट्टी, पानी, हवा से अंकुरित होती है। इसलिए जब प्राकृतिक वातावरण प्रदूषित हो जाता है भाषा भी प्रदूषित हो जाती है। पूँजीवादी तकनीकी विकास प्रणाली ने प्रकृति के साथ जो छेड़छाड़ की है भाषा के साथ भी वही हुई है। इसके तहत उपजी भोगवादी संस्कृति ने भाषा की स्वाभाविकता और उसके अस्तित्व को मिटा दिया है। समकालीन कविता में भाषा की दृष्टि से, उसके विरोध में प्रतिरोध ज़ारी है। भाषा का यह प्रतिरोध काव्य में नये-नये शब्दों, बिंबों, प्रतीकों तथा मिथकों के द्वारा ज़ाहिर हुआ है। नये शब्दों का नया अर्थ ग्रहण और प्रचलित शब्दों के अर्थों का खोना दरअसल प्रतिरोध का एक अलग औज़ार है। यह भाषा, एक ओर हमें अवगत होने का संदेश देती है तो दूसरी ओर सजग होने की चेतावनी भी देती है।

❖❖❖

उपसंहार

उपसंहार

मनुष्य जीवन ही नहीं, इस दुनिया के समस्त जीवन पारिस्थितिकी पर निर्भर रहते हैं। पारिस्थितिक व्यवस्था बिगड जाने पर भूमि में जीवन दुःसाध्य हो जाएगा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ पारिस्थितिक-तंत्र में छेडछाड शुरू होने लगा। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया पारिस्थितिक-तंत्र पर आघात पहुँचाने लगी और यह आघात गंभीर और भयानक रूप ग्रहण करते हुए पारिस्थितिक समस्याओं का रूप धारण करने लगा है। औद्योगिकीकरण, जनसंख्या विस्फोट, विज्ञान और तकनीक के गलत इस्तेमाल, पूँजीवादी विकास प्रणालियों से प्रकृति तथा पारिस्थितिकी का विनाश उसकी चरम स्थिति तक पहूँच गया है। सजग और सक्रिय मनुष्य ऐसी विकास नीतियों पर प्रश्न चिह्न उठाने लगे हैं। इस प्रश्नाकुलता ने पारिस्थितिक आन्दोलन को जन्म दिया है। जीवन के प्रति संवेदनशील रचनाकारों की दृष्टि इस ओर मुड़ने लगी है। यह पारिस्थितिक विमर्श संबंधी विचारों के मार्ग खोल देती है। इस तरह साहित्यिक अध्ययन की अन्य दृष्टियों के बीच पारिस्थितिक विमर्श का स्थान जमने लगा है।

मानव समाज के समग्र विकास में प्राकृतिक-पर्यावरण का प्रभाव सदैव रहा है। साहित्य में प्रकृति और मनुष्य की उपस्थिति काव्यारंभ से रही है। प्रकृति और मनुष्य के बीच के अन्यान्य संबंधों को कवि ने अपनी काल्पनिक एवं मनोरम भावनाओं में पिरोकर काव्य का रूप प्रदान किया है। भारतीय तथा हिन्दी काव्य में ऐसे कई उदाहरण उपलब्ध हैं। अध्ययन के दौरान यही साबित होता है कि प्रकृति

और मनुष्य के बीच के संबंधों में कालानुसार परिवर्तन अवश्य आया है। सभ्यता के विकास में प्रकृति और मनुष्य के बीच के सह-संबंध और सह-अस्तित्व में दरारें पैदा होने लगीं। मनुष्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सहायता से प्रकृति पर धीरे-धीरे विजय प्राप्त करने लगा। आधुनिक हिन्दी काव्य में बदलते परिवेश में प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंध-विच्छेदन को दर्शाने का प्रयास हुआ है। आधुनिक हिन्दी काव्य में द्वितीय विश्वयुद्ध का तथा युद्धजन्य पारिस्थितिक संकट का चित्रण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण साबित होता है।

समकालीन कविता में प्रकृति और मानव का चित्रण समकालीन परिवेश की सभी विडंबनाओं के साथ हुआ है। मौजूदा परिवेश प्रकृति के खिलाफ है इसलिए मनुष्यता के खिलाफ भी है। किन्तु समकालीन कविता उसके विपरीत रुख पकडकर प्रकृति और मनुष्यता की प्रतिष्ठा में लगी हुई है। इस प्रक्रिया में कभी वह प्रकृति को व्यापक जीवन परिवेश के साथ प्रस्तुत करती है तो कभी गृहातुरता के औज़ार के ज़रिए प्रतिरोध की रास्ता अपनाती है। समकालीन कविता के पारिस्थितिक बोध उनको एक नया आयाम प्रदान करता है जो प्रायः पारिस्थितिक चेतना से लैस है। ऐसी कवितायें प्रकृति और मनुष्य के बीच के आपसी सरोकार पर बल देते हुए समकालीन कविता की प्रतिबद्धता को दर्शाती हैं। समकालीन कविता पारिस्थितिक समस्याओं से मुठभेड़ करती हुई प्रदूषण की भीषण परिस्थितियों से वाकिफ़ कराती है। पूरा वातावरण और पारिस्थितिकी कई प्रकार के प्रदूषण से प्रदूषित होते जा रहे हैं। समकालीन कविता प्रदूषण से उत्पन्न पारिस्थितिक असंतुलन और मनुष्य पर उसके प्रभावों को बारीकी से अंकित करती है। ऐसा करते हुए समकालीन कविता पर्यावरण प्रदूषण की समस्या की ओर पाठकों का ध्यान खींचती है।

समकालीन कविता प्रकृति शोषण की वैश्विक साज़िश का पर्दाफाश करती है। पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियाँ प्रत्येक देश के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्ज़ा कर रही हैं। अविकसित देशों की पूँजी लूटने और अपने वर्चस्व को बरकरार रखने के लिए ये देश कई कूटनीतियाँ और तरीके अपनाते हैं। प्रकृति शोषण इसका एक तरीका मात्र है। एक तरफ़ ये शक्तियाँ हमारी जैविक-संपदा पर वार कर रही हैं तो दूसरी तरफ़ मानवता के अंत का इतिहास रचती है। जीवन के आधारभूत तत्वों जैसे मिट्टी, पानी और बयार का शोषण प्रकृति तथा पारिस्थितिकी के लिए ख़तरनाक साबित हो रहा है। समकालीन कविता इस पारिस्थितिक संकट की सही पहचान दिलाती है। भूमंडलीकरण, उपभोगवाद तथा बाज़ारवाद के सम्मिलित रूप विज्ञान तथा तकनीकी की सहायता से प्रकृति का अंधाधुन्ध दोहन कर रहे हैं। सृजनात्मक व्यक्तित्व इन साज़िशों से अच्छी तरह वाकिफ़ है। वे पारिस्थितिक विनाश की समस्या को गंभीरता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। भूमंडलीकरण के सवाल पर चल रहे विमर्श का एक मुख्य मुद्दा है भूमंडलीकरण और विकास का आपसी संबंध। इस विकास प्रक्रिया के तहत जन्मी मुख्य पारिस्थितिक समस्या है स्थानीय प्राकृतिक असंतुलन तथा पारिस्थितिकी का ध्वंस। इसके विरोध में समकालीन कवि की काव्यात्मक प्रतिक्रिया उनकी पारिस्थितिक चेतना का निदर्शन है। संसार के विचारशील लोग वैकल्पिक विकास की बात सोच रहे हैं। ऐसे विकास की अवधारणा जिसमें जीवन-शैली की गुणवत्ता और समाज के समग्र विकास की परिकल्पनाएँ अन्तर्निहित होंगी। विकास की प्रक्रिया में समाज के बहुसंख्यकों-विपन्न और साधनहीन लोगों पर ध्यान देना होगा। नहीं तो गरीबी और पर्यावरण प्रदूषण और भी बढ़ेंगे। तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद समकालीन कविता अपने युगीन दायित्व को निभाते हुए, मानवीय संवेदनाओं, संबंधों और अद्‌भुत पारिस्थितिक बोध के साथ खडी है।

भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुज़र रहा है। तेज़ रफ्तार की इस प्रक्रिया में भारतीय समाज का कायापलट हो रहा है। जातीय विविधता को खोकर समाज एकल जीवन रीति की ओर अग्रसर है। दरअसल यह घटना एक साँस्कृतिक विसंगति है जो हमारे नैतिक मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगा रही है। आज का भोगवादी समाज पश्चिम के अनुकरण करते-करते नए उत्पन्नों का अधिक-से-अधिक उपभोग करने की चाहत में है। बदलते समय और परिवेश के अनुसार हमारी जीवन-शैली भी काफ़ी बदल गयी है। जाने-अनजाने इन बदलावों से हम मिल जुल गये हैं। हर काल में इस तरह की विसंगतियों का सामना तत्कालीन समाज ने किया है और आज भी कर रहा है। कला और साहित्य का उद्देश्य भी यही है। एक ओर वे खुद इस अपसंस्कृति के शिकार हैं तो दूसरी ओर इसके विरोध में लड़ भी रहे हैं। साहित्य और कला यहाँ तक विज्ञान और तकनीकी भी प्रकृति तथा पारिस्थितिकी की सुरक्षा की बात इसलिए उठा रहे हैं।

समाज पहले से अधिक जाग्रत होता जा रहा है। इसलिए प्रत्येक समस्या जल्द-ही-जल्द राजनीति का रूप ग्रहण कर लेती हैं। विगत कई वर्षों से प्रकृति की सुरक्षा तथा पारिस्थितिक संरक्षण की आवश्यकता को लेकर जन चेतना काफी जागृत हो गयी है। राजनीति में इस विषय का सक्रिय प्रवेश हो चुका है। ऐसी एक स्थिति में हरित राजनीति की चर्चा ज़रूरी हो गई है। हरित राजनीति आधुनिक सभ्यता के पारिस्थितिकी विरोधी सभी तत्वों और औज़ारों का प्रतिरोध करती है। विकसित देश की हरित राजनीति की साजिश, विकासशील देशों को शोषण के शिकार बना देती है। समकालीन कविता इस षड्यंत्र का पोल खोलकर रखती है। ऐसा करते हुए समकालीन कविता हरित राजनीति का सामाजिक तथा साँस्कृतिक

प्रतिरोध दर्ज करती है। इस प्रतिरोध को सही दिशा देने और सक्षम बनाने के लिए पारिस्थितिक अवबोध की सख्त ज़रूरत है। समकालीन कविता का प्रयाण इस ओर जारी है।

अपसंस्कृति के चलते भारतीय समाज अपने विवेक, धर्मनिरपेक्षता, जातीयता, भाषा, साहित्य और अन्य सभी महत्वपूर्ण तत्व खोता जा रहा है। अपनी परंपरा और संस्कृति से हाथ धोये, आज के उपभोगवादी संस्कृति के बीच संघर्षरत भारत के आम आदमी अपने स्वत्व की तलाश में भड़क रहे हैं। धडधडाती चलती हुई ट्रेन में तुम / बारह रुपये का बोतल बंद पानी पीकर / उस बोतल को 'क्रश' कर देते हो / क्योंकि तुम्हें याद है वह निर्देश / क्रश द बोटल आफ्टर यूज़ / ऐसा लिखनेवाला कवि पाठकों के लिए यह सवाल भी उठाता है कि जो अभी-अभी सीखा है उसका पालन तो हम करते हैं लेकिन परंपरा से हमारी स्मृतियों में जो बसा है उसका पालन हम क्यों नहीं करते? ज़ाहिर है कि हर काल की तरह आज भी कविता का साँस्कृतिक प्रतिरोध जारी है। समकालीन कविता के इस साँस्कृतिक प्रतिरोध में पारिस्थितिक चिन्तन की भावना अन्तर्निहित है।

भाषा असल में एक संस्कार है जो बहुत हद तक उस समाज की मिट्‌टी, पानी, हवा में प्रफुल्लित होती हैं। भाषा प्रकृति और मनुष्य के बीच के आपसी संवाद का उत्पन्न और उपादान दोनों है। पर्यावरण की भाषा मानवीय एवं नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा और पारिस्थितिकी की सुरक्षा की बात उठाती है। पारिस्थितिक कविताओं में चित्रित आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, पेड़-पौधे, चिड़िया, जैसे प्राकृतिक उपादान पारिस्थितिक बिंबों के रूप में प्रस्तुत होते हैं। ये बिंब प्रदूषण व शोषण के अर्थों में सीमित न होकर मौजूदा प्रकृति विरोधी सभ्यता के विरोध में खड़े होते हैं।

विकास पर्यावरण के साथ जो छेड़छाड़ कर रहा है भाषा के साथ भी यही कर रहा है। विकास शब्द ने शब्दों के अर्थ को इस तरह गिरा दिया है कि यदि घर में बिजली का बल्ब न जला पाएँ तो माना जाता है कि नदियाँ व्यर्थ में पानी समुद्र में बहा रही हैं। समकालीन कविता में प्रयुक्त पारिस्थितिक बिंब, मिथक तथा प्रतीकों का उद्देश्य प्रकृति के साथ मनुष्य के अमानवीय व्यवहार को दर्शाना, तद्जनित सामाजिक, साँस्कृतिक, राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश करना तथा मौजूदा प्रकृति विरोधी सभ्यता और संस्कृति का प्रतिरोध करना है।

प्रकृति सभ्यता का प्रत्युत्तर है। कविता की इस नई यात्रा को प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन नहीं कहना चाहिए। यह मनुष्य की जड़ों की खोज है। उसकी आत्मपहचान का संघर्ष है, प्रकृति के साथ मेल खाकर जीने की संस्कृति की ओर उसकी यात्रा है। पारिस्थितिक विमर्श के मूल विचार इससे भिन्न नहीं है।

संक्षेप में इसप्रकार पारिस्थितिक विमर्श साहित्याध्ययन की दृष्टियों में अपना स्थान प्राप्त करने लगा है। समकालीन कविता पर्यावरण-पारिस्थितिकी संबंधी उद्विग्नताओं, विवादों, संकटों को प्रश्नांकित करने लगी है। ऐसा करते समय समकालीन कविता कहीं विरोध एवं प्रतिरोध का रास्ता भी अपनाने लगी है। देश की पारिस्थितिकी की सुरक्षा और उसके साथ मनुष्य के नैतिक एवं सह-अस्तित्व की आवश्यकता पर समकालीन कविता ज़ोर देती है। पारिस्थितिक चिंतन की मूल संवेदना भी यही है। समकालीन कविता में पारिस्थितिक विमर्स का अध्ययन इसी संवेदना का संप्रेषण करती है।

❖❖❖

सहायक ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ

1.	अंधायुग	धर्मवीर भारती किताब महल, इलाहाबाद सं. 1980
2.	अंधेरे के बावजूद	बलदेव वंशी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1988
3.	अंधेरे में बुद्ध	गगन गिल राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1996
4.	अकेला घर हुसैन का	निलय उपाध्याय आधार प्रकाशन, पंचकूला प्र.सं. 1994
5.	अतिक्रमण	कुमार अंबुज राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली प्र.सं. 2002
6.	अनामिका	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भारती भण्डार, प्रयाग चतुर्थ सं. 1963
7.	अनुभव के आकाश में चाँद	लीलाधर जगूड़ी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2004

8.	अनन्तिम	कुमार अंबुज राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र. सं. 1998
9.	अन्न हैं मेरे शब्द	एकान्त श्रीवास्तव आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाना प्र.सं. 1994
10.	अपनी केवल धार	अरुण कमल वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली त्रितीय सं. 1999
11.	अरि ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र.सं. 1959
12.	अज्ञेय संचयिता	सं. नन्दकिशोर आचार्य राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2001
13.	आखिर ऐसा क्या कह दिया मैं ने	नागार्जुन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय सं. 1999
14.	आशा नाम नदी	ऋतुराज वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1998
15.	आसपास	ए. अरविन्दाक्षन गोविन्द प्रकाशन, मथुरा प्र.सं. 2003

16. इस तरह मैं — पवन करण
मेधा बुक्स, दिल्ली
द्वितीय सं. 2004

17. उत्सव का निर्मम समय — नंद चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्र.सं. 2001

18. उदित क्षितिज पर — विजेन्द्र
किताबघर, नई दिल्ली
प्र.सं. 1996

19. उपनगर में वापसी — बलदेव वंशी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1998

20. एक जन्म में सब — अनिता वर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2003

21. एक संपूर्णता के लिए — पंकज चतुर्वेदी
आधार प्रकाशन, पंचकूला
प्र.सं. 1998

22. ओ प्रकृति माँ — गोविन्द मिश्र
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
प्र.सं. 1995

23. कभी जल कभी जाल — हेमन्त कुकरेती
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

24. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ — अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
प्र.सं. 1970

25. कल्पान्तर — गिरिजाकुमार माथुर
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. 1983

26. कहते हैं तब शहंशाह सो रहे थे — उमाशंकर चौधरी
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्र.सं. 2009

27. कामायनी — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, इलाहाबाद
एकादश सं. 1971

28. काल बाँका तिरछा — लीलाधर मंड़लोई
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1983

29. कुछ आकाश — प्रेमशंकर शुक्ल
मेधा बुक्स, दिल्ली
प्र.सं. 2004

30. खलल — विनय दुबे
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 1993

31. खिडकी के टूटे हुए शीशे में — वाग्देवी प्रकाशन
बिकनेर, दिल्ली
प्र.सं. 1991

32. गंगातट — ज्ञानेन्द्रपति
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2000

33. गीत अगीत — सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1977

34. चलने से पहले — हेमन्त कुकरेती
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1996

35. चाँद की वर्तनी — राजेश जोशी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2006

36. जंगल का दर्द — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
द्वि. सं. 1994

37. ज़ख़्मों के कई नाम — सुदीप बैनर्जी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1992

38. तत्रकुशलम — विनय दुबे
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2002

39. तारसप्तक — सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
दू.सं. 1966

40. तिनका तिनका — अशोक वाजपेयी
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1996

41. त्रिलोचन : प्रतिनिधि कवितायें — सं. केदारनाथ सिंह
राजकमल प्रकाशन
त्रि.सं. 2008

42. दसों दिशाओं में — नवल शुक्ल
आधार प्रकाशन, हरियाणा
प्र.सं. 1992

43. दुनिया रोज़ बनती है — आलोक धन्वा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1998

44. दुःस्वप्न भी आते हैं — अष्टभुजा शुक्ल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2004

45. धूप घड़ी — राजेश जोशी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2002

46. नगाड़े की तरह बजते शब्द — निर्मला पुतुल
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
दू.सं. 2005

47. नदी बहती है — रामदरश मिश्र
प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 1997

48. नर्मदा की लहरों से — प्रेमशंकर रघुवंशी
मेधा बुक्स, दिल्ली
प्र.सं. 2003

49. नीम रोशनी में — मदन कश्यप
आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा
प्र.सं. 2000

50. नीहार — महादेवी वर्मा
साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड
इलाहाबाद
सप्तम आवृत्ति 1971

51. पहर यह बेपहर का — तुषार धवल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2009

52. पलाशवन — नरेन्द्र शर्मा
भारत भण्डार, इलाहाबाद
द्वि.सं. 1946

53. पल्लविनी — सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
चतुर्थ परिवर्धित संस्करण 1963

54. पानी का दुखड़ा — विमल कुमार
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2009

55. पानी का स्वाद — नीलेश रघुवंशी
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2004

56. पृथ्वी से करें फरमाइश — मधूसूदन आनंद
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2004

57. प्रार्थना के शिल्प में नहीं — देवी प्रसाद मिश्र
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 2007

58. पृथ्वीराज रासउ — सं. माताप्रसाद गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)
प्र.सं. 1963

59. प्रिय प्रवास — अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
हिन्दी साहित्य कुटीर
वाराणसी
त्रयोदश संस्करण 1966

60. बात बोलेगी — शमशेर बहादुर सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 1981

61. बीज से फूल तक — एकान्त श्रीवास्तव
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
नई दिल्ली
प्र.सं. 2003

62. बिहारी सतसई — सं. प्रो. विराज एम.ए.
अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1962

63. बेहतर दुनिया के लिए — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1985

64. भय भी शक्ति देता है — लीलाधर जगूड़ी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1991

65. भूखण्ड़ तप रहा है — चन्द्रकांत देवताले
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1989

66. भविष्य के लिए — अनिल कुमार गंगल
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1989

67. मिट्टी की बारात — शिवमंगल सिंह सुमन
राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, दिल्ली
प्र.सं. 1972

68. पुरानी जूतियों की कोरस — नागार्जुन, नवोदय सेल्स
दरियागंज, नई दिल्ली
सं. 2001

69. प्रतिनिधि कविताएँ — सुदीप बैनर्जी
मेधा बुक्स, दिल्ली
प्र.सं. 2005

70. मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद — एकान्त श्रीवास्तव
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
द्वितीय सं. 2003

71. मिलन यामिनी — हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, नई दिल्ली
दू.सं. 1961

72. मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए — स्वप्निल श्रीवास्तव
मेधा बुक्स, दिल्ली
प्र.सं. 2004

73. मेरा समर्पित एकांत — नरेश मेहता
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
प्र.सं. 1962

74. यहाँ से देखो — केदारनाथ सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
तीसरी आवृत्ति 1995

75. यानी कई वर्ष — प्रयाग शुक्ल
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1996

76. रामचरितमानस — सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
काशिराज संस्करण
प्र.सं. 1943

77. लेकिन उदास है पृथ्वी — मदन कश्यप
आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा)
प्र.सं. 1992

78. लोगबाग — इब्बार रब्बी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1985

79. लोग ही चुनेंगे रंग — लाल्टू
शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2010

80. लौटा है विजेता — अर्चना वर्मा
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1993

81. वह आदमी नया गरम कोट पहिनकर चला गया विचार की तरह — विनोदकुमार शुक्ल
आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा
प्र.सं. 1996

82. वर्षा में भीगकर — इब्बार रब्बी
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2000

83. संशयात्मा — ज्ञानेन्द्रपति
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 2004

84. सच पूछो तो — भगवत रावत
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1996

85. सतरंगे पंखोंवाली — नागार्जुन
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
सं. 1983

86. सदी के अंत में कविता — सं. विजयकुमार
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1998

87. सब कुछ होना बचा रहेगा — विनोदकुमार शुक्ल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1992

88. सबूत	अरुण कमल वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली दू.सं. 1999
89. समय की आवाज़	सं. कर्मेन्दु शिशिर आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा प्र.सं. 2002
90. समय देवता	नरेश मेहता नेशनल पब्लिशिंग हाउस जवाहर नगर दिल्ली प्र.सं. 1962
91. साकेत	मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगाँव प्र.सं. 1959
92. सूरसागर	सं. बालमुकुन्द चतुर्वेदी श्री गोपाल पुस्तकालय, मथुरा (यु.पी.) प्र.सं. 1970
93. हिन्दी की प्रगतिशील कविताएँ	सं. राजीव सक्सेना राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1986

आलोचनात्मक ग्रन्थ

94. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली त्रितीय सं. 1990
95. अज्ञेय की कविता : एक मूल्यांकन	चन्द्रकांत महादेव बंदिवडेकर सरस्वति प्रेस, इलाहाबाद प्र.सं. 1971

96. अज्ञेय से अरुण कमल तक भाग-2 — सं. डॉ. संतोष तिवारी, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2005

97. आदि, अन्त और आरम्भ — निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2001

98. आधुनिक हिन्दी काव्य गति और विधा — सुरेन्द्र माथुर, हिन्दी साहित्य भण्डार, अमीनाबाद लखनऊ, प्र.सं. 1963

99. आलोचना की सामाजिकता — मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2005

100. औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति — न्गुगी व थ्योंगा, सं और अनुवादक आनंद स्वरूप वर्मा, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, प्र.हि.सं. 1999

101. कवितान्तर — सं. डॉ. जगदीश गुप्त, ग्रन्थम रामगाम, कानपुर, प्र.सं. 1973

102. कविता और समय — अरुण कमल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002

103. कविता का अर्थात्	परमानन्द श्रीवास्तव आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) प्र.सं. 1999
104. कविता का आत्मपक्ष	एकान्त श्रीवास्तव प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली प्र.सं. 2006
105. कविता का उत्तरजीवन	परमानन्द श्रीवास्तव राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2004
106. काव्यात्मकता का दिक्काल	श्री. नरेश मेहता राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1991
107. कविता की मुक्ति	नन्दकिशोर नवल वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1996
108. कविता क्या है	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1999
109. किसप्रकार की है यह भारतीयता	सं. एवं संपादक नन्दकुमार हेगडे राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2004
110. कुछ विचार	प्रेमचन्द सरस्वती प्रेस, बनारस सं. 1961

111. चिन्तामणि — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
चतुर्थ सं. 2004

112. छायावाद — डॉ. नामवरसिंह
सरस्वती प्रेस, बनारस
प्र.सं. 1955

113. छायावादोत्तर हिन्दी कविता — डॉ. रमाकान्त शर्मा
साहित्यसदन, देहरादून
प्र.सं. 1970

114. जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण प्रदूषण — डॉ. प्रभाकुमारी
वाणीप्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

115. धरती की पुकार — सुन्दरलाल बहुगुण
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
पहली आवृत्ति 2007

116. नयी कविता — डॉ. देवराज
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 1994

117. निराला की साहित्य साधना — डॉ. रामविलास शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1962

118. पर्यावरण की राजनीति — लता जोशी
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
(प्रा) लिमिटेड, नई दिल्ली
प्र.सं. 2001

119. पर्यावरण, प्रकृति और मानव	बी.एल. गर्ग अभिनव प्रकाशन, अजमेर प्र.सं. 1996
120. प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता	मनीषा झा आनन्द प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1999
121. प्रदूषण पृथ्वी का ग्रहण	प्रेमानन्द चन्दोला हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली प्र.सं. 2008
122. बहुजन हिताय	अरुंधती रॉय अनु. प्रियदर्शन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1999
123. भूमंडलीकरण विचार नीतियाँ और विकल्प	कमल नयन काबरा प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली प्र.सं. 2005
124. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली	सं. भारत यायावर किताबघर प्रकाशन प्र.सं. 1995
125. मानव अधिकार और पर्यावरण सन्तुलन	प्रो. हरिमोहन वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वि.सं. 2007
126. मिथक उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य	डॉ. उषा पुरी विद्यावाचस्पति नेशनल पब्लिशिंग, नई दिल्ली प्र.सं. 1986

127. संक्रमण की पीडा — श्यामाचरण दुबे
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1998

128. संस्कृति की उत्तर कथा — शंभुनाथ
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2000

129. समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ — डॉ. रामकली सराफ
विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
प्र.सं. 1997

अंग्रेज़ी

130. Discourse — Sara Mills
Routledev, London
First Published 1997

131. Hind Swaraj or Indian Home Rule — M.K. Gandhi
Navajivan Publishing House
Ahmedabad
19th Published 2006

132. Man and Nature — George Parkins Marsh
The Belknap Press Harward
University Press Cambridge
Massachusetts Published 1864

133. The Time for Eco Feminism — Francoise Deauboune
Trans. Ruth Hottel
Atlantic Highlands, N.J.,
Humanities Press
Internation 1994

मलयालम

134. इको फेमिनिज़म इको टूरिज़म मार्क्सिज़म — एन.एम. पियेर्सन, डी.सी. बुक्स, त्रिचूर, प्र.सं. 2002

135. कथयुम् परिस्थितियुम् — जी. मधुसूदनन, करेन्ड बुक्स, त्रिच्चूर, प्र.सं. 2000

136. गाँधियुडे जीवित दर्शनम् — डॉ. के. अरविन्दाक्षन, डी.सी. बुक्स, कोट्टयम, प्र.सं. 2006

137. भावुकत्वम् इरुपत्तोन्नाम नूट्टाण्डिल — जी. मधुसूदनन, डी.सी. बुक्स, त्रिच्चूर, प्र.सं. 2006

138. फेमिनिज़म चरित्रपरमाय अन्वेषणम — डॉ. एम. लीलावति, प्रभात बुक हाउस, तिरुवनन्तपुरम, प्र.सं. 2000

139. पयस्विनी — आशा मेनन, डी.सी. बुक्स, कोट्टयम, प्र.सं. 2006

140. पराग कोशङ्ल — आशा मेनन, डी.सी. बुक्स, कोट्टयम, प्र.सं. 1997

141. प्लाच्चिमडयिले जलयुद्धवुम जनकीय प्रतिरोधवुम — सं. एम.पी. वीरेन्द्रकुमार, मातृभूमि, कोषिक्कोड, सं. 2005

142. प्रकृतियिलेक्कु मड़ङुवान — मज़नोबु फुकुवोका
अनु. के.एम.आर. मोहन
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम
प्र.सं. 1999

143. हरित चिन्तकल — प्रो. एम.के. प्रसाद
केरल शास्त्र साहित्य परिषद्, कोच्ची
सं. 2004

144. हरित निरूपणम मलयालमत्तिल — जी. मधुसूदनन
डी.सी. बुक्स, त्रिच्चूर
प्र.सं. 2002

पत्रिकाएँ

हिन्दी

1. आलोचना त्रैमासिक — सहस्राब्दि अंक 37, अप्रैल-जून 2010
2. नया ज्ञानोदय — विशेषांक 13, मार्च 2004
3. नया ज्ञानोदय — अंक 21, नवंबर 2004
4. नया ज्ञानोदय — अंक 47, मई 2010
5. पक्षधर — वर्ष 3, अंक 8, दिसंबर 2009
6. पक्षधर — वर्ष 3, अंक 7, जनवरी 2009
7. भाषा — वर्ष 49, अंक 3, जनवरी-फरवरी 2010
8. मधुमति — वर्ष 39, अंक 6, जून 1999
9. मधुमति — वर्ष 51, अंक 6-7, जून-जुलाई 2010
10. मधुमति — जून 2011
11. वागर्थ — अंक 138, जनवरी 2007
12. वागर्थ — अंक 162, जनवरी 2009

13. समकालीन भारतीय साहित्य वर्ष 26, अंक 124, मार्च-अप्रैल 2006

14. समकालीन भारतीय साहित्य वर्ष 28, अंक 136, मार्च-अप्रैल 2008

15. समकालीन भारतीय साहित्य वर्ष 28, अंक 138, जुलाई-अगस्त 2008

16. समकालीन भारतीय साहित्य वर्ष 31, अंक 150 जुलाई-अगस्त 2010

मलयालम

माध्यमम - पुस्तक 10 जून 2007

साहित्य लोकम - पुस्तक 2 अंक 5 सितंबर-अक्तूबर 1995

समाचार पत्र

नवभारत टाइमस - मार्च-2011

अंग्रेज़ी

The Hindu, August 2008

कोश ग्रन्थ

अंग्रेज़ी

1. अंग्रेज़ी - हिन्दी शब्दकोश - डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
2. Giant Dictionary, English, Hindi, Malayalam with reverse application systerm, Chief Editors, R.S. Pillai & V. Ramkumar, Printed and Published by Siso Books, Trivandrum.
3. Merriam - Webster's Encyclopedia of Literature (Merriam - webster, Incorporated, Publishers, spring field Massachusetts, 1995
4. Websters Encyclopedic Unabridged Dictionary of the English Language.
5. Trio Language Dictionary Malayalam Hindi

❖❖❖